नारायणी शिक्षा ॥

अर्थात्

गृहस्थाश्रम

द्वितीय भाग

जिस में

वेदादि सत्यशास्त्रानुसार गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्य कर्मों की व्याख्या है कि जिन पर चलने से शारीरिक सामाजिक और आत्मिक उन्नति अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥

जिस को

मुन्शी चिम्मन लाल वैश्य कासगंज ज़िला एटा निवासी ने

सर्वोपकारार्थ प्रकाशित किया ॥

पं० तुलसीराम स्वामी सम्पादक वेदप्रकाश के

प्रबन्ध से उनके स्वामियन्त्रालय मेरठ में मुद्रित हुई ॥

अक्तूबर ९७ ई०

प्रथम बार १००० पुस्तक

मूल्य दोनों भागों का १) रु०

विशेषसूचना ॥

बहुधा मान्य पुरुषों ने इस गृहस्थाश्रम के दो भाग होने की इच्छा प्रकट की थी इस वार ऐसा ही किया गया है परन्तु सर्वसाधारण के सुभीते के लिये मूल्य वही १।) रु० दोनों भागों का रक्खा गया है ॥

अवश्य देखिये मैंने अपने देशहितैषी मित्रों की इच्छानुसार १ अक्टूबर ९७ से पुस्तकों का मूल्य न्यून करदिया है आशा है कि ग्राहकगण अधिक सहायता देंगे ॥

चिम्मनलाल वैश्य

नोट ।

(१) पत्र व्यवहार में नाम पता स्पष्ट लिखना योग्य है अन्यथा पुस्तकें देर में भेजी जाती हैं और न पढ़ने पर भेजी भी नहीं जातीं ॥

(२) महसूल डांक और फीस मनीआडर जिस्में ख़रीदार है ॥

(३) हमारी किताबों के छापने का अन्य किसी को अधिकार नहीं पुस्तक लेते समय मेरी मुहर अवश्य देखलेना चाहिये ॥

(४) पुस्तक हिन्दी में दरकार है या उर्दू में अवश्य लिखिये ॥

(५) आठ आने से नीचे की पुस्तकें वेल्यूपेविल द्वारा न भेजी जावेंगी ऐसे सज्जन टिकटादि के द्वारा मूल्य प्रथम भेजदें ॥

(६) वैरंग-पत्र न लिये जावेंगे ॥

आप का शुभचिन्तक

चिम्मनलाल वैश्य

तिलहर ज़ि० शाहजहांपूर

सूचीपत्र ॥

(प्रथमभाग)

संस्कार॥

मनुष्योंके शरीर और आत्माके उत्तम होनेके लिये १६ संस्कार गर्भाधानसे लेकर मृत्युपर्य्यन्त करना चाहिये जैसा मनुस्मृति अ० २ श्लोक १६ में लिखा है—

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः।

वे सोलह संस्कार यह हैं—(१) गर्भाधान। (२) पुंसवन। (३) सीमन्तोन्नयन। (४) जातकर्म। (५) नामकरण। (६) निष्क्रमण। (७) अन्नप्राशन। (८) चूड़ाकर्म। (९) कर्णवेध। (१०) उपनयन। (११) वेदारम्भ। (१२) समावर्त्तन। (१३) विवाह। (१४) गृहस्थाश्रम। (१५) वानप्रस्थ। (१६) संन्यास॥

व्यासस्मृति अ० १ श्लो० १५ में भी इन्हीं संस्कारोंको बतला कर १६ की गणना की है जैसा कि "संस्काराः षोडश स्मृताः"॥

भविष्यपुराण पूर्वार्द्धके अ० १ में सुमन्त मुनिने इन्हीं सोलह संस्कारोंके लिये उपदेश किया है क्योंकि जो निषेक आदि वैदिकसंस्कारोंसे पवित्र होते हैं वह अवश्य ही मुक्ति पाते हैं॥

परन्तु किसी २ स्मृतिमें १७ और किसीमें १५ संस्कार पाये जाते हैं इस न्यूनाधिकका मुख्य कारण यही है कि किसीने दो संस्कारोंको एकके अन्तर्गत कर दिया है किसीने पृथक् २ माना है। अस्तु संस्कार १६ ही हैं इसमें कुछ मतभेद नहीं पाया जाता। यद्यपि "दशकर्म पद्धति" पुस्तक बनाने वाले पण्डितों ने वर्त्तमान समयकी रीत्यनुसार दश ही संस्कार माने हैं तो भी १६ का खण्डन नहीं किया उस गणनासे भी १६ संस्कार सिद्ध हो जाते हैं क्योंकि उन्होंने उपनयन, वेदारम्भ, समावर्त्तन इन तीनों संस्कारोंको वर्त्तमान समय की रीत्यनुसार एक ही के अन्तर्गत कर दिया है और केशान्त संस्कारको एक देशीय और संन्यास, वानप्रस्थ और अन्त्येष्टिकर्म प्रचार न होनेके कारण नहीं माने इससे १६ संस्कार होजाते हैं इस लिये मैं दशकर्म पद्धति बनाने वाले पण्डितों से प्रार्थना करता हूं कि इस पुस्तकमें उक्त तीनों संस्कारोंकी विधि बढ़ादें जैसा स्मृतिकारोंने आज्ञा दी है जिससे संसारमें संस्कारोंकी परिपाटी बनी रहे॥

इसके अतिरिक्त इस समय भी जब कि भारतमें धर्मपरिपाटी बहुत अधोगति पर है इनमें से आधेसे अधिक संस्कार प्रत्येक ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य के यहां होते हैं यद्यपि उनकी वेदानुकूल रीतें जाती रहीं और नाममात्रके पौराणिक पण्डितोंने मनमानी रीति प्रचलित करली है ॥

परन्तु शोक है कि वर्त्तमान समयके बहुधा बड़े जन कि जिन्होंने ऋषि मुनियोंके ग्रन्थों पर दृष्टि भी नहीं डाली, जो वेदविद्या और उसके सिद्धान्तों से बिल्कुल अनजान हैं, या जिन्होंने अपनी सम्पूर्ण आयुको दूसरे देशकी विद्या और उसके रहने वालों में रहकर उनके सिद्धान्तोंको सीख कर उनकी ही पुस्तकों के पाठमें व्यय की है, जो उन्हींके गिरोहोंमें रहते हैं इनके मुख्य मर्मसे निपट अज्ञान रह गर्भाधानादि सोलह संस्कारोंमें नाना प्रकारकी शङ्काऐं उत्पन्न करते हैं और बहुधा नेचरिया विवाह आदि दो एक संस्कारोंको तो मानते हैं परन्तु यज्ञोपवीतादि करनेको वे वृथा ही समझते हैं इसका मुख्य कारण यही है कि वह नहीं जानते कि संस्कार का अर्थ क्या है और इसका फल कुछ होता है या नहीं ? देखिये "सम्" पूर्वक कृञ् धातुसे संस्कार शब्द सिद्ध होता है जिसका अर्थ अच्छे प्रकार सुधराव करना है ॥

यह दो प्रकारका होता है (१) शरीर सम्बन्धी । (२) आत्मा सम्बन्धी वा अन्तःकरण सम्बन्धी इन दोनोंमें आत्मा सम्बन्धी संस्कार अति उत्तम है इसी कारण यज्ञोपवीत और वेदारम्भ मुख्य समझे जाते हैं ॥

प्रियवरो ! जितनी वस्तुऐं इस संसारमें परब्रह्मपरमेश्वरने उत्पन्न की हैं मैं जानता हूं कि उन सबको सुधरावकी आवश्यकता है यहां तक कि विना सुधराव किये हम उनसे अपना कार्य्य भी नहीं ले सक्ते और न वह उत्तम जान पड़ती हैं क्या आप नहीं देखते कि पत्थर जब तक वह अपनी स्वाभाविक दशामें होता है तो अच्छा नहीं मालूम पड़ता परन्तु जब उसको कोई शिल्पकार दुरुस्त करता है तो वही पत्थर उत्तम जान पड़ता है प्रत्येक मनुष्य उसको देखकर प्रसन्न होता है इसी प्रकार हीरा आदि रत्न भी विना सान दिये बेडौल रहते हैं और सान देने पर उत्तम जान पड़ते हैं । यही सान देना एक प्रकारका संस्कार कहाता है इसी प्रकार बुरीसे बुरी और छोटीसे छोटी वस्तु भी अच्छी और बड़ी हो सक्ती है । पक्षीकी भाषा और रङ्ग भी सुधरावसे उत्तम होजाता है ॥

परन्तु शोक है कि हम पशु पंक्षियों, और घास आदिके सुधरावके लिये नाना उपाय (संस्कार) करें और मनुष्यमात्रके सुधरावके अर्थ संस्कार करना वृथा समझें । देखिये जिन मनुष्योंका वेदारम्भसंस्कार होकर विद्या पढ़लेते हैं वही सभ्य और जो विद्या नहीं पढ़ते हैं वही असभ्य कहाते हैं इस लिये मान्यवरो ! आप भी मनु महाराजके लेखानुसार वेदानुकूल संस्कार कर २ आनन्द उठाइये जैसा कि अ० २ श्लो० २६ में कहा है ॥

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम् ।
कार्य्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ॥

द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्यके गर्भाधानादि संस्कार वेदमन्त्रोंसे होने चाहियें इससे शरीर और आत्माकी शुद्धि और इस लोक और परलोक में पापसे निवृत्ति होती है अर्थात् संस्कारोंके करनेसे सन्तान शुद्ध निष्पाप और धर्मात्मा होते हैं ॥

विशेष सूचना ॥

इन सब संस्कारोंकी वेदानुकूल विधि मन्त्रों सहित "संस्कार विधि" में श्रीस्वामीदयानन्द सरस्वतीजी महाराजने लिखी है उसीके अनुसार कार्य्य कीजिये और आनन्द उठाइये जिस दिन कि कोई संस्कार करना हो उस दिनसे प्रथम संपूर्ण यज्ञपात्र सामग्री ठीक कर लेवे और प्रातःकाल ही अपने सम्बन्धी व मित्रादि बिरादरीके मनुष्योंको बुलाकर यथाविधि करावे तत्पश्चात् आये हुए मनुष्योंको सत्कार पूर्वक विदा करे ॥

विवाहसंस्कार रात्रि के ८ बजे और शेष संस्कार प्रातःकाल ही होने चाहियें कार्य्यकर्त्ता विद्वान् होना चाहिये जो स्वर सहित वेदमन्त्रोंको पढ़ सके और धार्मिक भी हो प्रत्येक संस्कारके दिवस पुत्र या पुत्रीको थोड़े जल से स्नान कराकर स्वच्छ वस्त्र पहनावे ॥

वेश्याके नाच संस्कारोंमें न हों क्योंकि इससे नाना भांतिकी हानियां होती हैं । अब मैं आपसे प्रत्येक संस्कारकी वेदानुकूल क्रिया संक्षेपसे वर्णन करता हूं:—

(१) गर्भाधान ॥

मान्यवरो ! इसी संस्कार पर हमारी शारीरिक और आत्मिक उन्नति निर्भर है इस लिये महाशयो ! इस पर आपका भी पूरा ध्यान होना चाहिये

इस विषयमें आप गर्भाधानकी रीतोंको जो पहले वर्णन कर चुका हूं पढ़कर कार्य्य कीजिये और आनन्द उठाइये ॥

(२) पुंसवन ॥

यह संस्कार गर्भस्थिति समयसे दो या तीन माह पश्चात् होता है इससे गर्भकी स्थिरता होती है ॥

(३) जातकर्म ॥

यह संस्कार सन्तानकी उत्पत्ति समय होता है जब बालक उत्पन्न हो उसी समय सुवर्ण, मधु और गोका घृत तीनों मिलाकर चटावे क्योंकि यह तीनों वस्तु बुद्धि, आयु, आरोग्य और बलको बढ़ाने वाले हैं तत्पश्चात् नालच्छेदनका विधान करें ॥

(४) नामकरण ॥

पुत्र या पुत्रीके जन्मसमयसे १० दिन छोड़ कर ११ वा १०१ वें वा दूसरे वर्षके आरम्भमें यदि पुत्र हो तो दो वा चार अक्षरका घोष संज्ञक और अन्तःस्थ वर्ण अर्थात् पांचों वर्गोंके दो २ अक्षर छोड़कर जिसमें हों तीसरा चौथा पांचवा और य, र, ल, व यह चार वर्ण अवश्य आवें ऐसा नाम रक्खे। यदि पुत्री हो तो एक तीन वा पांच अक्षरका नाम रक्खे जैसे यशोदा सुखदा इत्यादि इनके उपरान्त इस बातका भी ध्यान रहे कि नाम बहुत, लम्बा चौड़ा न हो सुननेमें प्रिय सार्थक हो और किसी वृक्ष, पक्षी, पर्वत, नदी आदि पर न हो और ऐसा भी नाम न रक्खे जिसके सुननेसे भय मालूम हो। यदि ब्राह्मण हो तो शर्मा, क्षत्रिय हो तो वर्मा और वैश्य हो तो गुप्त नामके अन्तमें लगावे जैसा—देवशर्मा। देववर्मा। देवगुप्त इत्यादि ॥ ऐसे नामोंके रखनेका मुख्य तात्पर्य्य यह था कि प्रत्येक जान लेवें कि हम ब्राह्मण या क्षत्री या वैश्य हैं इस लिये हमको सत्कर्मोंमें प्रवृत्त होना और बुरे कर्मोंसे घृणा करना चाहिये क्योंकि वर्त्तमान समय में भी रायबहादुर, सितारेहिन्द आदि नाम प्रतिष्ठित गिने जाते हैं और जिनको वह मिलते हैं उनको उतना ही अधिक ध्यान उत्पन्न कराते हैं और वह मानते हैं कि हमारा यह काम है, हम प्रतिष्ठित हैं, हमको यह काम करनायोग्य है। परन्तु शोक है कि वर्त्तमान समयमें इस उत्तम परिपाटी पर हमारे भाई बहन कुछ भी ध्यान नहीं देते और अंट के संट नाम रखते हैं ॥

(५) निष्क्रमण अर्थात् हवा खिलाना ॥

इसका समय जन्मसे ४ माह तक है। संस्कारके पश्चात् बस्तीके बाहर जहां शुद्ध वायु धीरे २ चलती हो, शुद्ध पवित्र कपड़े पहना कर ले कावे और उस दिन से नित्यप्रति सन्ध्या प्रातःकाल भेजा करे जिससे उस की शारीरिक उन्नति हो। यदि बालक निर्बल या रोगी हो तो विद्वान् जन कोई और समय नियत करलें ॥

(६) अन्नप्राशन अर्थात् चटना ॥

किसी २ ऋषि ने इस का समय छठे महीने लिखा है और किसी ने लिखा है कि यह संस्कार उस समय हो जब बालक को पाचनशक्ति होजावे क्योंकि इस का अभिप्राय यही है कि उस दिवस से बालक को अन्न दिया जावे। संस्कार पश्चात् बालक को भात में दही, घी और सहत मिलाकर खिलावे। तत् पश्चात् उत्तम विधि से बना हुआ नरम थोड़ा भोजन दे जैसा गर्भाधानविषय में लिखा है ताकि बालक को रोग न हो ॥

(७) चूडाकर्म अर्थात् मुण्डन और कर्णवेध अर्थात् कनछेदन ॥

इन का समय कम से कम ३ और ५ वर्ष है। चूडाकर्मसंस्कार के दिन चतुर नाई से बालक के बाल मुड़वावे। और कर्णवेध के दिन चरक सुश्रुत वैद्यकग्रन्थों के जानने वाले के हाथ से कर्णवेध करावे जो नाड़ी को छोड़दे। तत् पश्चात् ऐसी औषधि उस पर लगावें जिस से कान न पकें और शीघ्र आराम होजावे ॥

(८) उपनयन अर्थात् जनेऊ ॥

इस संस्कार का वेदानुकूल समय ब्राह्मण के लिये ८ वर्ष क्षत्रिय के लिये ११ वर्ष और वैश्य के लिये १२ वर्ष है। जैसा कि मनु० अ० २ श्लो० ३६ में लिखा है—

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ॥

और ऐसा ही विष्णुस्मृति अ० १ श्लो० १३। १४ व्यासस्मृति अ० १ श्लो० १९ में भी लिखा है। ऐसा ही श्रीमद्भागवत, महाभारत, मार्कण्डेय-पुराण, भविष्यपुराण और याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है ॥

इस के उपरांत यह भी लिखा है कि यदि किसी कारण से उपरोक्त समय पर यज्ञोपवीत न हो सके तो ब्राह्मण के १६ क्षत्रिय के २२ और वैश्य के बालक का २४ वर्ष से पूर्व २ यज्ञोपवीत अवश्य होना चाहिये। तत्पश्चात् गायत्री का अधिकार नहीं रहता। जैसा मनु अ० २ श्लोक ३८–

आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्त्तते ।
आद्वाविंशात् क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः ॥

इसी संस्कार के समय आचार्य बालक को गायत्री आदि वेदोक्त कर्मों के करने की शिक्षा करता है जिस को वह सदा करता रहे। इसी समय बालक ब्रह्मचारी होने का सर्वसाधारण के सामने प्रण करता है। परन्तु शोक है कि वर्तमान समय में बहुधा–क्षत्रिय और वैश्यों के यहां यह संस्कार नहीं होता। यदि उन से पूंछा जावे तो कहदेते हैं कि "हम से सध नहीं सक्ता" और पौराणिक पितृकर्म आदि में पहरलेते हैं। बहुधा घरानों में जब घर का बूढ़ा मर जाता है तो उन के पुत्रों में जो सब से बड़ा होता है विना वेदोक्त संस्कार किये जनेऊ धारण करलेता है जिस की आज्ञा कहीं नहीं पाई जाती है। परन्तु शोक का स्थान है कि सभ्यजन इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते ॥

इस विषय में बहुधा ऋषियों का कथन है कि जिन का यज्ञोपवीतसंस्कार क्रियापूर्वक नहीं हुआ, मनुष्यमात्र उन से विवाह आदिक किसी प्रकार का संबन्ध आपत्काल में भी न रक्खें। न ऐसे मनुष्य गायत्री के अधिकारी रहते हैं जब तक प्रायश्चित्त न करावें। जैसा कि मनु० अ० २ श्लोक ३९ व ४० में लिखा है ॥

अतऊर्ध्वं त्रयोप्येते यथाकालमसंस्कृताः ।
सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्य्यविगर्हिताः ॥
नैतैरपूतैर्विधिवदापद्यपि हि कर्हिचित् ।
ब्राह्मान् यौनांश्च सम्बन्धानाचरेद्ब्राह्मणः सह ॥

व्यासस्मृति अ० १ श्लोक २० शङ्खस्मृति अ० २ श्लोक ९ और मनु अ० २ श्लोक १७२ में लिखा है कि विना यज्ञोपवीतसंस्कार के मनुष्य वेदमन्त्र उच्चारण करने का अधिकारी नहीं है अर्थात् शूद्रसमान है:–

नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानिनयनादृते ॥

फिर कैसे शोक की बात है कि यज्ञोपवीत न होने के पश्चात् भी द्विजाति होने का घमंड करें। इस के उपरांत इस संस्कार के न होने से वेदारम्भ संस्कार की आवश्यकता ही नहीं रही फिर वेदों का प्रतिदिन पढ़ना क्योंकर होसक्ता है अर्थात् पंच कर्म करने की शास्त्र की आज्ञा है वह भी नहीं हो सक्ती और न द्विज कहला सकते हैं। इसलिये विचार कर इस धर्म-मर्य्यादा को प्रचलित कर संस्कार उद्धार कीजिये। और वर्तमान समय जो कंठ में कंठी बांधने की रीति अत्यन्त प्रचलित होगई है जिस के लिये कोई वेदोक्त आज्ञा नहीं है और न किसी सत्यशास्त्र में कोई आज्ञा पाई जाती है और उस को शूद्र भी पहिनते हैं मिथ्या जान, ब्राह्मण क्षत्री वैश्य को इस की प्रथा शीघ्र उठा देनी चाहिये। इस के उपरांत यह भी स्मरण रहे कि जब नवीन यज्ञोपवीत धारण करे तो इन मन्त्रों को पढ़ कर पहने—

ओ३म् यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥१॥
यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ॥२॥

(९) वेदारम्भ ॥

गायत्रीमन्त्र से लेके सांगोपांग चारों वेदों के अध्ययन करने के लिये नियम धारण करने का नाम वेदारम्भसंस्कार कहाता है ॥

यह संस्कार उपनयन के दूसरे दिन वा एक साल के भीतर किसी दिन होता है। उस दिन से ब्रह्मचारी गुरुकुल में जाकर विद्याध्ययन करता है कि जिस से मनुष्य के आत्मिकसंस्कारों की उन्नति होना सम्भव है। क्योंकि विना वेदादि विद्या पढ़े कभी धर्म के मर्म को नहीं जान सक्ते। पूर्व समय में इसी संस्कार पर अधिक बल दिया जाता था क्योंकि विना सुधार इस संस्कार के कभी शरीर और विद्या की उन्नति नहीं होती। पूर्व ऋषियों ने इस विषय में बड़े २ ग्रन्थ लिखे हैं और हमारे प्राचीन पुरुष उन के लेखानुसार यज्ञोपवीत संस्कार कराकर अपने पुत्र पुत्रियों को गुरुकुल में भेज यथावत् विद्या उपार्जन कराते थे। और गुरुजन बड़े प्रेम और भक्ति से उन पुत्र पुत्रियों को अपनी निज संतान के समान उन का लालन पालन कर विद्या और ब्रह्मचर्य्य को पूरा कराने का यत्न करते थे। उसी समय भारत में सुपात्र धार्मिक गृहस्थ होते थे जो नियमानुकूल वेदों की आज्ञाओं को पालन कर आगे

आनेवाली सन्तानों के लिये उदाहरण होते थे । परन्तु अब महान् शोक का स्थान है कि माता पिता वेदविद्या से रहित होने के कारण अपनी सन्तानों का यथावत् उपकार नहीं कर सके। जिस के कारण ब्राह्मण क्षत्री वैश्य से यह प्रथा उठ गई और विद्याहीन आचार्य्यों ने एक नया मिथ्या ढकोसला निकाल कर भारतसन्तान का जड़पेड़से खोज मार दिया ॥

प्रियवरो ! वर्त्तमान समयमें जब यज्ञोपवीत संस्कार होता है तो उसी समय वेदारम्भसंस्कार भी कराया जाता है और ब्रह्मचारी गायत्री का उपदेश लेकर विद्या पढ़ने के लिये काशी जहां किसी समय में बड़ा भारी गुरुकुल था जाने के लिये उपस्थित होता है जिस के लिये यह पितृ और सम्बन्धियों से मार्गव्ययादि के लिये भिक्षा मांगकर धन इकट्ठा कर लेता है। परन्तु शोक है उन आचार्य आदि पर कि जो खड़े होकर यह विश्वास देकर कि हम तुम को यहीं विद्या पढ़ा देंगे रोक लेते हैं और फिर उस की कुछ भी सुध नहीं लेते और माता पितादि भी इस विषय में कुछ भी नहीं कहते। वह ब्रह्मचारी के रूप को बदल कर गृहस्थों की भांति गृहकार्य्यों में लग जाता है और फिर थोड़े ही दिनों में गृहस्थ भी बना दिया जाता है। बहुधा अब यह संस्कार विवाहसमय में भी होने लगा है। सज्जन जन विचार करें इसी का नाम हमारे ऋषि मुनियों ने ब्रह्मचर्य्याश्रम रक्खा था। क्या प्राचीन आचार्य इसी भांति वेदारम्भसंस्कार कराकर गुरुकुल के जाने से झूठा विश्वास देकर रोक लेते थे ? नहीं नहीं नहीं, यदि आप प्राचीन ग्रन्थों को देखेंगे तो स्पष्ट प्रकट हो जावेगा कि इन आचार्यों ने प्राचीन ब्रह्मचर्य्य का सत्यानाश मार दिया। प्रियवरो ! यह रीति कौन से वेद या आचार्य की सनातन रीति है ? क्या आचार्य का यही परमधर्म है कि अपने शिष्य को झूठा विश्वास देकर उसकी आत्मिक उन्नति का नाश मार दे ? क्या ऐसे आचार्य आत्मा के हनन करने वाले दोष के भागी नहीं होते ? अवश्य होते हैं । इस लिये अब माता पिता को योग्य है कि यथावत् समय पर यज्ञोपवीत संस्कार कराकर गुरुकुल में भेजने की प्रथा को यथावत् प्रचलित करें और जब तक वह विद्या को यथावत् प्राप्त न कर लें तब तक कदापि गुरुकुल से अपने घर पर न आवें जैसी कि वेदादि सत्य शास्त्रों में आज्ञा है । उसी समय देश का कल्याण होगा ॥

(१०). समावर्त्तनसंस्कार ॥

जब ब्रह्मचारी एक, दो, तीन वा चारों वेदों को समाप्त करके विद्वान्

होकर विद्यालय को छोड़ कर अपने घरको आता है उसी का नाम समावर्त्तन संस्कार है । मान्यवरो ! जब वेदारम्भ संस्कार ही नहीं रहा तो इस को कौन पूछता है ॥

(११) विवाहसंस्कार ॥

इस विषय में पहले लिख आया हूं देख लीजिये ।

(१२) गृहस्थाश्रम ॥

इस आश्रम में जिन २ बातों की आवश्यकता होती है उन्हीं का वर्णन इस पुस्तक में किया गया है । स्त्री और पुरुषों को योग्य है कि धर्मानुकूल इस आश्रम में रह कर धर्म अर्थ काम मोक्ष प्राप्त करें ।

(१३) वानप्रस्थसंस्कार ॥

जब गृहस्थी में मनुष्य पूर्ण आनन्द उठा चुके और अपने पुत्र पुत्रियों का ब्रह्मचर्य्यव्रत समाप्त होने पर विवाहादि कर चुके और पुत्र के भी पुत्र हो जावें तब सम्पूर्ण धन दौलत, पुत्र को देकर अपनी स्त्री को साथ ले या बड़े पुत्र के आधीन करके वन में जाकर जितेन्द्रिय होकर रहे । इस को वानप्रस्थ संस्कार कहते हैं । इस का समय ५० वर्ष के उपरान्त ही है । जब घर को छोड़े तो अपने साथ अग्निहोत्र की सामग्री ले जावे और अपने समय को वेदादि पुस्तकों के पठन पाठन में वितावे । यदि स्त्री साथ हो तो भी प्रसङ्ग न करे । भीख मांग कर खावे । सब से मित्रभाव से वर्त्ते । मनुष्यों को यथायोग्य ज्ञानोपदेश दे । पञ्चयज्ञ करता रहे । भूमि पर सोवे ॥

(१४) संन्यास ॥

यह मनुष्यों के कर्त्तव्य का अन्तिम संस्कार है । यह तीन प्रकार का होता है । एक तो वह जो क्रम से ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ को सेवन करके लेते हैं । यह सब से श्रेष्ठ है । दूसरा वह जो गृहस्थाश्रम ही से संन्यास ले लेवे । तीसरा वह जो ब्रह्मचर्य्याश्रम से ही विना गृहस्थ और वानप्रस्थ के ले लेते हैं । परन्तु यह अत्यन्त कठिन है । और यदि किसी का मन संसार के विषयानन्द से किसी युक्ति से ब्रह्मचर्य्याश्रम में ही हट गया हो तो अत्यन्त उत्तम है । परन्तु ब्रह्मचर्य्याश्रम से प्रथम अर्थात् विना विद्या पढ़े संन्यास लेना बिल्कुल वेदविरुद्ध है । मनुजी ने लिखा है कि ७० वर्ष की आयु में संन्यास लेवे ॥

संन्यासियों के कर्त्तव्य ॥

(१) अपने समय को वेदादि सत् विद्या के फैलाने और वेदविरुद्ध मतों के दूर करने के लिये सम्पूर्ण संसार में भ्रमण करे और मनुष्यों को सदुपदेश करता रहे। सत्य को ग्रहण करे, असत्य को छोड़ देवे ॥

(२) कहीं घर बनाकर न रहे, जल को छान कर पिये और अपने आचरणों को सुधारे रहे ॥

(३) सब शिरके बाल मुड़ाए रहे, रंगे वस्त्र पहने, जो मिले वह आनन्द प्रसन्न होकर खावे, मद्यादि मादक द्रव्य कभी न पीवे ॥

(४) किसी को पीड़ा न दे, क्रोध को त्याग दे ॥

(५) इन्द्रियों को अपने वश में रक्खे और आठ प्रकार के मैथुनों को त्यागे ॥

(६) मृत्यु तक हो जावे परन्तु सत्य के कहने में न चूके ॥

(७) परमेश्वर के सिवाय अन्य की उपासना न करे और अपने जीवन को परोपकार में लगावे ॥

(८) सांसारिक पदार्थों में अपने दिल को लगाने की चाहना न करे ॥

(१५*) मृतकसंस्कार ॥

इस का कोई समय नियत नहीं और न मनुष्य को यह संस्कार अपने आप करना पड़ता है। वरन इसका करना मनुष्य के सम्बन्धियों का कर्म है इस लिये उन को योग्य है कि जब कोई मरजावे तब यदि पुरुष हो तो पुरुष और स्त्री हो तो स्त्रियां स्नान कराकर, चन्दनादि लेपन करके, नवीन वस्त्र धारण करावें और जितना मनुष्य का शरीर हो उतना घृत यदि अधिक सामर्थ्य हो तो अधिक परन्तु आध मन से कम किसी तरह न हो चाहे मनुष्य कितना ही दरिद्री क्यों न हो। यदि उस मनुष्य के सम्बन्धी दरिद्री हों तो उस मुहल्ले के श्रीमानों को योग्य है कि इस का प्रबन्ध करादें॥

इस के उपरान्त घी में एक रत्ती कस्तूरी, एक मासा केसर और एक मन घी के साथ सेर २ भर अगर तगर और यथायोग्य चन्दन का चूरा भी डाले और शरीर के भार से दूनी लकड़ी श्मशानभूमि में ले जाकर और यथावत्

*यथार्थ में १६ संस्कार हैं परन्तु इस पुस्तक के ७ वें अङ्क में १ चूड़ाकर्म २ कर्णवेध दोनों साथ वर्णित हैं। अतः १६ ही होजाते हैं॥

वेदी बनाकर वेदमन्त्रों की विधि से मृतक का दाहकर्म करें। फिर सब मनुष्य वस्त्रों को धोकर स्नान कर नगर में आकर मृतक के घर पहुंचें। जो लीप पोत कर पहले से स्वच्छ होगया हो। वहां स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण और ईश्वरोपासना कर उन्हीं मन्त्रों के द्वारा गृह में सुगन्धित द्रव्यों सहित हवन करें। कि जिस से गृह में से मृतक का दुर्गन्ध निकल जावे और उत्तम वायु गृह में प्रवेश करे कि जिस से सब मनुष्यों के चित्त प्रसन्न हों। इस के उपरान्त तीसरे दिन मृतक का कोई सम्बन्धी अस्थि उठा कर एक स्थान पर रखदे। परन्तु वर्त्तमान समय में केवल लकड़ियों में ही रख कर जला देते हैं। देखिये इसी संस्कार के वेदरीत्यनुसार न होने से देश में अकाल मरी रोगों की बहुतायत हो गई। पदार्थविद्या के न जानने के कारण इस देश की अधोगति होती जाती है। प्यारे बहन भाइयो! टुक तो विचारो कि जब आप शरीर को लकड़ियों के साथ जलाते हो तो वह मांसादि जल कर दुर्गन्धित वायु कर देता है उस को मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि सूंघते हैं उन की नाना भांति से हानि होती है और उन्हीं परमाणुओं से कालान्तर में बादल बनते हैं फिर मेह बरसता है उस से अन्न, फल, फूल होते हैं जिस को प्रतिदिन खाते हैं। नदियों तलाबों कुओं में भी पानी बिगड़ जाता है उस को पीते हैं जिस से भारतवासियों की दिन पर दिन हीन दशा होती जाती है। उत्तम२ भोजन करने पर भी नाना रोग घेरे रहते हैं। इसलिये अब आप इस हानिकारक प्रथा को दूर कीजिये। देखिये अयोध्या काण्ड सर्ग ६। श्लोक १६, १७, १८ में लिखा है कि जब श्रीमान् राजा दशरथ जी का देहान्त होगया तो सरयूतीर पर लेगये वहां सुन्दर चिता बना कर चन्दन, अगर, साखू–काष्ठ देवदारु आदि सुगन्धित पदार्थों से भस्म किया और ऋत्विक् लोग उचित मन्त्र गाते जाते थे। इसी प्रकार आदिपर्व अ० १२५ में लिखा है कि राजा पाण्डु और माद्रीका भी मृतकसंस्कार इसी प्रकार चन्दनादि सुगन्धित वस्तुओं से हुआ था। और स्त्रीपर्व अ०१६ में लिखा है कि महाभारत में जो बहुत से मनुष्य मरे थे उन सब का मृतकसंस्कार धृतराष्ट्र की आज्ञानुसार विदुर जी महाराज ने घी चन्दनादि से कराया था। इस के अतिरिक्त इन संस्कारों में पीपल में घड़ा बांधने–एकादशाह द्वादशाह आदि करने का कहीं विधान सत्यशास्त्रों में नहीं पाया जाता जिन की वर्त्तमान समय में बहुतायत है॥

प्यारे सुजनो! इस रीति के अनन्तर जो दशगात्र, एकादशाह, द्वादशाह, सपिण्डी, मासिक, वार्षिक, गया श्राद्धादि किया जाता है सो यह सब ठगई का जाल है क्योंकि वेदों में इन बातों का वर्णन लेशमात्र भी नहीं लिखा और उस जीव का सम्बन्धियों से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। यह जीव अपने कर्मों के अनुकूल यमालय को जाकर गर्भाशय में आता है जहां उस का सम्बन्ध होजाता है। वेद के अनुकूल शरीर छूटने पर वेदमन्त्र द्वारा उस का दाह होना लिखा है उस को उठा कर अपने पेट में भरने के लिये उक्त क्रिया को न कर पिण्ड आदि बनवा कर नाना लीला रचते हैं और अच्छे प्रकार गप्पा लगाते हैं। हमारे भाई गरुडपुराण जो उन्हीं के पुरुषों ने बनाया है 'यम' की कथा सुना अपने सम्बन्धी के लिये डेरा, तम्बू, हाथी, घोड़ा, मुद्रा आदि 'कट्टहा' जी की भेंट चढ़वाते हैं कि जिन के आशीर्वाद से ही पापी, कामी, हत्यारे आदि जीव स्वर्ग को चले जाते हैं और उन विद्याहीनों को यही निश्चय होरहा है कि 'कट्टहा जी' के कहने से ही अर्थात् सुफल बोलते ही हमारे माता पिता आदि 'यम' के कोप से बच कर स्वर्ग को चले जाते हैं। प्यारे भाई बहनों! टुक तो विचारो, क्या ईश्वर भी अन्यायी है जो अच्छे कर्म करने वालों को बिना सुफल के नरक में भेज देता है और बुरे कर्म करने वालों को सुफल के कहदेने ही स्वर्ग के जाने का हुक्म होजाता है। जो 'कट्टहा जी' दश, पांच, सौ, दोसौ, हज़ार आदि मिलने पर कहते हैं तो क्या ईश्वर भी घुसया है जो घूंस मिलते ही डिगरी की डिसमिस और डिसमिस की डिगरी कर देता है। देखिये क्या अच्छा नुसखा निकाला है कि जिस से जन्म भर के पाप 'कट्टहा' जी के प्रसन्न होते ही कट जाते हैं फिर क्यों हमारे पुरुषों ने विद्या पढ़ी आचरण सुधारे। आचार विचार किये जैसा कि जनक, दशरथ, रामचन्द्र, श्रीकृष्ण, व्यास, वाल्मीकि इत्यादि ने नाना प्रकार कष्ट सह कर काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि को मारा। क्या उन के लड़कों के पास इतने रुपये न थे? प्यारे भाइयो! जन्म भर के पाप यदि इन कर्मों से जाते तो फिर क्या था फिर तो पौ बारे थे, परन्तु आप तो कुछ भी विचार नहीं करते और ईश्वर की आज्ञा के प्रतिकूल चलने का अपराध आप के शिर पर चढ़ता है। दूसरे इन का उद्धार 'कट्टहा जी' करते हैं जो आप भी सब रंगों में रंगे रहते हैं। विद्या का नाम नहीं जानते, नाना भांति के कुकर्म करते हैं, उस धन को रंडी भडुओं भंग चरस आदि में खोते हैं। क्या ऐसे महापापियों की ईश्वर बातें मानता है

इन्हों ने तो ईसाइयों को भी मातकर दिया। प्यारे! इन गपोड़ों को त्यागो इस धोखे में अमृतरूपी काया को वृथा मत खोओ। हां, जो कुछ दान आदि माता पिता आदि से कराना हो जीते जी कराकर जैसा दान विषय में लिखा है वैसा दान कीजिये अर्थात् पाठशाला, यतीमखाने, भूखे नङ्गे अति उत्तम २ कार्यों में व्यय कीजिये। न कि इन निरक्षर महाचार्यों को जीव के अर्थ उस के मरने पर उस के मिलने की आशा पर थैली की थैली खोल देते हो। जिस से देश को कोई लाभ नहीं होता वरन 'कहहों, की एक कौम कि जिस में हज़ारों मनुष्य मरने की आशा पर ही आयु व्यतीत करते हैं नियत होगई है। अर्थात् निकम्मे निठल्ले मिथ्या बातों में समय खोते हैं। क्या यह पाप आप के शिर पर न होगा अवश्य ही होगा। इस के उपरान्त 'यम, की कथा जो इन मिथ्याचार्यों के गुरुओं ने बनाई है झूंठी है क्योंकि वेदानुकूल निम्न लिखित पदार्थों का नाम 'यम, है—

यडिद्यमा ऋषयो देवजा इति ॥ ऋ० मं० १० सू० १६४ मं० १५ ॥ शकेम वाजिनो यमम् ॥ ऋ० मं० २ सू० ५ मं १ ॥ यमाय जुहुता हविः । यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥ ऋ० मं० १० सू० १४ मं० १३ ॥ यमःसूयमानो विष्णुः संभ्रियमाणो वायुः पूयमानः । यजुर्वेद अ० ८ मं० ५७ ॥ वाजिनं यमम् ॥ ऋ० मं० ८ सू० २४ मं० २२ ॥ यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ ऋ० मं० १ सु० १६४ मं० ४६ ॥

(१) यहां ऋतुओं को यम, (२) यहां परमेश्वर, (३) यहां अग्नि को, (४) यहां वायु विद्युत् और सूर्य को, (५) यहां भी वायु को, (६) और यहां परमेश्वर का नाम यम है। इस कारण पुराणों की कथा मिथ्या ही जानना। और 'यम, रूपी परमेश्वर के प्रसन्न होने के अर्थ वेदादि सत्यशास्त्रों को श्रवण करो और समय के अनुकूल आचरण करो तब ही वह न्यायकारी परमेश्वर प्रसन्न होगा। उस समय हम आप नाना भांति के दुःख रूपी नरकों से बच सकते हैं, न कि 'कहहा, जी के सुफल बोलने पर। यह सब मिथ्या है धोखे की टट्टी में शिकार खेलते हैं, इसलिये आप सत्यशास्त्रों को विचारो और बुद्धि से भी काम लो नहीं तो यह 'कहहा, जी जो प्रातःकाल उठ कर मरने

का ही स्मरण करते हैं कि हमारे महीने में भाग्यवान् अर्थात् रुपये वाला मरे। धन्य ऐसे शुभचिन्तकों को दान देकर पुरुषों को स्वर्ग भेजने के भरोसे पर लाखों में पानी देदेते हो। क्या शोक की बात नहीं है? क्या इस से भी अधिक कोई अन्धेर होगा? ईसा से भी बढ़ कर परमेश्वर के पिता ही बन गये अर्थात् जो पोप जी कहेंगे वही परमेश्वर करेगा। इस के उपरान्त बहुधा जन मुर्दों को पापनिवृत्ति और स्वर्गप्राप्ति तथा मुक्ति का साधन समझ गङ्गा आदि नदियों में डाल देते हैं कि जिस से जल विकारी हो जाता है और जो कोई उस को पीते हैं उन को नाना रोग हो जाते हैं। जिस के पाप का बोझ भी पुत्रादि पर होता है इसलिये गरुड़पुराण के ऐसे लेखों पर चला भेजनी चाहिये। गङ्गादि में डालने से मुक्ति कभी हो सक्ती है?। (मुक्ति के साधन तीर्थविषय में सविस्तार वर्णन किये गये हैं) ॥

इस के उपरान्त–धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती इन पांच नक्षत्रों में पञ्चकें होती हैं। यदि इन में मरण हो तो गङ्गादि नदियों पर जाकर फूंक कर उन में डाल देते हैं। यदि किसी कारण से गङ्गादि पर न पहुंच सके तो उन की चिता में गाड़ी के पहिये का कोई टुकड़ा वा सम्पूर्ण पहिया भी रख कर जला देते हैं और कहते हैं कि यह तो कभी न कभी गङ्गा-जल में स्नान कर आया होगा। इस के रखने से पञ्चकों का दोष जाता रहता है। इस के अतिरिक्त अग्नि में जल कर मरने वा सांप के काटने, कुए में गिरने वा दब कर मरने, नदी में डूब कर वा बिजली के गिरने से, और औरतों को सौर में मरने आदि को अकाल मृत्यु कहते हैं–जिस के दो भेद हैं। प्रथम में मृतक का शरीर उपस्थित हो, दूसरी में मृतक का शरीर न मिले। प्रथम दशा में 'नारायणबलि, करते हैं अर्थात् प्रेतयोनि से छुटाते हैं। दूसरी दशा में 'रामबलि, करते हैं अर्थात् जब मृतक का शरीर नहीं मिलता तो फिर नये सिरे से जौ के आटे का पुतला मृतक के शरीर के बराबर बनाते हैं। उस को मरा हुआ नहीं जानते वरन बीमार समझते हैं। फिर उसी समय जिस समय उस मनुष्य के मरने की ख़बर मिली थी, सब घर के स्त्री पुरुष रोते पीटते चिल्लाते हैं, अर्थात् उस समय उस को मरा जानते हैं फिर नये सिरे से मृतक की सम्पूर्ण क्रिया करते हैं ॥

यह सब बातें पोप जी ने अपने पेट भरने ही के अर्थ लिखी हैं क्योंकि लोभ में मनुष्य माता पिता आदि को मार डालते हैं सो इन्होंने वेद के अर्थों

को पलटकर धर्म को मार सर्व प्रकार से अपना ही पेट भरा। इस पर कल न पड़ी तो 'तेरही' के नाम से भी गप्फा लगाया, मासिक वार्षिक पर भी हाथ मारा। मुख्य प्रयोजन यह है कि जिस प्रकार होसका लूटने में किसी प्रकार कसर नहीं की। अब सत्य ग्रन्थों को श्रवण करो तो गरुण पुराण और नाशकेत और कर्मविपाकादि पाखण्डों से छूटो नहीं तो इन्हीं गपोड़ों में पड़कर भारत का भारत कर दिया। परन्तु शोक तो इसी बात का है कि सब कुछ जानने पर भी विचार नहीं करते। इस के उपरान्त जब कभी मृत्यु हो, अत्यन्त शोकातुर होकर रोना पीटना आदि कर्म न करना चाहिये। क्योंकि मरना जीना शरीर का धर्म है अर्थात् जो उत्पन्न होता है वह मरता है और जो मरता है वह उत्पन्न होता है, इसी को आवागमन कहते हैं—

आवागमन ॥

क्योंकि आवागमन का अर्थ आना और जाना है अर्थात् पाप पुण्य के अनुसार इस संसार में सुख दुःख भोगने के लिये बारम्बार उत्पन्न होना और मरना आवागमन कहाता है। जिस को फ़ारसी में "तनासुख़" और अंगरेज़ी में "टिरेन्समिग्रेशन आफ़ सोल" कहते हैं।

मान्यवरो! ऋषियों के जीवनचरित्र पाठ करने से जाना जाता है कि वह इस नियम में किस प्रकार लिप्त थे। सारे भारत वर्ष की धर्मपरिपाटी की केवल यही जड़ है। यह वह मनुष्यों का सच्चा मित्र है जो सदा सच्चे ही मार्ग की ओर लेजाता है। यदि हम विचारदृष्टि से देखें तो हम को ज्ञात हो जावेगा कि भारतवासी जन अन्य देशवासियों से धर्मकार्य्यों में क्यों बढ़े हुए थे, क्यों वह कहते थे कि "अहिंसा परमो धर्मः" क्यों वह अपने समान सब को जानते थे, क्यों वह नम्रतापूर्वक सब जीवों से वर्ताव करते थे, किस कारण सांसारिक सुखों को हेय तृणवत् समझते थे?

इस का कारण यही था कि उन के पास यह सच्चा हितैषी था जो प्रतिसमय शिक्षा देता था कि हे सांसारिक सुखों की गहरी नींद में सोने वाले मनुष्यो! सचेत रहो। तुम केवल इस संसार में परीक्षा के लिये उत्पन्न किये गये हो और कुछ समय पश्चात् आप को न्यायकारी परमात्मा के पास जाना होगा जो न्यायपूर्वक धर्मतुला में तुम्हारे कर्मों को तोलेगा यदि कुछ भी हलचल हुए तो फिर पता कहां! फिर भी नाना लोकों में उत्पन्न हो कर सुख और

दुःख उठाते रहोगे । इसी कारण देखिये मनु० अ० १२ श्लोक २३ में लिखा है कि मनुष्य का आवागमन पाप और पुण्य के कारण होता है इस कारण पुण्य की प्राप्ति का यत्न करना चाहिये । जैसा कि—

एताद्दृष्ट्वास्य जीवस्य गतीः स्वेनैव चेतसा।
धर्मतोऽधर्मतश्चैव धर्मे दध्यात्सदा मनः ॥

और इसी अ० के ३९ श्लोक में लिखा है कि कर्मों के कारण मनुष्य आवागमन में फंसा रहता है, और श्लोक ४० में कहा है कि सत्त्वगुणी देवरूप, रजोगुणी मनुष्यरूप और तमोगुणी पशुयोनि को प्राप्त होते हैं और आवागमन है । श्लोक ७४ में लिखा है कि दुर्जन पुरुषों को निन्दित कर्म करने से निन्दित जन्म लेने पड़ते हैं । और विष्णुस्मृति अ० २० श्लोक २९ में लिखा है कि जिस का जन्म हुआ है वह अवश्य मरेगा और जो मरेगा उस का अवश्य जन्म होगा । इस जन्म मरण के रोकने की सामर्थ्य किसी को नहीं। जैसा कि—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
अर्थे दुष्परिहार्य्येऽस्मिन्नास्ति लोके सहायता ॥

इसी अ० के श्लोक ४३ में लिखा है कि कर्मों के अनुसार बार २ शरीर धारण करना पड़ता है और श्लोक ५० में लिखा है कि जैसे पुराने वस्त्र को त्याग कर नवीन वस्त्र को धारण करते हैं वैसे ही जीव पुराने शरीर को त्याग, अपने कर्मों के अनुसार नवीन शरीर को धारण करता है । इस के अतिरिक्त ऋग्वेद अ० ४ अष्टक १ व० २३ मं० ६, व ७ में लिखा है कि—

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम् ।
ज्योक् पश्येम सूर्य्यमुचरन्तमनुमते मृडयानः स्वस्ति ॥
पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु पुनर्द्यौर्देवी पुनरन्तरिक्षम् ।
पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु पुनः पूषा पथ्या३या स्वस्ति ॥

हे सुखदायक परमेश्वर ! आप कृपा करके पुनर्जन्म में हम को उत्तम नेत्रादि सब इन्द्रियां दीजिये तथा प्राण अर्थात् मन बुद्धि चित्त और अहंकार बल पराक्रम आदि युक्त शरीर पुनर्जन्म में कीजिये । इसजन्म और परजन्म में हम लोग उत्तम २ भोगों को प्राप्त हों तथा आप की कृपा से सूर्य्य लोक, प्राण और आप को विज्ञान तथा प्रेमसे सदा देखते रहें। हे अनुमते! सब जन्मों में हम लोगों को सुखी रखिये जिस से हम लोगों का भला हो ॥

हे सर्वशक्तिमान् आप के अनुग्रह से हमारे लिये बारम्बार पृथ्वी प्राण प्रकाश चक्षु और अन्तरिक्ष स्थानादि अवकाशों को देते रहें। दूसरे जन्म में सोम अर्थात् ओषधियों का रस हम को उत्तम शरीर देने में अनुकूल रहे तथा पुष्ट करने वाला परमेश्वर कृपा कर के सब जन्मों में हम को सर्व दुःख निवारण करने वाली पथ्यरूप स्वस्ति को देवें। और य० अ० ४ मं० १५ में लिखा है कि हे परमेश्वर जब २ हम जन्म लेवें तब तब आप हम को उत्तम २ इन्द्रियां प्रदान कीजिये और हमारे शरीर का पालन कीजिये। निरुक्त अ० १३ खं० १९ में लिखा है कि मैंने अनेक बार जन्म धारण किया, हज़ारों गर्भाशयों का सेवन किया, अनेक माताओं का दूध पिया। इस की पुष्टि योगशास्त्र में पतञ्जलि मुनि ने की है। एमरीका का एमर्सन नामक प्रसिद्ध विद्वान् एक बालक की ओर इशारा कर बोलता है कि इस बालक के भोले भेष पर मत भूलो इस की अवस्था हज़ारों वर्ष की है। इन के अतिरिक्त प्रोफ़ेसर मेक्समूलर ने कहा है कि जीव जैसा कर्म करेगा वैसा ही भविष्य में पावेगा। प्लाटो पूर्णरूप से पुनर्जन्म मानता था। इस के अतिरिक्त बालक जन्मभर की वस्तुओं को देख २ कर प्रसन्न हो कर हाथ पैर फेंकते हैं और अम्मा अम्मा शब्द शीघ्र कहने लगते हैं जिस से प्रकट होता है कि इन का कुछ २ ज्ञान उन को पूर्वजन्म से है। इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध होता है कि जीव का बराबर आवागमन होता रहता है॥

और गीता में लिखा है कि आत्मा को शस्त्र छेद नहीं सकता, अग्नि जला नहीं सकी, जल गला नहीं सका, पवन सुखा नहीं सक्ता। वह निराकार और मन से परे है। फिर भला बहुत दिनों तक शोक रखना नाना भांति से रुदन करना, व्यर्थ ही है कि जिस से क्लेश के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं आता जैसा कि—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्यएव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातनः॥

इस के अतिरिक्त मृत्यु का कोई समय नियत नहीं न जाने कब आजावे और मृत्यु के आने पर इसी प्रकार के उपायों से हम लाभ नहीं उठा सक्ते और हमारी कोई सहायता भी नहीं कर सक्ता केवल उस समय पर धर्म ही हमारी सहायता करता है॥

धर्म ॥

क्योंकि वेदादि शास्त्रों के अवलोकन करने और ऋषि और मुनियों के जीवनचरित्रों पर ध्यान देने से स्पष्ट प्रकट होता है कि इस संसार में सुख प्राप्ति करने और मरने के पश्चात् सुख से रहने का मुख्य कारण धर्मानुसार चलना ही है क्योंकि संसार के धनादि सब पदार्थ यहीं रह जाते हैं अर्थात् स्त्री, पुत्र, शरीर, सम्बन्धी, मित्र, धन, पशु, और पक्षी इत्यादि यह सब प्राणयात्रा के समय पृथक् हो जाते हैं और उस को ऐसे छोड़ देते हैं जैसे पक्षी फलहीन वृक्ष को फिर उस के कमाये हुए धन का कोई और ही स्वामी हो जाता है और उस के शरीर की हड्डी, रुधिर, मांस को अग्नि भस्म कर देती है परन्तु जीव के साथ उस का धर्म ही जाता है जैसा मनुस्मृति अ० ४ श्लोक २३९ में लिखा है—

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ।
न पुत्रदारं न ज्ञातिर्धर्म्मस्तिष्ठति केवलः ॥
अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः ।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥

महाभारत में लिखा है—

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्म्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ।
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ॥
धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मानो धर्मो हतोवधीत् ॥

चाणक्य ऋषि ने भी स्पष्ट आज्ञा दी है—लक्ष्मी, प्राण, शीशमहल एक दिन चले जाते हैं और अन्त को संसार भी स्थित नहीं रहता हां केवल एक धर्म ही पूरा साथ देता है। इस लिये वही उस का सच्चा मित्र कहाता है—जैसा—"धर्मोमित्रं मृतस्य च"—ऐसा ही अनुशासनपर्व अ० ११० में बृहस्पति जी और शुक्रनीति अ० ३ श्लोक ९ में और वाल्मीकीय रामायण (आर० काण्ड स० ९) में सीता महारानी ने रामचन्द्र महाराज से कहा है कि सुख का मूल धर्म ही है—महात्मा भीष्म का वचन है कि जिस प्रकार सूर्य्य अन्धकार का

नाश करता है उसी भांति धर्म पापों को नष्ट करता है। द्रोणाचार्य्य का वचन है और कृष्ण जी भी यही कहते हैं कि धर्म से जय होती है। हनूमान् जी भी कहते हैं। विना धर्म के सुख नहीं परशुराम और सञ्जय युधिष्ठिर महाराज कहते हैं कि धर्म आपत्ति में भी न छोड़ना चाहिये क्योंकि यही सर्व सुख का दाता है। जैसा मनु जी ने अ० ४ श्लोक १७१ में लिखा है—

न सीदन्नपि धर्म्मेण मनोऽधर्म्मे निवेशयेत् ।
अधार्मिकाणां पापानामाशु पश्यन्विपर्य्ययम् ॥

बहुधा जन अधर्म से भी बढ़ती जानते हैं परन्तु प्यारे सुजनों! इस विषय में मनुजी महाराज का कथन है कि अधर्म करने वाला शीघ्र बढ़ता और विजय पाता फिर अन्त को मूल सहित नष्ट होजाता है। जैसा कि—

अधर्म्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति ॥
(मनु० अ० ४ श्लो० ७९)

ऐसा ही य० अ० ६ मं० १२ में भी लिखा है। इसी लिये ऋषिगण धर्म का उपदेश करते हैं। श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११ अ० १९ में लिखा है कि मनुष्यों का श्रेष्ठ धन धर्म ही है जैसा—"धर्म इष्टं धनं नृणाम्" इसी हेतु हमारे परम-पूज्य नीतिज्ञ विदुरजी महाराज यह उपदेश करते हैं कि मनुष्य को आयु भर वह कार्य्य करना चाहिये जिससे मरने के पीछे सुख हो—

यावज्जीवेन तत्कुर्य्याद्येनामुत्र सुखं वसेत् ॥

देखिये धर्म के सहारे ही सूर्य्य तप रहा है। पृथ्वी अपनी कील पर घूमती है। धर्म से ही बेड़ा पार होता है। धर्मात्मा ही संसार के सुखों को भोगते हैं। धर्म से ही मनुष्य कहाता है। और इसी धर्म के बल से मनुष्य को ऋषि मुनि महात्मा देवता आदि की पदवी मिलती है। धर्म से ही विजय होती है। धर्म से ही शरीर आरोग्य और बुद्धि प्रबल होती है। धर्मात्मा ही के सत् सङ्कल्प पूर्ण होते हैं। धर्म से ही स्वर्ग के सुख और मोक्षपद पाता है अर्थात् धर्म से ही इस लोक और परलोक के महान् सुख मिल सक्ते हैं। धर्मात्मा भीष्म ने कहा है कि धर्म ही इस लोक और परलोक में सुख का कारण है। उसी से जय प्राप्त होती है और अधर्मी पुरुषों को सदा दुःख उठाना पड़ता है। बृहस्पति जी ने कहा है—जैसे सूर्य्य अन्धकार का नाशक है उसी

प्रकार धर्म पापों को नष्ट करता है। कुवेरजी ने कहा है कि जो अधर्म करता है वह नष्ट हो जाता है। द्रोणाचार्य्यजी ने कहा है कि धर्म ही जय का कारण है सञ्जय ने कहा है कि मनुष्यमात्र धर्म को न त्यागे। परशुराम जी ने कहा है कि धर्म्म ही उत्तम पदार्थ है इसी कारण विद्वान् अर्थ को छोड़ और हानि उठा कर उस को करते रहते हैं। वाल्मीकिजी ने कहा है कि धर्म सम्पूर्ण वस्तुओं से बढ़कर है। युधिष्ठिर ने कहा है कि धर्म ही आपत्काल में सहायक होता है। मार्कण्डेय ऋषि ने कहा है कि धर्म से पापों का नाश होता है और धर्मात्मा मित्रों सहित स्वर्ग को जाता है। नागों ने कहा है कि अधर्म ही नाश का कारण है। हनुमानजी ने कहा है कि विना धर्म के सुख कहां, विना इस के वृहस्पति के तुल्य जन भी नष्ट हो जाते हैं। श्रीकृष्ण महाराज ने कहा है कि धर्म से ही अर्थ और काम की सिद्धि होती है जो मनुष्य धर्मात्माओं से अधर्मरूप से वर्त्तता है वह शीघ्र नष्ट होजाता है॥

अब पाठकगण सोचते होंगे कि जिस धर्म की इतनी प्रशंसा की गई वह क्या है? उस के क्या लक्षण और वह किस प्रकार से जाना जाता है?। जिस का मैं क्रम से वर्णन करूंगा। देखिये जैमिनि ने अपने मीमांसादर्शन के अ०१ पा० १ सू० २ में लिखा है कि जिस कर्म में सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी परमेश्वर की प्रेरणा हो वही धर्म है जैसा कि-

चोदनालक्षणो धर्म्मः ॥

इस के अतिरिक्त कणाद ने वैशेषिक शास्त्र में लिखा है कि जिस से शारीरिक और पारमार्थिक सुखों की उन्नति हो उसे धर्म कहते हैं जैसा कि

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः सधर्मः ॥

और लिङ्गपुराण पूर्वार्द्ध अ० १० में लिखा है कि उत्तम कर्म को धर्म और निकृष्ट को अधर्म कहते हैं अर्थात् जिस से इष्टफल की प्राप्ति हो उस का नाम धर्म और जिस से अनिष्ट फल मिले उस को अधर्म कहते हैं॥

हे सज्जनो! धर्म ईश्वर की आज्ञा पालन को कहते हैं जो हम को वेद द्वारा बतलाया गया है वा उन कर्मों के अनुसार चलने का नाम धर्म है कि जिन में परमानन्द और मोक्ष मिलती है वा वेदोक्त न्याय से युक्त हो कर पक्षपात को छोड़ सत्य ही का सदा आचरण और असत्य का त्याग करना भी धर्म कहाता है वा जिस आचरण के करने से संसार में उत्तम सुख और निःश्रेयस

अर्थात् मोक्ष सुख की प्राप्ति हो उस को धर्म कहते हैं, वा मन को पवित्र व वेदविद्यायुक्त करना ही धर्म कहाता है, वा प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव इन आठ के द्वारा जो निश्चय होता है उस को धर्म कहते हैं। जैसा कि यजुर्वेद अ० १८ मं० ५८ में कहा है-

यदाकूतात्समसुस्रोद्धृदो वा मनसो वा संभृतं चक्षुषो वा तद-नुप्रेत सुकृतामु लोकं यत्रऽऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥

धर्म के लक्षण ॥

सज्जनो ! इस उपरोक्त धर्मरूपी गृह के मनुजी महाराज ने-धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध ये दश खम्भे बतलाये हैं जैसा कि-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

और ऐसा ही याज्ञवल्क्य महाराज ने भी कहा है-

सत्यमस्तेयमक्रोधो ह्रीः शौचं धीर्धृतिर्दमः ।
संयतेन्द्रियता विद्या धर्मः सर्वउदाहृतः ॥

इसी प्रकार महाभारत में व्यास जी महाराज ने कथन किया है ॥

प्रियवरो ! यही धर्मरूपी गृह के दश खम्भे अन्य शास्त्रों में भी पाए जाते हैं। आप जानते हैं कि जब तक खम्भे ठीक रहते हैं मकान उत्तम बना रहता है और रहने वाले सुख चैन से रहते हैं। और जब खम्भे ठीक नहीं होते मकान शीघ्र गिर कर चूर हो जाता है और रहने वालों को नाना प्रकार के क्लेश होते हैं। इस लिये यदि आप को सुखपूर्वक रहकर परमानन्द प्राप्त करने की इच्छा है तो इन खम्भों पर पूरा ध्यान रखिये क्योंकि ऐसे ही सज्जन पुरुषों को सुख और परमगति प्राप्त होती है जैसा कि मनु० अ० १० श्लो० ६३ में लिखा है-

दशलक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयते ।
अधीत्य चानुवर्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम् ॥

प्यारे सुजनो ! इन्हीं उपरोक्त दश लक्षणों पर यथावत् चलने की आज्ञा समस्त ऋषि और मुनियों ने दी है, इन्हीं को स्वर्ग का मार्ग बतलाया है

मनु जी महाराज ने अ० ६ श्लोक ९ में स्पष्ट लिख दिया है—चाहो जिस आश्रम में रहे परन्तु इन दश लक्षणों का अच्छे प्रकार सेवन करता रहे। अब मैं इन्हीं धर्म के दश लक्षणों अर्थात् खम्भों की व्याख्या वेदानुकूल प्राचीन ऋषि और मुनियों के अनुकूल करता हूं। विचार कीजिये और यदि परमानन्द प्राप्त करने की इच्छा हो तो अवश्यमेव इन्हीं के अनुकूल अपने मन को निर्मल और शुद्ध कीजिये॥

(१) धृति, नाम धैर्य्य धारण करने का है अर्थात् श्रेष्ठ मनुष्यों को चाहिये कि धैर्य्य का कदापि त्याग न करें क्योंकि धैर्य्य करने से ही सांसारिक और पारमार्थिक कार्य्य सुगमता से होते हैं॥

(२) क्षमा अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक दुःखों की प्राप्ति में न क्रोध करना और न हिंसा करना। प्रिय सज्जन पुरुषो! इस से उत्तम संसार में कोई वस्तु नहीं इसी से लक्ष्मी की शोभा होती है और परमेश्वर प्रसन्न होते हैं। जैसा श्रीमद्भागवत के नवें स्कन्ध के १५ अध्याय में लिखा है। और वनपर्व अध्याय २९ में युधिष्ठिर महाराज ने द्रौपदी से कहा है। क्षमा ही परमधर्म, क्षमा ही यज्ञ, क्षमा ही वेद, क्षमा ही ब्रह्म है, क्षमा ही सत्य, क्षमा ही जप, क्षमा ही पवित्र, क्षमा ही से जगत् स्थिर है, क्षमा ही दया, क्षमा ही यश, क्षमा ही तीर्थरूप है। क्षमावान् ही स्वर्ग को जाते हैं, उन्हीं को मोक्ष और यश प्राप्त होता है। ऐसा ही वृद्धगौतमसंहिता में लिखा है जैसा—

क्षमाहिंसा क्षमा धर्मः क्षमा चेन्द्रियनिग्रहः।
क्षमा दया क्षमा यज्ञः क्षमा धैर्य्यमुदाहृतम्॥
क्षमावान्प्राप्नुयात्स्वर्गं क्षमावान्प्राप्नुयाद्यशः।
क्षमावान्प्राप्नुयान्मोक्षं क्षमावांस्तीर्थमुच्यते॥

चाणक्य जी ने कहा है कि शान्ति से अधिक कोई तप नहीं "शान्तितुल्यं तपो नास्ति" व्यासस्मृति अ० २ श्लोक ४४ और आपस्तम्बस्मृति अ० ९ श्लोक ५,६ में लिखा है कि क्षमा करने वाले पुरुषों को इस लोक और परलोक में सुख मिलता है॥

(३) दमः, मन को विपरीत कर्मों से हटा कर सदा अच्छे कर्मों में लगाने को कहते हैं। मन अत्यन्त वेग से गमन करता है। यह बड़ा चञ्चल है कभी धन के उपार्जन में डूबता है, कभी लड़ाई झगड़े पर उद्यत होता है, कभी सम्पूर्ण

सांसारिक वस्तुओं को छोड़ कर विरक्त बनता है, कभी स्त्रियों पर आसक्त होता है, कभी उन को माता के तुल्य मानता है। कभी जङ्गलों में रहना स्वीकार करता है, कभी संसार के आनन्दों को छोड़ कर ऋषि मुनि बनना चाहता है। इसी के कारण बड़े २ महात्मा, राजा, महाराजा और विद्वानों ने अपयश प्राप्त किया। इसी कारण वही ऋषि, मुनि, देव हैं। जिस ने इस मन को वश कर लिया है। मन का एकत्र करना ही सब से बड़ी तपस्या है। क्योंकि इस के जीतने से सब इन्द्रियां निर्बल हो जाती हैं। और फिर कल्याणमार्ग दृष्टि आता है। और मनुस्मृति अध्याय २ के श्लोक २ में भी ऐसा ही लिखा है। और गीता में श्रीकृष्ण महाराज ने कहा है बिना मन के संयम किये सब आचरण मिथ्या हैं। यह मनुष्य का शरीर रथ, मन रथवान् अर्थात् सारथि और इन्द्रिय घोड़े हैं। यदि यह रथवान् बुद्धिमान् है तो ही इन इन्द्रियरूपी घोड़ों को अपने आधीन रख सक्ता है अन्यथा नहीं। देखो य० अ० ३४ मंत्र ६ में—

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनइव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरञ्जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

परमेश्वर उपदेश करता है कि मन की दो प्रकृति हैं। एक तो वह जब किसी वस्तु पर आसक्त होता है तो अपने इन्द्रियरूपी घोड़ों सहित उस की तरफ दौड़ता हुआ चला जाता है जिस के अनुसार मूर्ख कार्य करते हैं और कष्ट भोगते हैं। दूसरे वह है जो इन्द्रियरूपी घोड़ों को अपने २ विषय से हटा कर अपने वश में कर विद्वान् सुख भोगते हैं ॥

(४) अस्तेय—नाम चोरी न करने का है वह—(१) कायिक—(२) वाचिक (३) मानसिक—तीन प्रकार की होती हैं। (१) कायिक अर्थात् किसी के धन स्त्री आदि पदार्थ को ले लेना कहलाता है (२) वाचिक अर्थात् वचन का चुराना यह दो प्रकार का होता है। एक तो सत्य को छिपाना दूसरे असत्य बोलना। सत्य का छिपाना उसे कहते हैं कि हम किसी वार्ता को अच्छे प्रकार जानते हों और जब हम से कोई मनुष्य पूछे कि आप इस विषय में क्या जानते हो तो हम किसी कारण से उस से कहदें कि मैं इस विषय में कुछ नहीं जानता। असत्य बोलना—अर्थात् जान बूझ कर उलटी बात कहें। ३—तीसरी मानसिक चोरी अर्थात् मन के सिद्धान्त के विरुद्ध कार्य्य करना। जैसे कोई

और य० अ० १७ मं० ६८ में लिखा है कि योगीजन जितेन्द्रिय होकर नियम-पूर्वक परमात्मा को पाकर आनन्दित होते हैं। सञ्जय ने धृतराष्ट्र से कहा है कि इन्द्रियों के जीतने वाले महात्मा ईश्वर के दर्शन करते हैं। श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुन से कहा है कि इन्द्रियों के जीतने से बुद्धि बढ़ती है। शान्तिपर्व अ० १५९ में भीष्मपितामह ने कहा है कि चारों आश्रमों के बीच इन्द्रियनिग्रह ही उत्तम धर्म है। इसलिये आओ! ज्ञान के द्वारा विषय वासना में विचरती हुई इन्द्रियों को अपने आधीन कर सुख की प्राप्ति करें॥

(७) धी, नाम बुद्धि का है अर्थात् जिस प्रकार से बुद्धि की उन्नति हो वह कार्य्य करना। मुख्य प्रयोजन यह है कि सदा विचारपूर्वक बुद्धि को अच्छे कर्मों में लगाना और उस की वृद्धि के लिये यत्न करना जिस की तीन रीतें हैं (१) वेद शास्त्रों का विचार करना (२) महात्मा और विद्वानों का सत्सङ्ग करना (३) उत्तम २ गुणों को सीखना॥

(८) विद्या—अर्थात् जिस से पदार्थों का सत्य रूप मालूम हो उसे विद्या कहते हैं जैसा कि—

पदार्थान् याथातथ्येन वेत्ति यया सा विद्या।

और इस के विपरीत दशा को अविद्या कहते हैं अर्थात् नित्य को अनित्य, अनित्य को नित्य—धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म मानना आदि अविद्या है जैसा कि योग सूत्र में लिखा है:—

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नि-
त्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या॥

और ऐसा ही प्रश्नोपनिषद् में भी लिखा है। सचमुच विद्या से बढ़ कर कोई मित्र और अविद्या से बढ़कर कोई शत्रु नहीं। विद्या ही के कारण मनुष्य इस संसार में सर्व प्रकार के आनन्द पाता है और अन्त को मोक्ष प्राप्त करता है परन्तु अविद्या सब क्लेशों की जड़ है और भगवान् पतञ्जलि ने अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश पांच क्लेश माने हैं जैसा कि—

"अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः"

अविद्या ही के कारण यह देश इस अधोगति को प्राप्त हुआ, अविद्या ही के कारण हम ने सज्जनों और विद्या को छोड़ कर मूर्खों की सङ्गति में पड़

कर नाना प्रकार की बुराइयां सीखी हैं, अविद्या ही के कारण इस देश में वेश्या का नाच होने लगा, अविद्या ही के कारण हम अपने जीते माता पिताओं को दुःख देकर गयादि तीर्थ उन के सुख पहुंचाने को करने लगे जिस से धर्म परिपाटी में अन्तर आगया। अब इस समय में महाशय! आप विद्या और अविद्या को जान कर ही कार्य्य कीजिये जिस से सर्व प्रकार के सुख मिलें और देश की यह दशा न रहे। मुख्य कथन यह है कि वेदोक्त कर्मों के करने को विद्या और वेदविरुद्ध कर्मों के करने को अविद्या कहते हैं॥

(९) सत्य, अर्थात् मिथ्या व्यवहार कभी न करना। इसी से मनुष्य को सर्व प्रकार के आनन्द मिलते हैं। यही मनुष्य को स्वर्ग में लेजाता है। इस के विना संसार का कोई कार्य नहीं चल सकता। सच तो यह है कि संसार के सम्पूर्ण कार्य्य इसी पर निर्भर हैं देखो चाणक्य ऋषि लिखते हैं—

सत्येन धार्य्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः।
सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्॥

सत्य ही से पृथ्वी स्थिर है, सूर्य्य प्रकाशमान और वायु चलती है। और भी कहा है—

नहि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्।
नहि सत्यात्परं ज्ञानं तस्मात्सत्यं समाचरेत्॥

सत्य से बढ़ कर कोई धर्म और झूंठ से बढ़ कर कोई पाप नहीं है, और सत्य से बढ़ कर कोई ज्ञान भी नहीं है। इस लिये सदा सत्य ही बोलना चाहिये॥ इस के उपरान्त—हनूमान्, व्याध, भीष्मपितामह, मार्कण्डेय, सनत्सुजातमुनि, नारद जी, शकुन्तला और भृगुजी इत्यादि ने कहा है कि द्विजातियों का परम धर्म सत्य है। सत्य से आयु क्षीण नहीं होती, सब गुणों में सत्य ही प्रधान है उसी में अमृत वसता है, वही सब व्रतों में श्रेष्ठ है, सत्य ही पर सधर्म है यही सब की जड़ है, इसी के द्वारा स्वर्ग मिलता है, इसी से कल्याण और हित होता है। और यजुर्वेद अध्याय १७ मन्त्र ९४ में लिखा है कि जो मनुष्य शास्त्र के अभ्यास सत्य वचनादि से वाणी को पवित्र करते हैं वही शुद्ध होते हैं। परन्तु सत्य के ग्रहण करने वालों को यजुर्वेद के ब्राह्मण पर भी पूरा ध्यान रखना चाहिये अर्थात् सत्य को मन से

धारण करना न कि मनुष्यों के दिखलाने के अर्थ। क्योंकि जो मन में होता है वही वाणी में आता है और जैसा कर्म करता है वैसा ही फल भोगता है। जैसा कि—

यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति यद्वाचा वदति तत्
कर्मणा करोति यत्कर्मणा करोति तदभिसंपद्यते ॥

अर्थात् जो मनुष्य सत्य का अनुष्ठान करते हैं वही सच्चे धर्मात्मा कहाते हैं वह इसी के बल से भवसागर से पार होजाते हैं। सच मुच सत्य ऐसा ही पदार्थ है इस लिये सत्य को मन से ग्रहण करना चाहिये ॥

(१०) अक्रोध अर्थात् प्राणीमात्र पर क्रोध न करना। क्योंकि क्रोध सम्पूर्ण पापों की जड़ है, इसी क्रोध में आकर मनुष्य को विचारशक्ति नहीं रहती बहुत सी हानि व्यर्थ में कर बैठता है। प्रसिद्ध है कि एक क्रोधी ने केवल एक चूहे को कष्ट देने के अर्थ अपने गृह में आग लगा दी थी। क्रोध ही इस संसार में परम शत्रु है, क्रोधी मनुष्य की कहीं प्रतिष्ठा नहीं होती, जो मनुष्य क्रोध के वश में रहते हैं उन का शीघ्र नाश होजाता है, अक्रोधी ही को सब प्रकार के आनन्द मिलते, वही अपने कार्य की सिद्धि कर प्रतिष्ठा पाता है, वही सब में श्रेष्ठ और विद्वान् गिना जाता है। हनूमान् जी महाराज ने सुन्दरकाण्ड में कहा है कि धन्य है उन पुरुषों को जो क्रोध को रोक शान्ति का प्रसाद देते हैं ऐसे ही मनुष्यों को महात्माओं की पदवी मिलती है। आपस्तम्बस्मृति अ० ९ श्लो० ८ में लिखा है कि क्रोधी पुरुष के यज्ञादि उत्तम कर्मों का भी फल नष्ट होजाता है। इसलिये इन उपरोक्त धर्म के लक्षणों को यथावत् पालन करते हुए धर्ममार्ग पर चलनेका यत्न करते रहिये ॥

धर्ममार्ग ॥

प्रत्येक मनुष्य सदा सीधे और सुगम मार्ग की चाह में रहते हैं। क्योंकि ऐसे मार्ग पर चलने से मनुष्य को कष्ट नहीं होता और उस का प्रयोजन शीघ्र सिद्ध होजाता है जिस से चलने वालों को थकावट का कुछ भी ध्यान नहीं होता। और इस के अतिरिक्त टेढ़े अर्थात् कुमार्ग पर जाने से बहुधा कष्ट उठाने पड़ते हैं और बटोही अपने अभिप्राय को भी नहीं पाते। इस लिये सर्व प्राणीमात्र को धर्म के सीधे अर्थात् सत्य सनातन मार्ग को जानकर चलना चाहिये जिस से प्राचीन पुरुषों की भांति संसार के सुखों के पश्चात् मोक्ष भी प्राप्त हो ॥

प्रिय सज्जन पुरुषो ! वर्त्तमान काल में सहस्त्रों मार्ग अर्थात् पन्थ प्रचलित होगये हैं । कोई इधर खैंचता कोई इधर पकड़ता है, कहीं वाममार्ग के लटके दिखलाये जाते हैं, कहीं फ़ौमेशन की प्रशंसा बतलाई जाती है, कहीं नानकपन्थ कबीर साहिब की साखी सुनाई जाती है और वाह गुरु की विजय कान में फूंकी जाती हैं, कहीं शब्दज्ञान कराया जाता है, कहीं झूठे भोजनों की महिमा सुनाई जाती हैं, कोई गङ्गा और एकादशी आदि व्रत और सत्यनारायण की कथा सुनने को ही धर्ममार्ग बतलाते हैं । बहुधा जन तुलसी, शालिग्राम, महादेव, पार्वती इत्यादि की पाषाणादि मूर्त्तियों के पूजन करने और उन के सन्मुख नाचने गाने को ही धर्ममार्ग कहते हैं । और कोई बरगद पीपल और केले आदि वृक्षों की पूजा से ही ईश्वरप्राप्ति कहते हैं, कोई २ नाना भंति के तिलक छापे और ठाकुर प्रसाद और तुलसी शालिग्राम के विवाह को ही धर्म कहते हैं । परन्तु हमारे प्राचीन ऋषियों ने और ही धर्म के मार्ग बतलाये हैं, जिन पर हमारे पुरुषाओं ने चल कर नाना प्रकार के सांसारिक सुखों के उपरान्त परमपद को भी प्राप्त किया है और उसी को सनातन धर्म कहते हैं जिस को मनु जी महाराज ने श्रुति, स्मृति, सदाचार और अपनी आत्मा को प्रिय, चार कर्मों को धर्ममार्ग ठहराया है । जैसा कि–

श्रुतिःस्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥

भविष्यपुराण पूर्वार्द्ध के प्रथम अ० में भी श्रुति, स्मृति, सदाचार और अपने मन की प्रसन्नता को ही धर्ममार्ग माना है । ऐसा ही महाभारत शान्तिपर्व अध्याय २५८ और अनुशासनपर्व अ० १४८ में कहा है–

परन्तु लिङ्गपुराण अध्याय १० श्लोक ७ में यह लिखा है कि धर्म वही है जो श्रुति स्मृति के अनुकूल वर्णाश्रम धर्मों को जान कर करते हैं ।

वर्णाश्रमेषु युक्तस्य स्वर्गादिसुखकारिणः ।
श्रौतस्मार्त्तस्य धर्म्मस्य ज्ञानं धर्म उच्यते ॥

ऐसा ही विष्णुस्मृति अ० १ श्लोक २४ और अत्रिस्मृति श्लोक ३४९ में भी लिखा हैं । और शिवपुराण विन्धेश्वर संहिता अ० १९ श्लोक ४४ में लिखा है कि जो वेद और स्मृति के कर्म को अनादर कर दूसरे कर्म को करता है उस का फल नहीं होता अर्थात् यही धर्ममार्ग है ॥

(१) वेद ॥

प्रिय सज्जन पुरुषो ! श्रुति वेद और स्मृति धर्मशास्त्र को कहते हैं जैसा कि मनु जी ने कहा है–

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रन्तु वै स्मृतिः ॥

इस के उपरान्त मनुस्मृति अध्याय १२ श्लोक ९९ में लिखा है कि वेद सनातन विद्या है वही सम्पूर्ण सृष्टि का आधार है इसी कारण जीवों के लिये मैं उसी को सब से उत्तम उपाय सुख की प्राप्ति का निश्चय करता हूं–

बिभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम् ।
तस्मादेतत्परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम् ॥

और २ अ० के ८ श्लोक में लिखा है कि विद्वान् को योग्य है कि विद्या से इस को समझे और वेदोक्त धर्म को स्वीकार करे, और श्लोक १३ में मनु जी ने स्पष्ट लिखा है कि धर्म जानने के लिये श्रुति ही परम प्रमाण है–

धर्म्मञ्जिज्ञासमानानाम्प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥

इसी कारण नित्य कर्मों में प्रतिदिन वेद पाठ करने की आज्ञा दी है उपरान्त १२ अध्याय के ९७ श्लोक में लिखा है कि चारों वर्ण, तीनों लोक, चारों आश्रम, तीनों काल, सब वेद द्वारा जाने जाते हैं–

चातुर्वर्ण्यन्त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ।
भूतं भव्यं भविष्यञ्च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति ॥

इसी लिये मनु जी ने इसी अध्याय के १०६ श्लोक में स्पष्ट लिख दिया है जो मनुष्य वेद के अर्थ को यथार्थ जान कर चलता है वह चाहे जिस आश्रम में रहे जीवन्मुक्ति को पाता है–

वेदशास्त्रार्थतत्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन् ।
इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

श्रीमद्भागवत में लिखा है धर्म वही है जो वेद में लिखा है उस के अतिरिक्त अधर्म है और वेद नारायण का रूप है–

वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः ॥
वेदोनारायणःसाक्षात् स्वयंभूरिति शुश्रुमः ॥

फिर इसी अध्याय में लिखा है कि जो वेदविरुद्ध कार्य्य करते हैं उन को नरक होता है और अध्याय ४ में ऋषभ देव जी ने अपने पुत्रों को श्रुति स्मृति धर्म को मुख्य जानकर उस की शिक्षा की है स्कन्ध ११ अध्याय ३ के श्लोक ४६ में स्पष्ट लिखा है कि वेदोक्त कर्म करने से मोक्ष होती है—

वेदोक्तमेव कुर्वाणो निःसङ्गोऽर्पितमीश्वरे ।
नैष्कर्म्यां लभते सिद्धिं रोचनार्था फलश्रुतिः ॥

याज्ञवल्क्य स्मृति अ० २ श्लोक ४० में मनुष्यमात्र को आज्ञा की है कि यज्ञ, तप और शुभकर्मों से द्विजों का सब से बड़ा उपकारक वेद को जानना चाहिये—

यज्ञानां तपसां चैव शुभानां चैव कर्मणाम् ।
वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः ॥

क्योंकि सब कर्म वेद से ही जाने जाते हैं । लिङ्गपुराण पूर्वार्द्ध के ७८ अ० में स्पष्ट लिखा है कि जो मनुष्य वेदविरुद्ध व्रत आचार आदि करते हैं श्रुति स्मृति से विमुख हैं उन पाखण्डियों का उत्तम वर्ण स्पर्श न करे और सम्भाषण न करे:—

वेदबाह्यव्रताचाराः श्रौतस्मार्त्तवहिष्कृताः ।
पाषण्डिन इति ख्याता न सम्भाष्या द्विजातिभिः ॥

और विष्णुपुराण में द्वितीय अध्याय ६ में लिखा है कि जो वेदविरुद्ध कार्य्य करते हैं उन को (सवन) नाम नरक होता है । ऐसा ही श्रीमद्भागवत के स्कन्ध ५ अध्याय २६ श्लोक १५ में लिखा है कि जो वेदमार्ग को छोड़ पाखण्डमार्ग में चलते हैं [कालसूत्र] नाम नरक में जाते हैं:—

यस्त्विह वै निजवेदपथादनापद्यपगतः पाखण्डं
चोपगतस्तमसिपत्रवनं प्रवेश्य कशया प्रहरन्ति ॥

मनु जी ने अ० १२ श्लोक ८६ में लिखा है कि वेदोक्तकर्म करने से मनुष्य सुपात्र होता है । श्री रामचन्द्र जी ने वाल्मीकीय रामायण में कहा है कि जो मनुष्य वेदमर्यादा को त्यागते हैं वे पापी होते हैं । इस के उपरान्त उन्होंने चित्रकूट पर भाई भरत को सदा वेदोक्त कार्य्य करने के लिये शिक्षा

की है। शान्तिपर्व अध्याय २७१ में बृहस्पति ने भी यही लिखा है। श्रीकृष्ण महाराज ने भी गीता में कहा है कि वेदविरुद्ध कार्य्य करने वालों को सत्स्थान नहीं मिलता इसी लिये उन्होंने उद्धव जी को उपदेश किया है कि वेद जानने वाले ही सत्पुरुष को गुरु करना। इसी प्रकार कौशिक मुनि और नकुल, युधिष्ठिर, सनत्सुजात, कपिलमुनि इत्यादि ने कहा है। और सम्पूर्ण स्मृतिकार यही पुकार २ कर कहते हैं। और पुराणों के कर्त्ता भी यही उपदेश करते हैं कि वेद ही के अनुसार कार्य्य कीजिये यही अनादि काल से चले आते हैं॥

वेदों के अनादि होने का प्रमाण॥

मान्यवरो! यदि मुझ को कोई मनुष्य उत्पन्न होते ही एक गृह में बंद कर देता और वहीं भोजनादि देता और मेरे सन्मुख कोई बात चीत भी न करता तो आशा है कि मुझ को बात चीत करना भी न आता न किसी विद्या को जानता। मुख्य कथन यह है कि जो कुछ मैं ने इस संसार में सीखा पढ़ा लिखा यह सब माता पिता और विद्वानों की सङ्गति का ही गुणं है। इसी प्रकार हमारे माता पिता ने सीखा और पढ़ा। परन्तु जिस समय संसार उत्पन्न हुआ उस समय कोई सिखाने वाला न था उस समय परमेश्वर ने अपनी कृपा और अनुग्रह से अपने वेदरूपी ज्ञान को अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा महर्षियों के हृदय में प्रकाश किया जो उस समय से आज तक ऋग्, यजु, साम, अथर्व नाम से प्रसिद्ध हैं। इस से प्रकट होता है कि वेद ही सनातन धर्मपुस्तक अर्थात् अनादि है॥

प्रकट हो कि आर्यावर्त्त के विद्वानों और बुद्धिमानों ने सृष्टि की आयु को १४ मन्वन्तरों पर बांटा है इन में से ६ मन्वन्तर व्यतीत हो चुके और सातवां अब बीत रहा है और एक मन्वन्तर में ७१ चतुर्युगी होती हैं अर्थात् चारों युग ७१ बार बीतते हैं। प्रत्येक की आयु नीचे लिखी है:—

१—सतयुग=१७२८०००
२—त्रेतायुग=१२९६०००
३—द्वापर= ८६४०००
४—कलियुग= ४३२०००

चारों का योग=४३२००००

इससे प्रकट है कि एर चतुर्युगी की आयु ४३२०००० वर्ष की होती है और अगर इस को ७१ गुणा किया जावे तो एक मन्वन्तर हो जाता है जिस के ३०६७२०००० साल हुए इस प्रकार के १४ मन्वन्तर व्यतीत हों तो दुनियां की आयु सम्पूर्ण होगी। परन्तु अब १४ मन्वन्तर में से केवल ६ मन्वन्तर और २७ चतुर्युगी बीती हैं २८ वीं चतुर्युगी अब बीत रही है जिस में से तीन युग— सतयुग, त्रेता, द्वापर बीत चुके हैं और चौथा कलियुग अब बीत रहा है ॥

चुनाचे कलियुग में से सन् १९९६ ई० तक ४९९६ वर्ष बीत चुके हैं इस लिये सृष्टि की उत्पत्ति का हिसाब इस प्रकार है—

एक चतुर्युगी	४३२००००
	७१
एक मन्वन्तर	३०६७२००००
	६
६ मन्वन्तर	१८४०३२००००
७ वें मन्वन्तर में से २७ चतुर्युगी बीत चुकीं	११६६४००००
अब २८ वीं चतुर्युगी है जिस के ३ युग बीत चुके	३८८८०००
कलियुग में से जो वर्ष बीत चुकीं	४९९६
सम्पूर्ण योग	१९६०८५२९९६

अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति को १९६०८५२९९६ वर्ष हो चुके हैं और अब संवत् १९६०८५२९९७ बीत रहे हैं ॥

स्मृति ॥

द्वितीय धर्म का मार्ग स्मृति अर्थात् धर्मशास्त्र हैं इन की संख्या १८ हैं जिन को मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अङ्गिरा, यम, आपस्तम्ब, संवर्त्त, कात्यायन, वृहस्पति, पराशर, व्यास, शंख, दक्ष, गौतम, शातातप, वसिष्ठ ऋषियों ने लिखी हैं कि जिन में उन्होंने वेद के गूढ़ मन्त्रों की व्याख्या पूर्णरूप से योग और नाना क्रियों से ज्ञान प्राप्त कर के की थी। संसार की दशा सदा एकसी नहीं रहती कभी वृद्धि को प्राप्त होती है और कभी हीन दशा हो जाती है। देखिये यही सूर्य्य जो प्रातःकाल में प्रकाशित हो कर सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है और सायंकाल को जिस हीनदशा को प्राप्त होता है इसी प्रकार जब यह देश अविद्या को प्राप्त हुआ नाममात्र के

विद्वान् भी अपने लाभ के लोभ में फंस गये और लोभ में धर्म का विचार नहीं रहता इसलिये उन्हों ने भी स्वार्थ सिद्धि के अर्थ अनेकार्थ श्लोक बना कर मिला दिये इस कारण अब स्मृतियों और वेदों में भी बहुधा भेद हो गया है परन्तु कुछ शोक नहीं क्योंकि हमारे ऋषि मुनि अपनी २ स्मृतियों में लिख गये हैं कि धर्म विषय में वेद ही का प्रमाण मानना चाहिये जैसा मैं ने ऊपर वर्णन किया और जो स्मृतियां वेदानुकूल हों उन की भी मानना अभीष्ट है परन्तु वेदविरुद्ध स्मृतियों के मानने की मनु आदि ऋषि आज्ञा नहीं देते। मानना कैसा! देखिये मनु जी महाराज ने अ० १२ श्लोक ९५ में लिखा है जो स्मृति वेद के विरुद्ध है उस से कुछ फल नहीं हो सका, समझ लेना चाहिये कि वह तमोगुणी पाखण्डियों की बनाई हुई है—

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः ।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः॥

इस के उपरान्त जब स्मृतियों में भी आपस में अन्तर हो तो मनुस्मृति का लेख प्रमाण होगा क्योंकि सामवेद के छान्दोग्यउपनिषद् में लिखा है कि जो कुछ मनु जी ने कहा है वह मनुष्य के लिये ओषधि की ओषधि है जैसा—

"यद्वै किञ्चन मनुरवदत्तद्भेषजं भेषजतायाः"

बृहस्पति स्मृति में लिखा है:—

वेदार्थोपनिबन्धृत्वात्प्राधान्यं हि मनोः स्मृतम् ।
मन्वर्थविपरीता या सा स्मृतिर्नैव शस्यते ॥

कि उस स्मृति की प्रसंसा नहीं होती जिस का लेख मनुस्मृति से नहीं मिलता। प्रिय सज्जन पुरुषो! मनु जी महाराज स्पष्ट आज्ञा देते हैं कि मैं ने वेदानुकूल ही लिखा है और वेदानुकूल ही मेरी आज्ञा को मानना चाहिये अर्थात् मेरा लेख वही है जो वेद से मिलता हो। जैसा मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक ७ में लिखा है—

यः कश्चित् कस्य चिद्धर्म्मो मनुना परिकीर्तितः ।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः ॥

फिर इसी अध्याय के ८ श्लोक में और भी पुष्टता की है। इस लिये मनु जी ने १२ अ० के ९५ श्लोक में स्पष्ट आज्ञा दी है कि जो स्मृतियां वेद के विरुद्ध

हों वह माननीय नहीं अर्थात् अठारह स्मृतियों में जिस २ स्थान पर वेदानुकूल न हो वह प्रमाण के योग्य नहीं। इस कारण जब किसी विषय में स्मृतियों में अन्तर हो अथवा समझ में न आता हो या पेटार्थूजन कुछ का कुछ कहें तो आप को योग्य है कि वेदों के प्रमाण से उस को प्रामाणिक अन्यथा अप्रामाणिक समझना चाहिये। और इसी प्रकार जब स्मृति और पुराणों में विरोध हो तो स्मृति के अनुसार कर्म करना चाहिये। तात्पर्य्य इस कथन का वही है जो मैं ने ऊपर वर्णन किया अर्थात् धर्म विषय में श्रुति ही स्वतः प्रमाण है और स्मृति और पुराण परतःप्रमाण अर्थात् वेदानुकूल होने से प्रामाणिक हो सके हैं अन्यथा नहीं। और ऐसा ही व्यासस्मृति अ० १ श्लोक ४ में लिखा है जैसा कि—

श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते ।
तत्र श्रौतं प्रमाणं तु तयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा ॥

सदाचार ॥

मान्यवरो! यह दोनों उपरोक्त धर्ममार्ग अत्यन्त कठिन हैं क्योंकि जब तक कोई मनुष्य विद्या पढ़ कर विद्वान् न हो वह इन को पूर्ण प्रकार से नहीं जान सका और विद्वान् होने के लिये बहुत समय की आवश्यकता होती है। परन्तु धर्म का अङ्कुर बाल्यावस्था ही से बालक के हृदय में लगता है इस लिये हमारे मुनियों ने तृतीय धर्म का मार्ग सदाचार माना है। यह शब्द सत् और आचार से संयुक्त है अर्थात् जो कुछ सत्य धर्म अपने प्राचीन पुरुषाओं को करते देखा वा सुना अथवा उन के लिखित पुस्तकों के द्वारा जाना गया हो उस को करना। इस बात को सुनकर हमारे बहुधा भाई यह कह देंगे कि हम तो वर्त्तमान समय में वही कार्य्य करते हैं जो हमने अपने बाप दादे को करते हुए देखा है फिर आप उस को क्यों नहीं धर्म मानते और क्यों नाना प्रकार की शङ्काएं करते हैं। मान्यवरो! इस का मुख्य कारण यही है कि प्राचीन काल में महाभारत के बड़े भारी सङ्ग्राम होने से लाखों विद्वान् मारे गये फिर आलस्यादि दोष उत्पन्न होकर विद्यारहित होने लगे। इस के अनन्तर बौद्ध, जैन मतों ने भारतवर्ष में लकलका जमाया, वेदादि रीति को उठाया। इस के पीछे मुसल्मानों ने राज्य किया कि जिस में हमारे धर्मपुस्तक जलाये गये, डुबाये गये, हमारी कुमारी लड़की छीनी

गईं, ज़बरदस्ती मुसलमान् बनाए गये, रात दिन लूटे मारे गये क्यों
मरतबा महमूद ने लूट की फिर शहाबुद्दीन ने ८ मरतबा चढ़ाई क
मनुष्यों को पकड़ ले गया और उन के खून से गारा बनवाया,
ज़ुल्लां ने दुन्द मचाया। तैमूर ने दिल्ली, तुलम्बा, भेटनेर आदि में ह
मचाया। फिर नादिरशाह ने आकर दिल्ली में ५ दिन तक कतल आम
और इस के पीछे अहमदशाह ने तीन चढ़ाइयां कर लूट मार की अ
१६५० ई० से १७०० ई० तक औरङ्गज़ेब ने दिल्ली के तख्त पर बैठ कर
भारतवर्ष में भारतखण्डियों पर ज़ुल्म किये। इस के बीच ही में नानक, क
आदि ने अपने २ पन्थ नियत किये। मेरे कहने का मुख्य तात्पर्य्य यह है
महाभारत के पश्चात् अंगरेज़ी राज्य के आने तक हमारे पुरुषों को जान
बचाने के लाले पड़ रहे थे क्योंकि इन उपरोक्त दुन्दों के कारण यहां से व
भागकर अपनी जानों को बचाते रहे फिर भला ऐसे समयों में इन वे
कूल रीतों को कौन पूंछता है क्योंकि कहा भी है कि " आपत्काले मर्य्याद
नास्ति " फिर उन पुरुषाओं का धर्म हमारे लिये क्योंकर माननीय हो सक्ता
है। हां यदि हम उन मनुष्यों के धर्म पर चलें जो उस समय में रहते थे जब
कि वेदविद्या का बिल्कुल प्रचार था, बालक से लेकर वृद्ध तक उसी के अनु-
सार चलते थे, लोभ और कामादि के त्यागी थे, धर्म पर जीवन को नोछा-
वर कर धन पर धता भेज धर्म ही को मुख्य समझते थे। इस लिये आप अपने
कुल की दश बीस पीढ़ियों की रीति पर न चलो बरन सृष्टि के आरम्भ
से आज पर्य्यन्त वेदानुसार सनातन रीति पर चलना योग्य है अर्थात् जिस
मार्ग पर हमारे सत्पुरुष पिता पितामह चले हों उसी पर चलें और जो पिता
पितामह ने अनुचित कर्म किये हों तो उन के मार्ग को कभी स्वीकार न करें
जैसा मनुजी ने लिखा है—

येनास्य पितरो याताः येन याताः पितामहाः ।
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते ॥

और ऐसा ही यजु० अ० ४ मं० २० में भी लिखा है—

अनुत्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता स गर्भ्योऽनु सखा
सयूथ्यः ॥ सा देवि देवमच्छेहीन्द्राय सोमꣳ रुद्रस्त्वा वर्त्तयतु

स्वस्ति सोम सखा पुनरेहि ॥

और य० अ० २१ मं० ५० में लिखा है कि सन्तानों को योग्य है कि जो २ पितादि बड़ों का धर्मयुक्त कर्म होवे उस २ का सेवन करें और जो अधर्म युक्त हो उस २ को छोड़ देवें। श्रीकृष्ण महाराज ने कहा है कि जिस आचार पर श्रेष्ठ चलते हैं उसी पर इतर जन चलें–

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः ।
सयत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनु वर्त्तते ॥

और ऐसी ही य० अ० १२ मं० १११ में भी आज्ञा है। फिर भला आप क्यों प्राचीन पुरुषाओं की धर्ममर्यादा को तोड़कर नवीन पुरुषाओं के अनाचार का प्रमाण देते हो। जब कि पुरुषाओं ने जितेन्द्रियता को मेंट, विद्या का पठन पाठन ही उठा दिया फिर आचार का क्या ठीक। देखिये मनुजी महाराज ने श्रेष्ठों के यह लक्षण लिखे हैं अर्थात्–

धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिवृंहणः ।
ते शिष्टा ब्राह्मणाज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥

शिष्ट उन ब्राह्मणों को समझना चाहिये जिन्हों ने विधिपूर्वक वेद को मीमांसासहित पढ़ा है। जो वेदोक्त वाक्य को प्रमाण से समझ सके हैं। इसी कारण विदुर महाराज ने धृतराष्ट्र महाराज से कहा है–१ मतवाला २ नशे पीने वाला ३ बेहोश ४ थकाहुआ ५ क्रोधी ६ भूखा ७ शीघ्रता करने वाला ८ लोभी ९ डरपोक १० कामी यह दश मनुष्य धर्म को नहीं जानते। जैसा कि–

दश धर्मं न जानन्ति धृतराष्ट्र! निबोध तान् ।
मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः ॥
त्वरमाणश्च लुब्धश्च भीतः कामी च ते दश ।
तस्मादेतेषु सर्वेषु न प्रसज्जेत पण्डितः ॥

इसी हेतु अब आप–व्यास, पराशर, मनु, राजा दशरथ, राजा जनक, अर्जुन, भीम, श्रीकृष्ण आदि सनातन पुरुषाओंको रीति पर चलिये क्योंकि अब वह समय नहीं है कि किसी की धर्मसम्बन्धी परिपाटी में बाधा डाली जावे। वरन सरकारी राज्य में शेर बकरी एक घाट पर वैर त्याग कर रहते हैं। इस लिये आप भी इन प्रचलित रीतों को वेद से मिलाइए। यदि उन के

प्रमाण वेद में मिल जावें तो स्वीकार कीजिये अन्यथा वेदविरुद्ध कार्यों को कर पापभागी न बनिये चाहो सहस्र जन क्यों न कहें। और धर्म के निर्णय के लिये प्रत्येक नगर वा बड़े २ नगरों में सभा नियत कर उस की आज्ञानुसार कार्य्य कीजिये उसी को धर्मसभा वा आर्य्यसभा कहते हैं। प्राचीन काल में ऐसा ही होता था। देखो य० अ० ३ मं० ४५ में ईश्वर उपदेश करते हैं कि चारों आश्रम वाले मनुष्यों को मन वाणी कर्मों से सत्य का आचरण कर पाप वा अधर्म को त्याग कर के विद्वानों की सभा विद्या तथा उत्तम २ शिक्षा का प्रचार कर के प्रजा की उन्नति करना चाहिये, देखिये मनु जी महाराज ने लिखा है—

दशावरा वा परिषद्यन्धर्मम्परिकल्पयेत् ।
त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तन्धर्मन्न विचालयेत् ॥
त्रैविद्यो हैतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः ।
त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्याद्दशावरा ॥
ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च ।
त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये ॥
एकोपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः ।
सविज्ञेयः परो धर्मोनाज्ञानामुदितोऽयुतैः ॥
अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् ।
सहस्रशः समेतानां परिषत्वन्न विद्यते ॥
ये वदन्ति तमोभूता मूर्खा धर्ममतद्विदः ।
तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तॄननुगच्छति ॥

जिस सभा में तीनों वेद मीमांसा न्याय निरुक्त और धर्मशास्त्र के जानने वाले ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ हों वह सभा दशावरा कहलाती है। और जिस में सम्यक् तीनों वेदों के ज्ञाता तीन सभासद हैं वह त्र्यवरा कही जाती है। धर्मसंशय में इन्हीं के द्वारा निर्णय होना चाहिये अथवा एक भी वेदवित् आप्त में जिस धर्म को व्यवस्था करे वह माननीय है न सहस्रों मूर्खों का कल्पित धर्म। सत्य भाषणादि व्रत से रहित स्वाध्याय से भ्रष्ट केवल जाति

के आश्रय से आजीविका करने वाले सहस्त्रों मूर्खों के झुंड को सभा या समाज नहीं कह सकते। ऐसे लोग धर्म के मर्म को नहीं जान सके और न उन की दी हुई व्यवस्था माननीय हो सकी है। ऐसा ही याज्ञवल्क्यस्मृति अध्याय १ श्लोक ९ और अत्रिस्मृति श्लोक १४०, १४१ में लिखा है। और विदुरजी ने महाभारत में कहा है कि वह सभा नहीं जहां वृद्ध न हों और वह वृद्ध नहीं जो धर्म को न कहें, वह धर्म नहीं जो सत्य न हो और वह सत्य नहीं जिस में छल हो। जैसा कि—

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा, न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम्।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति न तत् सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम्॥

परन्तु शोक है कि वर्त्तमान समय में मनुष्य जान कर इस बात पर कुछ ध्यान नहीं देते और शास्त्र के लेखानुसार विद्वान् धर्मात्माओं से धर्म की परीक्षा नहीं कराते और आप और अपनी आगे आने वाली सन्तानों का सत्यानाश करते चले जाते हैं। प्रियवरो! थोड़े थोड़े धन के निर्णय करने के लिये बड़े२ वकीलों को, सोने की परीक्षा के लिये चतुर सुनार को बुलाते हो। क्या स्मृ धर्मपरीक्षा मूर्ख, अविद्वान्, लोभी कर सके हैं? कदापि नहीं। कदापि नहीं। कदापि नहीं। इस लिये इस धर्मकार्य्य को महत्कार्य्य जान उत्तम पुरुषों से परीक्षा करा कर स्वीकार कीजिये जिस से भारतसन्तान को सुख प्राप्त हो॥

प्रियमात्मनः॥

जब शास्त्रों में धर्ममर्यादा के अनुसार किसी विषय में दो भिन्न २ आज्ञाएँ पाई जावें तो उन में से किसी एक के अनुसार जो अपने मन बुद्धि और सामर्थ्य के अनुकूल हो कार्य्य करना आत्मप्रियं कहलाता है। प्रियवरो! इसी धर्म पर हमारे अनेकान जन्मों का सुधार निर्भर है इसलिये लज्जो पत्तो में डालकर समय को वृथा न खोइये, वरन अच्छे प्रकार तर्क कर धर्म को निश्चय कीजिये। देखिये मनुजी महाराज स्पष्ट आज्ञा दे रहे हैं—

आर्षन्धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना।
यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः॥

इस लिये आप निर्भय हो शान्तिपूर्वक धर्मका निर्णय कर सत्यासत्य को

विचार सनातन धर्म के अनुकूल पञ्चकर्मों को श्रद्धा और भक्ति से यथाविधि से यथावत् कीजिये ॥

नित्यकर्म ॥

प्रिय सज्जन पुरुषो। कर्म दो प्रकार के होते हैं एक नित्यकर्म जो प्रतिदिन किये जाते हैं दूसरे नैमित्तिककर्म जो किसी नियत समय पर होते हैं। इस स्थान पर हम उन नित्य कर्मों अर्थात् पञ्चयज्ञों की व्याख्या करते हैं जिन की आज्ञा सत्यशास्त्रों में पाई जाती है और प्राचीन पुरुषों ने इन यज्ञों को प्रतिदिन कर महान् सुख उठाया था। परन्तु शोक वर्त्तमान काल में बहुधा जन इन यज्ञों के नाम तक भी नहीं जानते फिर करना कैसा। प्यारे भ्रातृगणों इन पञ्चयज्ञों के करने से आत्मिक ज्ञान की उन्नति होती है वरन यों कहा जावे यह सब कर्म परमात्मा के पूर्ण ज्ञान होने के साधन हैं। देखिये विदुर जी महाराज ने विदुरनीति में लिखा है—पंचयज्ञों को प्रतिदिन यत्नपूर्वक करना चाहिये—

पञ्चाग्नयो मनुष्येण परिचर्य्याः प्रयत्नतः।

यही पराशरी स्मृति के १२ अ० ५ श्लोक में आज्ञा है—

सन्ध्या स्नानं जपो होमो देवतातिथिपूजनम्।
आतिथ्यं वैश्वदेवं च षट् कर्माणि दिने दिने॥

शङ्खस्मृति अ० ५ श्लोक २ और पाराशर स्मृति अ० २ श्लोक १५ में लिखा है पञ्चयज्ञों का त्याग करता है वह पञ्च हिंसाओं का प्रतिदिन भागी होता है संवर्त्तस्मृति के प्रथम अ० के ३५ में भी यही उपदेश है—

अतः पञ्चमहायज्ञान्कुर्यादहरहर्द्विजः।न हापयेत्० ॥

चाणक्यनीति में लिखा है।

विप्रो वृक्षस्तस्य मूलं हि सन्ध्या वेदः शाखा धर्मकर्म्माणि पत्रम्।
तस्मान्मूलं यत्नतः सेवितव्यं क्षीणे मूले नैव शाखा न पत्रम्॥

कि विचारवान् पुरुष उस वृक्ष की नाई हैं जिस की मूल संध्या और शाखा वेद है उस में धर्म कर्म रूप पत्ते लगे हुए हैं अतएव मूल अर्थात् सन्ध्या का सेवन यत्न से करना चाहिये क्योंकि मूल के नष्ट होने से अर्थात् सन्ध्या का अभ्यास त्याग देने से न तो वेदरूपी शाखा और न धर्म कर्मरूपी

पंच ही स्थित रह सकते हैं अर्थात् सब नष्ट हो जाते हैं। भविष्यपुराण उत्तराद्धे के ७० अ० में लिखा है कि जो मनुष्य विना पञ्चयज्ञ किये भोजन करते हैं वह मानो रुधिर पीते हैं। श्रीमद्भागवतस्कन्ध ५ अ० ६ श्लोक १८ में लिखा है कि ऐसे मनुष्य कौओं के समान हैं और मर कर ऐसे स्थान पर जन्म लेते हैं जहां कृमि भोजन को मिलते हैं। लिङ्गपुराण पूर्वार्द्ध के २६ अ० में यही आज्ञा है कि जो इन पंचयज्ञों के किये विना भोजन करता है वह सूकर की योनि में जाता है—

अकृत्वा च मुनिः पञ्चमहायज्ञान् द्विजोत्तमः ।
भुक्त्वा च शूकराणान्तु योनौ वै जायते नरः ॥

श्रीमद्भागवतस्कन्ध १० उत्तरार्द्ध अ० ८४ में जब बलदेव जी महाराज संन्यास धारण करने को उद्यत हुए तब श्रीकृष्ण महाराज ने उन से कहा कि जो पुरुष गृहस्थ हो कर देव, ऋषि, पितर ऋण उद्धार किये विना पञ्चकर्मों को त्यागता है वह नाना प्रकार के दुःखों को भोगता है। ऐसा ही तुलाधार ने जाजलि मुनि को उपदेश दिया है और राजा पाण्डु का भी यही कथन है। इसलिये प्यारे सुजनो! प्रेम उत्साह के साथ इस सनातन आज्ञा के अनकूल पंचयज्ञ करने का प्रचार करो और वह पंचयज्ञ यह हैं जैसा मनुस्मृति अ० ३ श्लोक ७० में लिखा है—

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञो तिथिपूजनम् ॥

(१)—वेद के पढ़ने पढ़ाने, सन्ध्योपासन अर्थात् ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, करना आदि को ब्रह्मयज्ञ कहते हैं—
(२)—अग्नि में पुष्टिकारक, सुगन्धित, रोगनाशक, मिष्ट इन चार प्रकार के पदार्थों को मन्त्र सहित डालने को देवयज्ञ कहते हैं—
(३)—माता, पिता, गुरु, आचार्य्य के श्रद्धा पूर्वक तृप्त करने का नाम तर्पण है—
(४)—भोजनों के समय मिष्टान्न को मन्त्रसहित अग्नि में चढ़ाना फिर सब पदार्थों में से छः ग्रास निकाल कर कङ्गाल रोगी आदि को देने का नाम बलिवैश्वदेव है—
(५)—पूर्ण विद्वान्, परोपकारी, जितेन्द्रिय, धार्मिक, सत्योपदेशक, शान्तचित, निर्भय इत्यादि गुणयुक्त, संन्यासी, भ्रमण करता हुवा गृहस्थ के यहां

आकर निवास करे, तो उस का अच्छे प्रकार सत्कार कर के तृप्त करने को अतिथियज्ञ कहते हैं ॥

ऐसा ही श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११ अध्याय १७ श्लोक ५० में लिखा है कि वेदाध्ययन से ब्रह्म को, श्रद्धा से स्वधा कर के पितरों को, होम कर के देवताओं को, बलिवैश्वदेव कर भूतों को, अन्न और जल से मनुष्यों को, तृप्त करना परम आवश्यक है ॥

वेदाध्यायः स्वधास्वाहावल्यन्नाद्यैर्यथोदयम् ।
देवर्षिपितृभूतानि मद्रूपाण्यन्वहं यजेत् ॥

इसी प्रकार याज्ञवल्क्य स्मृति के स्नानप्रकरण के प्रथम श्लोक में लिखा है—

बलिकर्म स्वधा होमः स्वाध्यायातिथिसत्क्रयः ।
भूतपितृपरब्रह्ममनुष्याणां महामखाः ॥

यही उपदेश शङ्खस्मृति अ० ५ श्लोक ३, ४ और कात्यायनस्मृति खण्ड १३ श्लोक २ में पाया जाता है ॥

ब्रह्मयज्ञ ॥

सन्ध्या ॥

प्रिय सज्जन पुरुषो ! सन्ध्या काल में ईश्वर की उपासना वेद मन्त्रों से करने की आज्ञा है उस में भी गायत्रीमन्त्र के जपने का उपदेश किया है। और बहुधा हमारे प्राचीन ऋषि मुनि और प्राचीन पुरुष इसी मन्त्र के द्वारा परमेश्वर की उपासना करते थे। स्मृतिकारों ने इसी मन्त्र को वेदमाता कहा है। और पुराणों के कर्त्ताओं ने भी इसकी बड़ी महिमा दिखलाई है। देखिये हारीतस्मृति अ० ३ श्लोक ४ में लिखा है "गायत्रीं वेदमातरं" और व्यासस्मृति अ० १ श्लोक २१ में भी गायत्री को वेदमाता माना है। शङ्खस्मृति अ० १२ श्लोक ११ में लिखा है कि गायत्री वेदों की माता है यह पापों का नाश करती है और अभीष्ट फल को देती है जैसा कि—

अभीष्टं लोकमाप्नोति प्राप्नुयात्काममीप्सितम् ।
गायत्रीवेदजननी गायत्री पापनाशिनी ॥

और १२ श्लोक में लिखा है कि गायत्री से परे पवित्र करने वाला कोई मन्त्र नहीं नरकरूपी समुद्र में पड़ने वाले मनुष्यों को हाथ पकड़ कर निकालने

वाली गायत्री है और श्लोक १६, १७ में इस के जप से स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति का माहात्म्य बतलाया है संवर्त्तस्मृति के २१७ श्लोक में लिखा है कि सब पापों की शुद्धि के लिये वेदों की माता गायत्री का वन में नदी के तट पर जाप करे जैसा कि—

अभ्यसेच्च तथा पुण्यां गायत्रीं वेदमातरम् ।
गत्वारण्ये नदीतीरे सर्वपापविशुद्धये ॥

और श्लोक २१८, २१९, २२०, २२१, २२२, २२४ में गायत्री और दक्षस्मृति के २ अ० के ४२ श्लोक में लिखा है कि "गायत्रीजप उच्यते" मनुस्मृति अ० ३ के श्लो० ८३ में लिखा है कि सर्वोपरि गायत्री मन्त्र है जैसा कि "सावित्र्यास्तु परं नास्ति" फिर इसी के जप की आज्ञा ७५, ७७ श्लोक में की है और श्लोक ७८ में लिखा है कि इस के जप से मनुष्य बड़े पापों से छूट जाता है। और ८२ श्लोक में लिखा है परमपद को पाता है। याज्ञवल्क्य स्मृति अ० १ श्लोक २२, २३ और शिवपुराण विन्ध्येश्वर संहिता अ० २३ श्लोक १८ में गायत्री के जप की आज्ञा है। हारीतस्मृति अ० ४ श्लोक ४९ में कहा है कि गायत्री के प्रतिदिन जप करने से पापों का नाश होजाता है जैसा "गायत्रीं यो जपेन्नित्यं स न पापेन लिप्यते" मनुजी महाराज ने प्रायश्चित्त विषय में लिखा है कि जहां तक होसके गायत्री का जप करे "सावित्रीं च जपेन्नित्यं" और पाराशरस्मृति में "गायत्री परमोत्तमा" अर्थात् गायत्री सब मन्त्रों से उत्तम है। संवर्त्तस्मृति श्लोक २२१ पापियों के पाप का शोधक गायत्री से परे कोई मन्त्र नहीं इसीलिये ओंकार महाव्याहृति समेत गायत्री का जप करें। गरुडपुराण अ० ८ में लिखा है कि प्रेत योनि से छूटना चाहे वह नग्न होकर गायत्री का जप करे। लिङ्गपुराण अ० १५ में गायत्री के जप की आज्ञा है और २३ अ० में बड़ी महिमा दिखलाई है। भविष्यपुराण अ० ३ में कहा है कि जो गायत्री का जप करता है बड़े पद को पाता है। गीता अ० १० श्लोक ३५ में श्रीकृष्ण महाराज का वचन है कि सब मन्त्रों में गायत्री श्रेष्ठ है। शङ्खस्मृति अ० १२ श्लोक १ में गायत्री को श्रेष्ठ मन्त्र माना है "सावित्री विशिष्यते"। इस के उपरान्त हमारे प्राचीन पुरुषा भी इसी मन्त्र से उपासना करते थे देखो अयोध्याकाण्ड सर्ग ६ श्लोक ५ से प्रत्यक्ष प्रकट है कि श्रीरामचन्द्र महाराज सन्ध्या कर गायत्री का जप करते थे और श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण महाराज का गायत्री

मन्त्र से परमात्मा की उपासना करना प्रकट है। इस के उपरान्त इसी पुस्तक में प्रकट होता है कि लड़ के पिता ने गायत्री का उपदेश किया था ॥

प्रिय मान्यवरो! जब सम्पूर्ण ऋषि मुनि हमको गायत्री का उपदेश करते हैं और प्राचीन पुरुषाओं ने इस के जप से महान् सुखों को प्राप्त किया फिर हम नहीं जानते सर्वमान्य मन्त्र को त्याग कल्पित और आधुनिक मन्त्रों का क्यों जाप करते हैं जिन की किसी स्मृति के कर्त्ता ने आज्ञा नहीं दी और हमारे परमपूज्य श्रीरामचन्द्र श्रीकृष्ण इत्यादि ने इन मन्त्रों का मान्य भी नहीं किया अर्थात् आप भी इन का जप नहीं किया वरन उसी परम पवित्र वेदोक्त मन्त्र ही का जप कर संसार के लिये उपदेश भी किया। वर्त्तमान समय में ऐसे मन्त्रों की संख्या अनगिनत हो गई है जिन के जप के बड़े माहात्म्य भी स्वार्थी जनों ने बना लिये हैं, मिथ्या जान शीघ्र त्याग कर गायत्री मन्त्र से ही परमेश्वर की उपासना करो, क्योंकि अत्रि ऋषि महाराज ने अत्रिस्मृति श्लोक ६३ में लिखा है कि जो मनुष्य सायङ्काल और प्रातःकाल प्रमाद से सन्ध्या का त्याग करते हैं वह एक हज़ार गायत्री के जप से शुद्ध होते हैं। मनुस्मृति अ० २ श्लोक ८० में लिखा है कि जो ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य गायत्री का जप नहीं करता और अपने धर्मों को नहीं करता तो उस को साधुजन निन्दा करते हैं। और इसी अध्याय के १०२ श्लोक में लिखा है जो द्विज प्रातः सायङ्काल में सन्ध्या के समय गायत्री का जप नहीं करता वह शूद्र के समान है अतः द्विजों के समान कर्म करने का अधिकारी नहीं रहता जैसाकि—

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥

इसलिये (ओं नमोनारायणाय) और (ओं नमोभगवते वासुदेवाय) इत्यादि मन्त्रों को त्याग—ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य जिन को द्विज कहते हैं एक ही गायत्री से परमात्मा की उपासना कीजिये क्योंकि तीनों वर्णों को द्विज कहा है तीनों को वेद के पढ़ने का अधिकार है और यह मन्त्र भी य० वेद के ३६ वें अध्याय का तीसरा मन्त्र है फिर इस के भिन्न होने का क्या कारण? श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्णचन्द्र आदि ने भी गायत्री के कहीं भेद नहीं लिखे मनु जी महाराज ने ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य के यज्ञोपवीत, मेखला, दण्ड में तो भेद लिख दिया परन्तु तीनों वर्णों की तीन गायत्री होने वा जप करने का

उपदेश नहीं किया वरन मनुस्मृति अ० २ श्लोक ७७ में स्पष्ट लिखा है (ओं, भूः, भुवः, स्वः) और गायत्री के तीनों पाद जो तीनों वेदों से निकाले हैं। तीनों वर्णों को गांव के बाहर इसी के जाप करने की आज्ञा अ० २ श्लोक ७९ में की है जैसा कि—

सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य वहिरेतत्त्रिकं द्विजः ।
महतोप्येनसो मासात्त्वचेवाऽहिर्विमुच्यते ॥

फिर भेद कैसा ? इस के उपरान्त तीनों वर्ण के यहां १६ संस्कार होते हैं उन के यहां यही—

गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे० इत्यादि ॥
शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये शंय्योरभिस्रवन्तु नः ॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषाविश्ववेदाः० इत्यादि ॥
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्० ॥

इत्यादि वेदमन्त्र पढ़े जाते हैं और शनैश्चर, वृहस्पति की प्रसन्नता और अकाल मृत्यु से बचने के लिये पुरोहित जी अपने यजमानों से इसी का जप कराते हैं। इस के उपरान्त सम्पूर्ण सत्यशास्त्रों में वेदारम्भ संस्कार के समय प्रथम गायत्री मन्त्र के उपदेश की आज्ञा है इसी कारण गुरुमुख से सुने जाने के कारण गुरुमन्त्र कहते हैं किसी और मन्त्र के उपदेश के सुनाने की आज्ञा किसी स्मृतिकारने नहीं दी। और न उपदेश किया कि ब्राह्मण को ब्रह्म और क्षत्री को क्षत्री और वैश्य को वैश्य गायत्री सुनाना, यह इस के अतिरिक्त ब्रह्म गायत्री के तो यही अर्थ हैं कि ऐसा छन्द जो ब्रह्म अर्थात् परमेश्वर का ज्ञान कराता है जिस की सब को अवश्यकता है परन्तु क्षत्रीगायत्री और वैश्य-गायत्री के क्या वही अर्थ हैं जो उस समय के लिये आवश्यक हैं ? कदापि नहीं। इस के उपरान्त पुराणों में भी तीनों वर्णों के लिये ब्रह्मगायत्री के जप करने की आज्ञा है। देखो लिङ्गपुराण के उत्तरार्द्ध के अध्याय २० और २२ में स्पष्ट लिखा है और भविष्यपुराण अ० ३ में यही लिखा है कि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य उस गायत्री का जप करे जिस को ब्रह्मा ने तीनों वेदों से निकाला है जप करना चाहिये। इस के अतिरिक्त शङ्खस्मृति में स्पष्टरूप से गायत्री का पता भी बतला दिया है देखो शङ्खस्मृति अ० १२ श्लोक १ में लिखा है कि प्रथम

मन्त्र के देवता, ऋषि, छन्द को देख ले अर्थात् उस गायत्री का सूर्य देवता, विश्वामित्र ऋषि और गायत्री छन्द हो उस का ही जप करना चाहिये ऐसा ही दक्षस्मृति अ० २ श्लोक ४३ में लिखा है यहाँ गायत्री सब से श्रेष्ठ है। जैसाकि-

सविता देवता यस्या मुखमग्निस्त्रिपात् स्थिता।
विश्वामित्रऋषिश्छन्दो गायत्री सा विशिष्यते ॥

यह सब बातें इसी गायत्री मन्त्र में हैं। इस के अनन्तर वेदों में अनेक स्थानों पर एक विचार और सब आशय और पुरुषार्थ सब समान और अभिन्न हों। जैसा कि-ऋ० अ० ८ अ० ८ व० ४९ मं० ३

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥

प्यारे! इसी भिन्नताने तो भारत का चौपट कर दिया अब विचारपूर्वक विचार कर एक ही गायत्री मन्त्र से दोनों काल परमात्मा की उपासना कीजिये देखिये य० अ० २१ मं० ५० लिखा है-

देवीऽउपासावश्विना सुत्रामेन्द्रे सरस्वती। बलं न वाचमास्यऽउपाभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥

अर्थात् जो पुरुषार्थी मनुष्य सूर्य चन्द्रमा अर्थात् सायङ्काल प्रातः काल की वेला के समान नियम के साथ उत्तम २ यज्ञ करते हैं तथा इन्हीं दोनों वेलाओं में सोने और आलस्य प्रमाद को छोड़ कर ईश्वर का ध्यान करते हैं बहुत धन अर्थात् उत्तम सुखों को पाते हैं। अथ० का० १९ अनु० ७ मं० ३, ४ में लिखा है कि हम लोग प्रातः सायङ्काल उपासना करते हुए सौ वर्ष तक ऋद्धि सिद्धि और पुष्टि को प्राप्त हों।

सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनस्य
दाता। वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ॥
प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनस्य दाता।
वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतंहिमा ऋधेम ॥

और कठोपनिषद् में भी लिखा है कि जो प्रातः सायंकाल परमेश्वर में ध्यान लगाता है वह कभी व्याकुल नहीं होता। मनु अ० २ श्लोक १०१, १०२,

१०३ याज्ञवल्क्यस्मृति अ० ब्रह्मचर्य्य प्रकरण श्लोक २४ व २५ महाभारत वनपर्व अ० १९९ श्लोक ८१ भविष्यपुराण अ० ३ और श्लो० ११७ में मार्कण्डेयपुराण अ० ३४ में मन्दालसा ने कहा है शिवपुराण विन्ध्येश्वरसंहिता अ० ९ श्लोक ३७ वाल्मीकीयरामायण बा० स० ३५ श्लोक ३० और अयोध्या का० स० ४५ श्लोक १३ और स० ७४ श्लोक ४३ से सन्ध्या करने के दो ही काल पाये जाते हैं। श्रीमद्भागवत स्कन्ध ७ अ० ११ श्लोक १ युधिष्ठिर को नारद जी ने प्रातः सायंकाल ही परमेश्वर कीउपासना करने का उपदेश किया है—

सायं प्रातरुपासीत गुर्वग्न्यर्कसुरोत्तमान् ॥
उभे सन्ध्ये च यतवाग्जपन् ब्रह्म सनातनम् ॥

अत्रिस्मृति श्लोक ६३ में " सायं प्रातस्तु यः सन्ध्यां „ विष्णुस्मृति अ० १ श्लोक १८, २३ से भी दो काल—

सावित्रीं च जपंस्तिष्ठेदासूर्य्योदयना-
त्पुरा—१८ सायं सन्ध्यामुपासीत ।

अ० २ के श्लोक ३१, ३३ से और हारीतस्मृति अ० ३ श्लोक ७, ८ और अ० ४ श्लो० १४ संवर्त्तस्मृति श्लोक ८ और बृहस्पतिस्मृति के ७४ में कात्यायनस्मृति प्रपाठक २ के श्लोक ११ में दो काल ही शास्त्र की आज्ञा है जैसे "संध्याद्वये" शङ्खस्मृति अ० १० में भी द्विजातियों को दोनों काल की संध्या करने की विधि बताई है इस से भी दो ही काल सिद्ध होते हैं—

एष एव विधिः प्रोक्तः सन्ध्यायाश्च द्विजातिषु ।
पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेदासीनः पश्चिमां तथा ॥

दक्षस्मृति अ० २ में भी दो ही सन्ध्या काल बतलाये हैं । बुद्धि से विचार करने से भी जाना जाता है कि यही दोनों समय सन्ध्या करने के उत्तम हैं क्योंकि विद्या प्राप्त करने और संसारी कार्यों के अर्थ बहुत समय की आवश्यकता है, यदि प्रातःकाल से सायंकाल तक सन्ध्या किया करें तो हल जोतना, अन्न का व्यापार करना, विद्यार्थियों को विद्या पढ़ना और आचार्य को पढ़ाना, राजकर्मचारियों को प्रजा की रक्षा करना क्योंकर सम्भव है, फिर भला सिवाय प्रातःकाल और सायंकाल के दिन भर मन एकाग्र नहीं रह सक्ता और बिना एकाग्रता मन के बेगार टालने के अनुसार सन्ध्या करना न करना एक सा है, दूसरे वह समय जो संसारी कार्यों के करने में व्यय होता था ऐसी सन्ध्या

करने में वृथा जाता है और कुछ प्राप्त नहीं होता। इस के उपरान्त सन्ध्या शब्द इस बात की प्रत्यक्ष गवाही देरहा है कि दोनों समय मिलने के अतिरिक्त और कोई समय सन्ध्या का नहीं है, सन्ध्या शब्द के अर्थ मिलने के हैं, जैसे दिन रात या रात दिन प्रातःकाल सायंकाल के समय आपस में मिलते हैं ऐसे ही समय पर जीव और परमात्मा भी आपस में मिलें, और इन्हीं दोनों समय पर एक विशेष गुण यह भी है कि स्वाभाविक रीति से मनुष्य को इन दोनों समयों पर प्रसन्नता होती है और मन एकाग्र होता है और पेट भी ख़ाली होता है कि जिस के कारण अच्छे प्रकार मन लगा कर परमेश्वर का ध्यान होता है जो और किसी समय पर किसी प्रकार से नहीं होसकता। शोक का स्थान है कि हमारे स्वदेशीय भाइयों ने अन्य देशीय लोगों की देखा देखी मध्याह्न काल में भी सन्ध्या करने का समय नियत कर दिया, यदि मध्याह्न काल के समय दोनों पहर मिलते हैं तो प्रत्येक घण्टे और प्रत्येक मिनट और सेकेंड और पल पर दो मिनट दो सेकेंड और दो पल भी मिलते हैं यदि इन का मिलना भी सन्ध्या शब्द के अर्थ में समझा जाय तो फिर यही योग्य है कि प्रत्येक समय सन्ध्या के उपरान्त कोई संसारी कार्य्य न करना चाहिये फिर विचारिये कि संसारी कार्य्य क्यों कर होंगे। इसी कारण हारीतस्मृति अ० ४ में लिखा है कि जो द्विज प्रातः सायं काल संध्या को त्यागता है वह नरक में जाता है।

तस्मान्न लङ्घयेत्सन्ध्यां सायंप्रातःसमाहितः।
उल्लङ्घयति यो मोहात्स याति नरकं ध्रुवम् ॥

अत्रिस्मृति अ० १ श्लोक ६३ में लिखा है कि जो प्रमाद से प्रातः सायंकाल की सन्ध्या का त्याग करे वह स्नान कर एक हज़ार गायत्री के जप से शुद्ध होता है और मनुस्मृति अ० २ श्लोक १०१ में लिखा है कि जो द्विज दोनों काल की सन्ध्या न करे उस को शूद्र समझना चाहिये और श्रीमहाराज भरतने भी जब कौशल्या से शपथ की है वहां यही कहा है यदि श्रीरामचन्द्र महाराज मेरी सम्मति से वन को गये हों तो मुझ को वह पाप लगे जो दो काल सन्ध्या न करने वालों को होता है—इस के अतिरिक्त प्रातः सन्ध्या पूर्वाभिमुख और सायं सन्ध्या पश्चिमाभिमुख करने की आज्ञा है—परन्तु जिन पुराणों में तीन काल सन्ध्या करने की आज्ञा की है उन में मध्याह्न काल में किसी दिशा का

कोई विधान नहीं किया—इस के उपरान्त प्रातः सन्ध्या तारे रहते समय आरम्भ करने की आज्ञा है और सायं सन्ध्या उस समय प्रारम्भ करे जब कि सूर्य्य छिपने पर हो परन्तु मध्याह्न सन्ध्या का कोई नियम नियत नहीं किया।

इसलिये सन्ध्या दो ही समय करना योग्य हैं, हां यह बात ठीक है कि परमेश्वर को सर्वव्यापक जान कर किसी समय और किसी स्थान पर उस की याद मन से दूर न करे, परन्तु यह उसी समय होसकता है कि जब हम परमेश्वर के गुणों से जानकार हों उसी के अनुसार अपने आचरण को सुधारें, जैसे परमेश्वर सत्यस्वरूप है वैसे ही मनुष्य को योग्य है कि किसी काल में सत्य को हाथ से न जाने दे अर्थात् सत्य ही बोले, सत्य ही करे, सत्य ही माने—यही परमेश्वर का प्रत्येक समय का जप है।

प्यारे सज्जन पुरुषो! इस को नाम जप नहीं है कि हाथ में गज़भर की माला और जिह्वा से प्रत्येक समय राम २ कृष्ण २ ओं २ शिव २ आदि की रट लग रही है और मन में नाना भांति के राग द्वेष भरे हुए हैं, इस जप से कुछ भी लाभ नहीं होगा जब तक उस के गुणों को जानकर उन को काम में न लाया जावे, जैसा कि मिश्री २ कहने से कुछ लाभ नहीं होसकता या इस बात के जान लेने से कि मिश्री मीठी होती है, जब तक कि मिश्री खाई न जाय। वा मिश्री का नाम लेकर शङ्खिया खा लिया जावे तो उस से मुंह मीठा न होगा वरन उलटा कड़ुआ ही जायगा जिस का अन्तिम फल मरण होगा, अर्थात् जब तक राम शिव ओं आदि शब्दों के अर्थ मालूम न हों और उन पर वर्ताव न हो तब तक कुछ लाभ नहीं होसकता जैसा कि कहा है—

माला तेरी काठ की, धागा दई पिरोय।

मन में गांठी पाप की, राम जपे क्या होय॥

ऐसा ही य० अ० ६ मं० ६ में लिखा है कि धर्म का मूल आचार ही है जैसा कि—

स्वाङ्कृतोसि विश्वेभ्यऽइन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्य्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यऽउदानाय त्वा॥

जब तक मनुष्य श्रेष्ठाचार करने वाला नहीं होता तब तक ईश्वर भी उस को स्वीकार नहीं करता और जब तक जिस को ईश्वर स्वीकार नहीं

जाता तब तक उस को पूरा २ आत्मबल नहीं होता और विना आत्मबल के पूर्ण सुख नहीं मिल सक्ता और वशिष्ठस्मृति में लिखा है-

आचारहीनस्य तु ब्राह्मणस्य वेदाः षडङ्ग अखिलाः सपक्षाः
के प्रीतिमुत्पादयितुं समर्था अन्धस्य दारा इव दर्शनीयाः ॥

जैसे अन्धे मनुष्य को रूपवती स्त्री से सुख नहीं होता वैसा ही जिन के आचार अच्छे नहीं उन को वेद उन के अङ्ग पढ़ने और यज्ञ करने से कुछ फल नहीं मिलता इस के अतिरिक्त और भी कहा है कि-

आचारः परमोधर्मः सर्वेषामिति निश्चयः ॥

अर्थात् आचार ही परमधर्म है और पाराशर दक्ष ने कहा है-

चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालनम् ।
आचारभ्रष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराङ्मुखः ॥

चारों वर्णों को आचार से रहना धर्म है और जो भ्रष्ट होते हैं वह धर्म नहीं जानते । मनु जी ने कहा है:-

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
दुःखभागी च सततं व्याधितोल्पायुरेव च ॥

जिस के कर्म अच्छे नहीं होते उस की निन्दा होती है वही सदा दुःखी रहता है रोगादि उस का पीछा नहीं छोड़ते उस की आयु क्षीण होजाती है । और भी कहा है-

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥

जिस का मन विषय भोग में लगा हुआ है उस को दान यज्ञ नियम तप किसी का फल नहीं मिलता मुख्य कथन यह है कि विना शुद्ध आचरण के कुछ लाभ नहीं इसीलिये य० अ० ९ मं० २ में आज्ञा दी है इस लिये गायत्री का जप करते हुए उस के ही अनुकूल आचरण सुधारते हुए उपासना करने से लाभ होता है अन्यथा नहीं इसलिये वेद के पढ़ने और उपकार के करने और पञ्चयज्ञों के करने में सदा तत्पर रहना चाहिये जैसा मनु जी ने लिखा है

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके ।
नानुरोधोस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि ॥

परन्तु आज कल के पण्डित सूतक पातक के ढकोसलों की टट्टी की आड़ में नित्यकर्म करने में पाप बतलाते हैं यह अत्यन्त अज्ञानता की बात है क्योंकि श्वास प्रश्वास प्रतिदिन चलते रहते हैं खाना पीना प्रतिदिन होता है फिर क्या कारण है कि अच्छे कर्म सूतक पातक के मिथ्या प्रपञ्चों के कारण छोड़ दिये जावें देखिये अत्रिस्मृति श्लोक १०० जहां सूतक का वर्णन है वहां लिखा है कि वेद और स्मृतियों में कहे हुए नित्य कर्म (सध्या आदि) नैमित्तिक कर्म काम्य यज्ञादि जो स्वर्ग के साधन (दानादि) हैं उन्हें सदा करता रहे—

तस्माद्धर्मं सदा कुर्यात् श्रुतिस्मृत्युदितं च यत् ।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यज्ञ स्वर्गस्य साधनम् ॥

देखो झूंठ बोलने से सदा पाप होता है उसी प्रकार सत्य बोलने से पुण्य होता है तो फिर भला क्या अच्छे कर्म करने से किसी समय पाप हो सक्ता है? कदापि नहीं। दक्षस्मृति अ० ५ श्लोक ८ में लिखा है कि स्नान, आचमन, जप, दान और होम विना किये जो भोजन करते हैं उन सब को जीवन पर्य्यन्त अशौच रहता है जैसाः—

न स्नात्वाचम्य जप्त्वा च दत्वा हुत्वा च भुञ्जतः ।
एवंविधस्य सर्वस्य यावज्जीवं हि सूतकम् ॥

तो फिर भला क्या अच्छे कर्म करने से किसी समय पाप हो सकता है, कदापि नहीं कदापि नहीं ॥

कहानी ॥

एक योग्य पुरुष बहुत दिनों से बीमार थे जिस के कारण उन से चलना फिरना न होता था रात्रि दिन चारपाई पर पड़े रहते थे परन्तु स्थिर स्वभाव और समय के बन्धानू थे। प्रति दिन प्रातःकाल और सायङ्काल चारपाई ही पर पड़े २ ईश्वर का ध्यान किया करते थे, एक दिन प्रातःकाल एक तरुण मित्र उन से मिलने को गये तो देखा कि आप भजन में मग्न होरहे हैं इस लिये चुप चाप बैठ गये, जब वह सज्जन पुरुष निश्चिन्त हुए तब उस मित्र ने उन से कहा कि अजी साहिब! चारपाई पर पड़े २ अशुद्ध दशा में भजन करना योग्य नहीं ऐसे भजन से न करना भला है। तब उस सज्जन ने पूंछा कि हे मित्र! किस दशा में ईश्वर को भूलना चाहिये? तो उस ने उत्तर दिया कि जब ऐसी दशा हो जैसी आप की। ऐसी बात के सुनते ही सज्जन पुरुष

की आंख से आंसू निकल पड़े और चिल्ला उठा कि यदि इस अशुद्ध शाद में ईश्वर मुझे भूल जाता तो मेरी क्या दशा होती !

नाम के पण्डितो ! हे कृतघ्नो ! तुम किस मुंह से कहते हो कि आज हम सूतक पातक के कारण भजन नहीं कर सकते, जब ईश्वर सब दशाओं में तुम्हारी सुध लेता है तो तुम्हें कब योग्य है कि उस के धन्यवाद करने से बन्द रहो। इस के उपरान्त शरीर भी अनित्य पदार्थ है इस लिये धर्म करने में कभी किसी दशा में न रुकना चाहिये, क्या ऐसी दशा में परमेश्वर की प्रजा नहीं रहती जो उस की आज्ञा को उन दिनों में नहीं मानती, क्या पवन पानी को ग्रहण नहीं करते, क्या अन्न का भोग नहीं लगाते, फिर बड़े शोक की बात है कि शरीर का नित्यकर्म किसी दशा में बन्द न हो और आत्मिक पञ्चयज्ञ बन्द कर दिये जावें, यह अज्ञान नहीं है तो क्या है ? इस लिये किसी दशा में शुभ कर्मों को न त्यागना चाहिये। ऐसा ही यजुर्वेद अ० ४० मं० २ में लिखा है कि संसार में कर्मों को करता हुआ सौ वर्ष पर्य्यन्त अर्थात् जब तक जीवन हो तब तक कर्म करता हुआ जीने की इच्छा करे क्योंकि संसारी फल भोग की इच्छा से पृथक् होकर काम करते हुए मनुष्य में वैदिककर्म नहीं लिप्त होते। जैसा कि—

कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवन्त्वयि नान्यथेतोस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

नित्य और नैमित्तिक कर्मों को जो लोग त्यागन कर, नगर को छोड़ जङ्गल चले जाते हैं वा नगर में रहते हैं और कहते हैं कि हम निष्काम होगये अर्थात् कर्मों के बन्धन से छूट गये उन को यह स्मरण रखना चाहिये कि जब तक स्थूल शरीर विद्यमान है तब तक कर्मों से छुटकारा नहीं हो सक्ता।

ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों में स्पष्ट लिखा है और मनु जी महाराज भी यही कहते हैं, गीता में भी इस की साक्षी मिलती है फिर भला कर्मों से कोई पृथक् हो सकता है ? जो मनुष्य ऐसा कहते हैं वह पुरुषार्थी नहीं, आलसी हैं, और ईश्वरीय नियमों से या तो वह बिलकुल अजान हैं या अपने घमण्ड के कारण उस सच्चे नियम अर्थात् गायत्री मन्त्र पर दृष्टि नहीं डालते वह यह है—

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्व्वरेण्यं भर्गो
देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

अर्थ-(ओम् भूर्भुवः स्वः) जो अकार उकार और मकार के योग से (ओम्) यह अक्षर सिद्ध है सो यह परमेश्वर के सब नामों में उत्तम नाम है जिस में सब नामों के अर्थ आजाते हैं. जैसा पिता पुत्र का प्रेम सम्बन्ध है वैसा ही ओंकार के साथ परमात्मा का है इस से सब नामों का बोध होता है जैसे अकार से 'विराट्' जो विविध जगत् का प्रकाश करने वाला है, 'अग्नि, जो ज्ञान स्वरूप और सर्वत्र प्राप्त हो रहा है, 'विश्व' जिस में सब जगत् प्रवेश कर रहा है जो सर्वत्र प्रविष्ट है इत्यादि नामार्थ अकार से जानना चाहिये।

'हिरण्यगर्भः' जिस के गर्भ में प्रकाश करने वाले सूर्यादि लोक हैं और जो सूर्यादि लोकों के प्रकाश करने वाला है इस से ईश्वर को हिरण्यगर्भ कहते हैं ज्योति के अर्थ हिरण्य अमृत और कीर्ति हैं, 'वायु' जो अनन्त बल वाला और सब जगत् का धारण करने वाला, 'तैजस' जो प्रकाशस्वरूप और सब जगत् का प्रकाशक है इत्यादि अर्थ उकार से जानना चाहिये।

'ईश्वर' जो सब जगत् का उत्पादक सर्वशक्तिमान् स्वामी और न्यायकारी, "आदित्यः" जो नाशरहित है, 'प्राज्ञः' जो ज्ञानस्वरूप और सर्वज्ञ है इत्यादि अर्थ मकार से समझ लेना चाहिये।

यह संक्षेप से ओंकार का अर्थ किया अब महाव्याहृतियों का अर्थ लिखते-हैं-(भूरिति वै प्राणः) जो सब जगत् के जीवन का हेतु और प्राण से भी प्रिय है इस से परमेश्वर का नाम 'भूः, है, (भुवरित्यपानः) जो मुक्ति की इच्छा करने वालों और अपने सेवक धर्मात्माओं को सब दुःखों से अलग करके सर्वदा सुख में रखता है इस लिये परमेश्वर का नाम 'भुवः, है, (स्वरिति व्यानः) जो सब जगत् में व्यापक होके सब को नियम में रखता है और सब को ठहरने का स्थान तथा सुखस्वरूप है इस से परमेश्वर का नाम 'स्वः, है यह व्याहृतियों का संक्षेप से अर्थ लिखा गया।

अब गायत्री मन्त्र का अर्थ लिखते हैं-(सवितुः) जो सब जगत् का उत्पन्न करने हारा और ऐश्वर्य का देने वाला (देवस्य) जो सब के आत्माओं का प्रकाश करने वाला सब सुखों का दाता (वरेण्यम्) जो अत्यन्त ग्रहण करने के योग्य है (भर्गः) जो शुद्ध विज्ञानस्वरूप है (तत्) उस को (धीमहि) हम लोग सदा प्रेमभक्ति से निश्चय करके अपने आत्मा में धारण करें। किस प्रयोजन के लिये कि (यः) जो पूर्वोक्त सविता देव परमेश्वर है वह (नः)

प्रकारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) कृपा करके बुरे कर्मों से पृथक् करके सदा उत्तम कर्मों में प्रवृत्त करे ॥

इसलिये सब मनुष्यों को योग्य है कि सत्चित्आनन्दस्वरूप नित्यज्ञानी नित्य मुक्त, अजन्मा, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, सर्वव्यापक, कृपालु संसार का धारण करने वाले परमेश्वर की यथाविधि सदाचारयुक्त उपासना करें तो फिर किसी प्रकार के पाप नहीं लगते अर्थात् ऐसे पुरुष किसी प्रकार के पाप कर्म का मन से भी विचार नहीं करते ।

वेदपाठ ॥

प्यारे सुजनो ! सन्ध्या करने के पश्चात् प्रतिदिन वेदपाठ करने की आज्ञा है देखो व्यासस्मृति अ० ३ श्लोक ९, १०, ११ दक्षस्मृति अ० २ श्लोक० २८ विष्णु-स्मृति अ० २ श्लोक ३३ और मनु जी महाराज आज्ञा देते हैं कि जिस कार्य्य के करने से वेदपाठ करने में विघ्न हो और धन भी मिलता हो तो भी उस वेदपाठ को न छोड़े क्योंकि वेद के पढ़ने से सब कार्य्य सिद्ध होते हैं—

सर्वान् परित्यजेदर्थान् स्वाध्यायस्य विरोधिनः ।
यथा तथाध्यापयंस्तु साह्यस्य कृतकृत्यता ॥

और अ० ४ श्लोक १९ में भी वेद पढ़ने की आज्ञा है श्रीकृष्ण महाराज ने गीता में कहा है कि स्वाध्याय से ज्ञान की वृद्धि होती है याज्ञवल्क्यस्मृति में लिखा है कि जो द्विज प्रतिदिन वेद पढ़ता है वह बड़े फल को पाता है संवर्त्तस्मृति के ९ श्लोक में लिखा है कि गायत्री जप के पीछे वेद पढ़ने का आरम्भ करे । प्यारे पाठकगणो ! बहुधा आज्ञायें पाई जाती हैं कि सन्ध्या करने के पीछे वेदपाठ करना अभीष्ट है यथार्थ में इस से अनेकान लाभ हैं प्रथम तो वेद उपस्थित रहते थे—द्वितीय कोई धोका नहीं देसक्ता था—तृतीय वेदानुकूल कर्म होते थे किसी प्रकार की भूल नहीं होती थी—चौथे सन्तानों के लिये दृष्टान्त हो जाता था—पांचवें वेदों की पुस्तकें घरों में रहती थीं जिस से उन के पठन पाठन की प्रथा प्रचलित रहती थी कि जिस के कारण ही देश में आनन्द ही आनन्द दृष्टि आता था, अब यह प्रथा उठ गई अर्थात् गायत्री मन्त्र के स्थान पर अनेकान मन्त्र हो गये गायत्री भी तीन और चौबीस हो गई उसी प्रकार पूजन करने के पीछे भी सूर्य्यमाहात्म्य, गङ्गालहरी, विष्णुसहस्रनाम, पञ्चरत्न इत्यादि का पाठ करते हैं। इसलिये मान्यवर ! वेदानुकूल गायत्री मन्त्र

से दोनों समय शुद्ध आचरण करते हुए वेदादि सत्यशास्त्रों के पाठ का नियम प्रचलित करोगे तब ही हमारा और आप का कल्याण होगा अन्यथा नहीं।

देवयज्ञ ॥

प्रकट हो कि वेदादि सत्यशास्त्रों में दोनों काल हवन करने की आज्ञा है इसी को देवयज्ञ कहते हैं। देखिये य० अ० १८ मं० ४२ में लिखा है कि जो मनुष्य अग्निहोत्र आदि यज्ञों को प्रतिदिन करते हैं वे समस्त संसार के सुखों को बढ़ाते हैं अर्थात् आप सुखी होकर औरों को भी सुख देते हैं जैसा कि—

भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसस्तावा नामासन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातुतस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा॥

और संवर्त्तस्मृति अ० १ श्लोक ८ में लिखा है। अग्निकार्यं च कुर्वीत। और व्यास स्मृति अ० १ श्लोक २४ में आज्ञा है कि "मन्त्राहुतिक्रिया" कात्यायनस्मृति खण्ड ३१७ में भी दोनोंकाल अग्निहोत्र की आज्ञा है। दक्षस्मृति अ० २ श्लोक २३, ३८ में भी यही उपदेश है " संध्याकर्मावमाने तु स्वयं होमो विधीयते" विष्णुस्मृति अ० २ श्लोक ३३, ३७ हारीतस्मृति अ० १ श्लोक २८—कृतहोमस्तु भुंजीत सायंप्रातरुदारधीः। और अ० ४ श्लोक २० शङ्खस्मृति अ० ५ श्लोक १५ "सायं प्रातश्च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि,, याज्ञवल्क्यस्मृति अ० २ श्लोक २५—अग्निकार्यं ततः कुर्यात्। गीता अध्याय ३ श्लोक १४ में उपदेश है कि सकल प्राणियों का जीवन अन्न से होता है और अन्न वर्षा से होता है और वर्षा यज्ञ से होती है इसलिये—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥

ऐसा ही विष्णुपुराण अ० १ और य० अ० ३ मं० ४९ में लिखा है। चाणक्यनीति में लिखा है, "अग्निहोत्रफलो वेदः,, अर्थात् वेद पढ़ने का फल तभी समय होता है जब मनुष्य अग्निहोत्र करता है इसी प्रकार विदुरनीति में आज्ञा है और ऐसा ही नारद जी ने युधिष्ठिर से कहा है शान्तिपर्व में नकुल महाराज का वचन है यज्ञ करने से ज्ञान की वृद्धि होती है। देवस्थानी महर्षि का वचन है कि यज्ञ करने से मनुष्य की सम्पूर्ण कामना सिद्ध होती हैं—उसने गोतम से कहा है कि अश्वमेधयज्ञ करने से उत्तम लोक मिलता है

राजा ययाति का वचन है कि यज्ञ करने से दीर्घ आयु होती है। विदुर महाराज कहते हैं यज्ञ करना धर्म का एक लक्षण है। भीष्म जी कहते हैं कि अग्निहोत्र करने से ब्रह्मलोक मिलता है। और मयूररश्मिक ऋषि का कथन है कि यज्ञ करने से स्वर्ग मिलता है। इसी पर्व के अ० ५३ से प्रकट है कि श्रीकृष्ण महाराज प्रतिदिन हवन किया करते थे और ऐसा ही श्रीमद्भागवतस्कन्ध १० उत्तरार्द्ध अ० १ श्लोक २४, २५ में लिखा है। वाल्मीकिरामायण से प्रकट है कि राजा दशरथ जी के सन्तान उत्पन्न नहीं होती थी उस समय महात्मा विश्वामित्र, वशिष्ठ आदि ऋषियों ने अग्निष्टोम यज्ञ कराया था। श्रीरामचन्द्र महाराज जब वन को गये थे तो उन्हों ने विपत्ति की दशा में भी अग्निहोत्र को परित्याग नहीं किया और आप ने भरत जी से भी अग्निहोत्र और यज्ञ करने के विषय में चित्रकूट पर पूंछा था और रावण को मार कर राजसूय और राजा युधिष्ठिर ने गद्दी पर बैठ कर राजसूय यज्ञ किया था। राजा बलि ने सिद्धाश्रम पर एक बड़ा भारी यज्ञ किया था। आर्य्यावर्त्त देश में राजा सगर ने और राजा जनक ने मिथला देश में बड़ा भारी यज्ञ किया था—विश्वामित्र महाराज श्रीरामचन्द्र जी को यज्ञ की रक्षा के अर्थ लेगये थे इन उपरान्त प्राकृत नियमों के देखने से ज्ञात होता है कि वायु शुद्धि के दो ही मुख्य उपाय हैं प्रथम आंधियों का चलना द्वितीय वायु में सुगन्धित पदार्थ मिलाना, और आंधी आने का मूल कारण अग्नि है सूर्य की गर्मी का हवा पर बहुत असर होता है इस से वायु और आंधी चलती है, अर्थात् सूर्य की उष्ण किरणें वायु के परमाणुओं को स्थूल से सूक्ष्म कर देती हैं जिस से एक स्थान की हवा हलकी होकर दूसरे स्थान में जाती है और उस के स्थान पर दूसरी हवा आती है और इस परस्पर की टक्कर से हवा बहने लगती है, और अग्नि का यह स्वाभाविक गुण है कि जिस पर बल करती है उस के परमाणुओं को छिन्न भिन्न कर देती है इस के प्रभाव से हवा का परिचाल होता है और अधिक टक्कर से आंधियां आती हैं कि जिन से बहुत दिन की बसी हुई दुर्गन्धित वायु प्रचण्ड वेग के कारण सब बाहर निकल जाती है और स्वच्छ वायु आजाती है इस के उपरान्त वृक्षों से भी सदा सुगन्धित वायु जिस को प्राणप्रद वायु कहते हैं निकला करती है, मानों परमेश्वर जगत् रक्षक स्वयं वायु की शुद्धि के लिये सूर्य की अग्नि और वृक्षों के साकल्य द्वारा हवन कर रहा है और जीवों को उपदेश करता है कि तुम लोग भी इसी भांति करो, पस इस शिक्षा और लाभदायक कार्य

के अर्थ सुगन्धित रोगनाशक पुष्टिकारक पदार्थ जलाये जाते हैं, क्योंकि वायु की दुर्गन्ध दूर करने से आरोग्य मिलता है। यह तो सब मनुष्य जानते हैं कि पवन पानी के बिगड़ने से रोग की बहुधा उत्पत्ति होती है और उन्हीं के अधिक बिगड़ने से विशूचिका आदि बड़े २ रोगों की उत्पत्ति होजाती है कि जिस से सहस्रों जीवों की हानि हो जाती हैं। डाक्टर बर्मन ने कपूर अर्क को बना कर हज़ारों हैज़े के रोगियों को अच्छा किया है, लाखों शीशियां उन की प्रतिवर्ष बिकती हैं, वही कपूर हवन में पड़ता है। इसी भांति और पदार्थों के गुणों को जानो जो हवन में पड़ते हैं, यदि उन पदार्थों के अलग२ गुणों की व्याख्या की जाय तो एक पुस्तक बन जायगी इसलिये प्रत्येक के गुण नहीं लिखे। अग्नि में जो वस्तु पड़ती है उस के परमाणु भिन्न २ होकर वायु मण्डल में मिल जाते हैं क्योंकि प्राकृतिक नियम है कि हलकी वस्तु ऊपर को जाती है और भारी नीचे को आती है जैसे तैल पानी से हलका होने के कारण ऊपर रहता है और घी वा बर्फ आंच पर रख कर देखिये कि पिंघल कर पतला हो जाता है और भाफ उठने लगती है, थोड़ी देर पीछे देखिये तो कुछ नहीं रहता क्या यह नष्ट होगया! नहीं यह सूक्ष्म होकर हवा में मिल गया, यह पदार्थविद्या के जानने वाले भली भांति जानते हैं, यह बात भी प्रकट है कि किसी वस्तु का सर्वनाश नहीं होता केवल दशा बदल जाती है, वह जो उन से भाप बनती है हवा में मिल जाती है और भाफ वायु में सर्वदा कुछ न कुछ मिली रहती है, अतएव यह शुद्ध वायु जहां २ स्पर्श करेगी वहां की दुर्गन्ध दूर हो जायगी और इस भाफ से जो बादल बनेंगे उन से शुद्ध वृष्टि होगी और शुद्ध वृष्टि से जल अन्न और वनस्पति आदि सकल पदार्थ शुद्ध होंगे जो सम्पूर्ण जीवों को आरोग्यदायक और पुष्टिकारक होंगे। वर्तमान समय में जो लोग यह कहते हैं कि अन्न पूर्व समय का सा उत्पन्न नहीं होता और ओषधियों के गुण ग्रन्थों के लेखानुसार नहीं देख पड़ते, मनुष्य रोगी बलहीन अल्पायु होते जाते हैं और वृष्टि बहुत कम होती है, सो यह सब बुराइयां हवन के न होने के ही कारण होरही हैं, हा! क्या शोक का स्थान है कि मनुष्योंने हवन को यहां तक छोड़ दिया है कि मुर्दा जलाने में भी जहां अतीव दुर्गन्ध फैलती है कोई प्रकार का सुगन्धित पदार्थ नहीं डालते, केवल माशे भर घी चन्दन से उस की खोपड़ी का मांस बघार देते हैं। बहुधा विदेशी जन कहते हैं कि भारतखण्ड में मुर्दा जलाने की रीति

बहुत अयोग्य है। सच मुच अब तो ऐसा ही होगया है इसलिये मुर्दा जलाने के समय अवश्य ही सुगन्धित द्रव्य डालने चाहियें ताकि यह दोष जो अज्ञान के कारण होरहा है जाता रहे ॥

इसलिये प्रत्येक मनुष्य को प्रातःकाल और सायङ्काल हवन नैत्यिक धर्म जानकर करना योग्य है और पूर्व भारतखण्डी ऐसा ही करते थे, जैसा कि हम ने पहले वर्णन किया। यदि सम्पूर्ण देश इस उत्तम कार्य को करने लगे और छः मासे घी और उसी के अनुसार कपूर आदि सामग्री डालें तो लाखों मन हवन सहज में ही हो सकता है, इसलिये मन्त्रों सहित नित्यप्रति हवन करना योग्य है क्योंकि मन्त्रों में हवन करने के लाभों का वर्णन है और विना मन्त्र के कार्य करना ऐसा है जैसे किसी ओषधि का विना गुण जानने के व्यवहार की कोई आज्ञा देदेवे तो क्या कोई उस दवा को किसी काम में लावेगा? कदापि नहीं, क्योंकि विना गुण के कोई कार्य शुद्धता से नहीं होता। अब इस समय संस्कृत विद्या के प्रचार कम होजाने से उन मन्त्रों के अर्थों को भी भूल गये इसी कारण तो हवन की प्रथा हमारे भारत से लुप्त होगई। अब जिस किसी के कोई शुभ कार्य होता है तो हवन क्या पुरानी लीक मात्र पीट दी जाती है, इसी एक छोटी बात से समझ लीजिये कि जहां मालिन फूल पत्ते लाती है उसी के साथ अपनी छोटी टोकरी में ५, ७ छिरकी सी पतली समिधें धर लाती है, शोक का स्थान है कि यज्ञ का काष्ठ मालिन की टोकरी में! भला सरोवर सिमट कर कैसे घड़े में समा सकता है? प्राचीन इतिहास पुकार २ कर कहते हैं कि उन दिनों न केवल घर २ में वरन वनोपवन में तपोधन ऋषि मुनि अपनी २ कुटियों में बैठे सायङ्काल प्रातःकाल हवन करते थे कि जिन के स्वाहा शब्द की प्रतिध्वनि नभमण्डल में व्याप्त हो रही थी, धर्मशीलसम्पन्न सत्यव्रती अग्निहोत्री महात्माओं के शुद्ध तप यज्ञों से मलिनता ने भयभीत होकर ध्रुवों में शरण ली थी और पुराणों में जहां कहीं कुशल प्रश्न किया है वहां राजाओं ने ऋषियों से प्रथम यही पूंछा है कि हे भगवन्! आप कुशल से हैं? और आप शान्तिपूर्वक निरन्तर यज्ञ किये जाते हैं? वस्तुतः ऋषि मुनियों के आश्रमों की यही पहिचान थी उन के समीप वृक्ष यज्ञ धूम से धुमैले दृष्टि आते थे। देखो नित्य कृत्य के अतिरिक्त होली, दिवाली, श्रावणी, आदि पर्वों पर विशेष हवन होता था, क्योंकि इन दिनों में रोग अधिक उत्पन्न होते थे, उन के निवारणार्थ बड़े

हवन होते थे, जिस भांति शत्रु लोग विपक्षी का युद्धसम्बन्धी पूरा सामान देख कर बारूद के धुवें की महक आते ही भयभीत हो भागते हैं इसी भांति विशूचिका बुख़ार आदि शत्रु, हवन के धुएं की गन्ध और स्वाहा की ललकार के मारे पलायित हो जाते हैं। इसी कारण होली, दिवाली, श्रावणी आदि पर्व बड़े अवसर से नियत किये हैं, पर समय के ग़र फेर से दिवाली और श्रावणी पर हवन का नाम मात्र ही रह गया है, होली में अब भी काष्ठ जलता है परन्तु घी और सुगन्धादिक द्रव्यों का नाम भी नहीं लिया जाता॥

प्यारे भाइयो! वहिनो! प्रत्येक उत्सव पर जो घर में पदार्थ बनते हैं उन का यही अभिप्राय है कि प्रथम उन द्रव्यों से हवन कर तत्पश्चात् सम्पूर्ण घर के तथा अन्य जनों को भोग लगाना चाहिये परन्तु अब बिना जगदीश्वर के भोग लगाने के आप भोग लगा जाते हैं, यह बहुत अनुचित बात है, कदापि न करना चाहिये। यहां अपने परमेश्वर की आज्ञानुसार प्रत्येक उत्सव पर अच्छे प्रकार हवन कर देश का उपकार करना योग्य है। इस समय में बड़े मेलों में उखड़ते समय हैज़ा फैलता है उस का मुख्य कारण यही है कि हवन नहीं होता केवल भोजन बनाने आदि में जो आग जलती है उस की गर्मी से दुर्गन्धित वायु हटती है परन्तु मेला उखड़ते ही आग भी ठंढी हो जाती है, इसी से पुनः दुष्ट वायु आक्रमण कर लेती है साथ ही हैज़ा फैल जाता है और हज़ारों का भक्षण कर जाता है॥

हे प्यारे सुजनो! जब तक प्राचीन रीत्यनुसार प्रतिदिन और प्रत्येक होली आदि पर्वों और हर उत्सव पर हवन होने की रीति प्रचलित न होगी तब तक इस भारत में रोग ही रोग बना रहेगा, क्योंकि हज़ारों ओषधियों की ओषधि, लाखों स्वच्छता की एक स्वच्छता होम है, बिना इस के रोगों की शान्ति होना अति कठिन है जैसा कि भारतवर्ष में इस समय हो रहा है, यदि भला चाहो तो अपनी प्राचीन रीति के अनुकूल जैसा ऋषि मुनि महात्माओं ने नित्य होम करने की आज्ञा दी है करना योग्य है, क्योंकि हुत द्रव्यों से वायु शुद्ध आरोग्य देती है और वृष्टि शुद्ध होती है और अन्न वनस्पति स्वच्छ और रोगनाशक और पुष्टिकारक आदि होते हैं और शुद्ध खान पान से बुद्धि निर्मल होती है और बल बढ़ता है, और बुद्धि से सब पदार्थ सिद्ध होते हैं जिन से शारीरक आत्मिक और सामाजिक उन्नति होती है। इस

कारण हवन करना सर्वथा और सर्वदा श्रेष्ठ और उत्तम है। इसी कारण उस को महापुण्य कहा है ॥

इसलिये जो मनुष्य इन आज्ञाओं का उल्लङ्घन कर अग्निहोत्र का त्यागन करते हैं उन को शूर वीर की हत्या करने का पाप होता है जैसा कि आपस्तम्बस्मृति के अ० १० श्लो० १४ में लिखा है—"अग्निहोत्रं त्यजेद्यस्तु स नरो वीरहा भवेत्"—शान्तिपर्व अ० १०२ और चाणक्य राजनीति में लिखा है कि जिस घर में हवन नहीं होता देवता लोग श्मशान के समान उस को छोड़ देते हैं। भविष्यपुराण उत्तरार्द्ध के ५ अ० में लिखा है कि जो मनुष्य अग्निहोत्र को त्यागन करते हैं उन को सुरापान के तुल्य पाप लगता है। इसी भांति भीष्मपितामह ने शान्तिपर्व अ०९६५ में कहा है कि जो मनुष्य अग्निहोत्र को छोड़ते हैं वह पतित होजाते हैं। इसी कारण ऋषि जनों ने इस को नित्यकर्म में लिखा और आज्ञा दी कि दोनों काल अग्निहोत्र करे यही कारण है कि यज्ञोपवीत होने पर गुरु जनों को मनुजी महाराज ने आज्ञा दी कि वह शिष्य को जनेऊ कराकर पवित्रता आचार अग्निहोत्र और संध्योपासन की रीतें सिखलावें जैसा कि—

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः।
आचारमग्निकार्यं च संध्योपासनमेव च ॥

कैसे शोक का स्थान है कि गुरुजनों ने ही इस आज्ञा को मेट दिया फिर शिष्य को कौन उपदेश करे। प्यारे भाईयो! यह कर्म सोलह संस्कारों में किया जाता है मुख्य कथन यह है कि जगत् के सुखी रहने का मुख्य उपाय यह भी है इसी कारण यजुर्वेद अ० १७ मं० ५७ में इस की अच्छे प्रकार व्याख्या की है वहां यह भी लिखा है कि उस में चार प्रकार के पदार्थ प्रथम सुगन्धित जैसे केसर, जावित्री, अगर, तगर, श्वेत चन्दन, इलायची, जायफल कपूर, कस्तूरी, गूगल। द्वितीय पुष्टिकारक घी, दूध, पक्कफल जैसे वेल, अंवरा, अमरूद, आम, नासपाती, अंगूर, सेव, केलादि कन्द जैसे सकरकन्द, सुथनी, सेमरमुसरा, कसेरु इत्यादि अन्न जैसे चावल चना, मूंग, गेहूं, उरद जौ आदि। तृतीय मिष्टान्न जैसे—शक्कर, शहत, छोहारा, मुनक्का, किशमिश आदि। चतुर्थ रोगनाशक औषध्यादि जैसे सोमलता अर्थात् गुरच शतावर, मूसली सफेद, बीजबन्द, तालमखाने के बीज इत्यादि नाना प्रकार सोहनभोग, मीठा भात,

खीर, लड्डू, खस्ते की पूरी, मालपुवा इत्यादि प्रत्येक वस्तु बहुत स्वच्छ और उत्तम हो परन्तु निमक, खटाई, कडुई वस्तु, तेल आदि कि जो जल वायु के विगाड़ने वाली हों न डाले इस के उपरान्त प्रत्येक ऋतु का भी ध्यान रहे अर्थात् उपरोक्त पदार्थों में गर्मी, शरदी, वर्षात के अनुकूल न्यूनाधिक भी करना उचित है जैसा कि य० अ० १८ मं० ९ में आज्ञा पाई जाती है।

पितृयज्ञ ॥

हे पुत्र पुत्रियो ! इस संसार में परमेश्वर के उपरान्त हमारे माता पिता आदि कर्त्ता और रक्षक हैं, जब हम बेसुध और अज्ञान वरन हाथ पैर चलाने और हिलाने और रोने के अतिरिक्त कुछ नहीं जानते, वही हमारे शरीर की सर्व प्रकार से सुध लेते हैं, फिर भला उन से अधिकतर कौन हमारा उपकारी हितैषी हो सक्ता है। कदापि नहीं कदापि नहीं। इसलिये हम सब को भी ईश्वर के अंतिरिक्त अपने माता पिता सुख कर्त्ता, दुःख हर्त्ता, परमरक्षक, परमदयालु, की मन वाणी शरीर से सेवा टहल करनी चाहिये कि जिन के प्रसन्न रहने ही से हम सब को संसार में सुख और अप्रसन्न रहने से दुःख मिलते हैं सच मुच इन की सेवा करने से मेवा मिलती है क्योंकि संसार के नाना मत और मतान्तर और सर्व प्रकार के ग्रन्थ और उत्तम पुरुष यही उपदेश करते हैं कि माता पिता आचार्य की सेवा करना परमधर्म है। इस विषय में मनु जी महाराज ने लिखा है–

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्य्यादाचार्य्यस्य च सर्वदा ।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥ १॥
तएव हि त्रयो लोकास्तएव त्रय आश्रमाः ।
तएव हि त्रयोवेदास्तएवोक्तास्त्रयोग्नयः ॥ २ ॥
सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः ।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याऽफलाःक्रियाः॥३॥

अर्थात्–माता, पिता, आचार्य्य इन तीनों का प्रिय नित्य ही करना इन तीनों के सन्तुष्ट होने से सब तपस्या समाप्त होती है ॥१॥

तीनों लोक तीनों आश्रम तीनों वेद तीनों अग्नि यही तीनों माता पिता आचार्य हैं ॥२॥

जिस मनुष्य ने इन तीनों का आदर नहीं किया उस की सब क्रिया निष्फल हैं ॥३॥

इस के उपरान्त तैत्तिरीय उपनिषद् में लिखा है-

मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्यदेवो भव अतिथिदेवो भव ॥

अर्थात्-माता, पिता, आचार्य, अतिथि यह सब देवतारूप पूज्य हैं। और य० अ० १२ मं० ३९ में ईश्वर मनुष्यों को आज्ञा देता है कि हे पुत्रो तुम अपने माता पिताओं की सदा सेवा करके उन को सब प्रकार का आनन्द दो और उन के साथ कभी विरोध न करो ॥

प्यारे बालक बालिकाओ! देखो तो हम तुम को कैसे २ दुःखों और क्लेशों से पाला, हमारे तुम्हारे खान पान वस्त्रादि के अर्थ अपने प्राण देने को भी उद्यत रहे और आप सदा भूखे नंगे रहे परन्तु हम तुम को उत्तम २ भोजन मनोहर वस्त्र पहनाये कि जिन को देख २ कर और भी प्रसन्न होते रहे, अपने दुःख को हमारे आनन्द विलास पर कुछ भी न जाना, जहां हमारे मुखड़े के प्रकाश की छवि में कुछ अन्तर आया, ज़रा भी अनमने हुए, माता, पिता, को चैन न हुआ, घरबार वरन व्यापार को भी तुच्छ जाना हमारे तुम्हारे अर्थ इधर उधर दौड़ धूप करने में रात दिन का भी ज्ञान न किया; वैद्यों, हकीमों आदि के दर्वाज़ों की खाक की छान डाला, परमेश्वर की प्रार्थना करने से भी अचेत न रहे, मुख्य तो यह है कि माता पिता ने विना हमारे आराम चैन के अपना सुख नहीं जाना। मान्यवरो! उपरोक्त उपकार से उद्धार होने के अर्थ पितृयज्ञ नियत किया है देखिये य० अ० २१ मं० ११ में लिखा है कि अपने माता पिताओं की सेवा करके मनुष्य पितृऋण से उद्धार होवें जिस प्रकार माता पिताओं ने सुख दिया है उसी प्रकार वह भी माता पिताओं को आनन्द दें जैसा कि-

यदा पिपष मातरं पुत्रः प्रमुदितो धयन् । एतदग्ने अनृणो भवाम्यहं तौ पितरो मया स्थ मद्रेण पृङ्क्त विपृचस्थ विमा पाप्मना पृङ्क्त ॥

अनुशासनपर्व अ० ६ में लिखा है जिस ने माता पिता गुरु को प्रसन्न कर लिया मानो उस ने सर्व धर्मों को सन्तुष्ट कर दिया। मनुस्मृति अ० २ श्लोक २२ में लिखा है कि उत्पत्ति के समय जो क्लेश माता पिता सहते हैं उस से

मनुष्य सौ वर्ष में भी उऋण नहीं हो सक्ता। परन्तु माता इन सब में बड़ी है जैसा कि—

यम्माता पितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम् ।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥

वाल्मीकिरामायण अयोध्या काण्ड सर्ग ३० के ३४, ३६ श्लोकों में भी यही लिखा है कि जो माता, पिता, गुरु की यथार्थ सेवा करते हैं उन को सर्व प्रकार के सुख मिलते हैं। हारीतस्मृति अ० ३ श्लोक ११ में भी यही उपदेश है कि इन तीनों की सेवा करने से सब देवता प्रसन्न होते हैं। शङ्खस्मृति अ० २ श्लोक ४ में लिखा है कि माता पिता और गुरु की सदा पूजा करे जो इन तीनों का आदर सत्कार नहीं करता उस की सब क्रिया निष्फल जाती हैं जैसा कि—

माता पिता गुरुश्चैव पूजनीयस्सदा नृणाम् ।
क्रियास्तस्याऽफलाः सर्वायस्यैतेनादृतास्त्रयः ॥

वनपर्व अ० २१४ में धर्मव्याध ने एक उत्तम ब्राह्मण को उपदेश किया है कि मैं माता, पिता को परम देवता समझता हूं और इन्द्र के समान मैं इन का सन्मान करता हूं गृहस्थ का परमधर्म यही है कि इन की सेवा टहल करता रहे—यही शान्तिपर्व अ० ११९ में गौतम ऋषि ने यम से और अ० २१२ में इन्द्र से प्रह्लाद ने, कुन्ती ने कर्ण से और श्रीरामचन्द्र से कौसल्या ने कहा है कि माता पिता की आज्ञा मानना पुत्र का धर्म है। श्रीकृष्ण महाराज ने श्रीमद्भागवतस्कन्ध १२ अ० ४५ में कहा है कि माता, पिता—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष देने वाले शरीर को उत्पन्न करते हैं इसलिये सौ वर्ष तक सेवा करने पर भी उद्धार नहीं होता—जो पुत्र समर्थ होने पर शरीर अथवा धन से माता पिता की सेवा नहीं करते उन को परलोक में यमदूत उन का मांस काट २ उसी को भोजन कराते हैं।

प्रियवरो! इस पितृयज्ञ के दो भेद हैं एक श्राद्ध और दूसरा तर्पण। श्राद्ध अर्थात् श्रत् सत्य का नाम है "श्रत्सत्यं दधाति या क्रिया सा श्रद्धा श्रद्धया यत्क्रियते तच्छ्राद्धम्" जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जाय उस को श्रद्धा और जो श्रद्धा से किया जाय उस का नाम श्राद्ध है और "तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितॄन् तत्तर्पणम्" जिस कर्म से तृप्त अर्थात् विद्यमान माता पितादि पितर तृप्त हों उस को तर्पण कहते हैं सच तो यह है कि जो बाल

और बालिकायें अपने माता पिता की सेवा और आज्ञा पालन कर पितृ ऋण से उद्धार पाते हैं उन को सर्व प्रकार के आनन्द और सुख मिलते हैं, अन्यथा प्रतिदिन क्लेशों ही में फंसे रहते हैं। हे प्यारे बालको! माता पिता कैसे ही क्यों न हों परन्तु तुम को उन की सेवा टहल यथायोग्य करना तुम्हारा परम धर्म है क्योंकि तुम्हारे माता पिता ही ने तुम को सर्वगुणालंकृत किया है, उन्हीं ने तुम्हारे अर्थ अपना तन मन धन लगा कर तुम को इस पद पर पहुंचाया है फिर तुम उन की विद्या आदि गुणहीन होने से तुच्छ दृष्टि से देखते हो, धिक्कार तुम्हारे विद्यादि गुणों पर क्योंकि यदि वह अपनी आत्मा तुम को न जानते और न मानते तो तुम आज क्या इस पद पर होते? नहीं, नहीं, नहीं, सच पूंछो तो यह सब उन्हीं का प्रभाव है, इसलिये तुम उन की सेवा टहल सदा नम्रतापूर्वक करते रहो और धर्मसम्बन्धी आज्ञाओं में अपनें जगत्पिता परमात्मा की आज्ञाओं को मानो देखो प्राचीन समय में श्री रामचन्द्र जी महाराज ने अपनी सोतेली माता की आज्ञा मान, धन सम्पत्ति राज्य त्यागन कर बारह वर्ष जङ्गल में व्यतीत किये जहां उन को नाना भांति के क्लेश और दुःख उठाने पड़े परन्तु अपनी माता की आज्ञा को यथार्थ पालन किया। सचमुच वीरता, भाग्यशालिता के यही लक्षण हैं जिन के कारण श्रीमान् का नाम इस जगत् में सदा ही बना रहेगा। परमेश्वर वर्त्तमान समय के पुत्र पुत्रियों में भी ऐसे ही शुभ गुण दे॥

वर्त्तमान समय को देखिये कि जहां पुत्र को होश आया और बाहर भीतर आने जाने लगे और प्राणप्यारी के दर्शन हुए फिर तो हरदम तिवरी चढ़ी हुई बात सीधी करना कठिन होगया माता पिता प्रेम के कारण अपने प्राण तक न्यौछावर किये हुए फूले नहीं समाते, परन्तु उन को बात करना ही बुरा जान पड़ता है प्रथम तो मुखारविन्द से बात करते ही नहीं यदि कुछ कहा भी तो उस समय इस प्रकार से वार्त्तालाप करते हैं मानों किसी सेवक को शिक्षा कर रहे हैं! धन्य आप की विद्या और बुद्धि को! क्या आप को वह समय स्मरण नहीं रहा जब माता अपने ही दूध से तुम्हारे प्राणों की रक्षा करती थी, प्रत्येक समय छाती से लगाये रहती थी, सोने उठने बैठने खाने पीने का समय सदा स्मरण कर तुम्हारा पालन करती थी, हाय शोक कि उसी माता की बात तक आप को नहीं सुहाती धिक्कार है!

जब माता पिता की यह कुदशा है फिर गुरु और पाठक के ऊपर कृपा-दृष्टि का क्या कहना, आप तो सदा प्राणप्यारी के साथ वा किसी मित्र के सङ्ग प्रतिदिन प्रसन्नता से हलुवा पूरी उड़ाते, पान चबाते, स्वच्छ वस्त्रों पर शयन करते, गर्मियों में खश की टट्टियां लगाते, नौकर चाकर सेवकाई में उपस्थित रहते, परन्तु माता पिता दो २ दानों को तरसते हैं कोई यह भी नहीं पूछता कि तुम कौन हो ! सचमुच उन्होंने ऐसा ही अपराध किया है ! उन की सेवा टहल की क्या आवश्यकता है ! आप तो गर्मियों में शरबत पीते हैं परन्तु माता पिता को शीरा तक नहीं मिलता, प्रतिदिन स्वच्छ वस्त्र धारण किये इतर फुलेल लगाये हुए अपने मित्रों के साथ बाज़ारों में फिरते हैं। परन्तु माता पिता मैले कुचैले कपड़े पहने लज्जा के कारण घर ही में छुपे हुए बैठे रहते हैं और बाहर आने में लज्जित होते हैं कि कोई हमारी यह कुदशा देखकर हमारे पुत्र की निन्दा न करे। देखिये और विचारिये कि माता पिता इस दशा में भी प्रेम के वशीभूत हो पुत्र की निन्दा कराना भला नहीं जानते चाहों आप मर तक जायें। धन्य है धन्य है। मुख्य यह है कि वर्तमान समय में रंडी लौंडे के ऊपर हज़ारों फूंक देते हैं परन्तु माता पिता को फूटी कौड़ी देना मानों हलाहल पीना है। परमेश्वर जगत्कर्त्ता हमारे प्यारों को इस पाप से बचावे ॥

हे मेरे प्यारे भाइयो ! मेरे इस कथन से आप को अत्यन्त क्लेश हुआ होगा और मेरे अर्थ भी मन में कटु वचन उच्चारण करते होगे परन्तु यदि ध्यान लगाकर विचार करोगे तो मैं आप को सच्चा हितैषी जान पडूंगा क्योंकि मित्र वही है जो अपने मित्र के गुण दोषों को जान उन का यथार्थ प्रकाश कर शुभगुणों के धारण करने के अर्थ प्रयत्न करे। और वैरी वह है जो उस के अवगुणों का प्रकाश न करे। इसलिये अब विचारपूर्वक माता पिता गुरु इत्यादि की तन मन धन से सेवा टहल करो कि जिससे संसार में यश और सुख, परलोक में आनन्द प्राप्त हो, नहीं तो इसी पाप में आप को नाना भांति के क्लेश उठाने पड़ेंगे, संसार में अपयश होगा। परलोक में भी घोर नरक के दर्शन करने पड़ेंगे ॥

इस के उपरान्त कनागतों में कैसा पानी देते हो और ब्राह्मणों को नानाभांति के भोजनों से परिपूर्ण कर देते हो अर्थात् उत्तम से उत्तम वस्तु हलुवा, पूरी, ख़स्ताकचौड़ी, दुधलपसी, मोहनभोग, लड्डू, पेड़े, भांति २ क

तरकारियां, अचार, मुरब्बे, सोंठि, पापर इत्यादि खिलाते हो और कहते जाते हो कि महाराज जी दो पूरी और खालीजिये एक कटोरा दूध पी लीजिये तो बहुत ही अच्छा हो, अब आप से मेरी यह प्रार्थना है कि अपने विद्यमान माता पिता की भी इस प्रकार सेवा और टहल की थी या कि मरने पर ही आप को प्रेम अधिक आगया, यदि आप उन के रहते इस भांति आदर सत्कार करते तो क्यों भारत का भारत होजाता ॥

इस के उपरान्त वर्षी चौबर्षी इत्यादि में कैसे पदार्थ ब्राह्मणों को देते हो आगे चल कर गया जी का सामान करते हो सौ दो सौ रुपये वहां इस प्रयोजन के अर्थ देते हो कि हमारे पिता इत्यादि वैकुण्ठ चलेजावें और प्रेत योनि से छूट जावें, हाय कैसे शोक का स्थान है कि इन मिथ्या कामों के लिये तो आप तन मन धन सब अर्पण कर दो परन्तु जीते माता पिता के नाम एक कौड़ी देना भी कठिन हो जाता है जैसा किसी ने कहा है—

जियत न देहौं कौरा, मरे ढुलैहौं चौरा ।
जियत पिता से जंगी जंगा, मरे पिता पहुंचाये गङ्गा ।
जियत पिताकीपूछ नवात, मरेपिताकोदालऔभात ॥

इसलिये जीते माता पिता आदि की यथावत् सेवा टहल करना योग्य है देखो गीता के अनुसार जीव एक शरीर को छोड़ कर दूसरा शरीर धर लेता है जैसा हम ने पूर्व वर्णन किया । फिर भला तुम जो नाना लीला रच कर हज़ारों रुपयों पर पानी फेर देते हो कहीं यह भी सुना है कि हमारे पिता जी अमुक स्थान पर बैठे हैं, आप तो कभी रुपये की रसीद भी नहीं चाहते, वैसे तो एक रुपये के लिये अच्छे प्रकार लिखा पढ़ी करा लेते हो परन्तु यहां टस्स से मस्स भी नहीं करते ॥

प्यारे भाइयो ! जीते माता पिता की सेवा टहल का ही नाम श्राद्ध तर्पण है, फिर भला ब्राह्मणों को भोजनादि का कराना और नाना भांति से द्रव्य भेट करना आदि श्राद्ध कहां से जाना, यदि ऐसा ही मान लिया जावे तो विचारिये कि जब वह विद्यमान थे उस समय में वे रात्रि दिन में दो तीन बार भोजन करते और चार पांच दफ़े पानी भी पीते थे और अब मरने के पीछे उनको साल में एक बार भोजन करने और कनागतों में पन्द्रह दिन पानी पीने की आवश्यकता होती है और साल भर तक विना भोजनों और

पानी के व्यतीत कर देते हैं भूख प्यास नहीं लग सकती, भला यह आप ने कैसे ठीक जान लिया और एक दिन के भोजन पर एक वर्ष भूख न लगना कैसे जान लिया, इस के उपरान्त जब आवागमन ठीक है तो फिर मरे हुओं का श्राद्ध और तर्पण कैसा, वह तो दूसरी जगह तुरन्त ही चले जाते हैं इस के अतिरिक्त पितृ, के अर्थ संस्कृत में पालन करने वाले के हैं और आप पितृ से मरे हुए बाप दादे को समझते हैं, भला यह तो बतलाइये कि मरे हुए आप का किस प्रकार से पालन कर सक्ते हैं, कैसे शोक का स्थान है कि जीते माता पिता जो हमारा सब प्रकार से पालन करते हैं उन को पितृ न समझ कर नाना भांति के क्लेश देते हैं, और मरने के पीछे पितृयज्ञ की आशा पर कठिन २ कार्य करते हैं और कुछ भी विचार नहीं करते, अब तो आप समझ गये होंगे कि पितृ जीते ही माता पिता को कहते हैं और श्राद्ध तर्पण भी जीते ही माता पिता का सम्भव है और मरे हुओं का असम्भव और बुद्धि के विपरीत है, अब मेरे प्यारे भाइयो सुन लीजिये कि पिण्ड देना और एकादशाह करना महाब्राह्मण को माल असबाब इत्यादि देना इसी भांति वर्षी चौवर्षी करना गया जाना इत्यादि सब मिथ्या और धोखे की टट्टी हैं, जैसे कि मरे हुओं का श्राद्ध तर्पण है, और पिंड देना शब्द के अर्थ शरीर के हैं और शरीर बनाना माता पिता का काम है किसी और का नहीं और वह भी रीत्यनुसार, तो फिर जब माता पिता का काम पिण्ड देना है तो बड़े शोक की बात है कि लड़का बाप और मा के पिण्ड देता है और उस को अपने लिये योग्य समझता है और जानता है कि मैं उन के ह्क़ से अदा हो गया क्या इसी का नाम बुद्धि है ? टुक तो विचार कीजिये कि आप अपने माता पिता के कौन ठहरे अपने ही जी में समझ जाइये मुझे कहते लाज आती है यदि कोई आप से ऐसी बात कहे तो आशा है कि आप बहुत अप्रसन्न होवें परन्तु पिण्ड देने के समय बुद्धि से कुछ काम नहीं लेते इस के उपरान्त जब जीव दूसरे शरीर में चला गया तो फिर आप के पिण्ड देने की क्या आवश्यकता है वह तो बिदून आप के पिण्ड दिये पिण्ड पाता है, अब वर्षी चौवर्षी पर दृष्टि डालिये.यह सब झूठी बातें हैं क्योंकि जो जीव तुरन्त दूसरे शरीर में चला जाता है और एक पल मात्र भी नहीं ठहरता वह किस प्रकार से एक वर्ष तक ठहर सकता है कि जिस के लिये आप वर्ष चौवर्षी करते हैं, अब गया जाने के विषय में विचार कीजिये तो प्रत्य

प्रकट है कि वेदादि सत्य शास्त्रों में लिखा है कि जीव अपने कर्मानुकूल शरीर धारण करता है और अन्यत्र भी ऐसा ही लिखा है जैसा कि " कर्म प्रधान विश्व कर राखा' जो जस कीन तैस फल चाखा"

अब बतलाइये कि गया जाने से आप के माता पिता आदि क्या अपने कर्मों के फलों से पृथक् हो सकते हैं ? कदापि नहीं, हां एकादशाह इत्यादि खोटें २ ठगों की ठगई है और यह बड़े २ उस्तादों के हाथ। यदि गया जाने का फल ठीक है तो वेद और शास्त्रों में आवागमन झूंठ है फिर मनुष्य के अच्छे कर्मों की क्या आवश्यकता है यह तो बहुत ही सहल गुटका हाथ आ गया कि सौ दो सौ रुपये में पाप से छूट जाता है, भाई टुक तो विचारो क्या आप यहां बुद्धि से भी काम नहीं लेते, और कामों में तो आप सब प्रमाणों की छान बीन करते हैं परन्तु यहां कुछ भी नहीं, इस के उपरान्त गया के पण्डे जो धन आप का लेते हैं वह सब मिथ्या कामों में व्यय करते हैं और पापभागी बनते हैं यह सब पाप आप के सिर पर है देखिये इन कर्मों के करने से आप का धन व्यर्थ जाता है और परिश्रम भी होता है, और पाप-भागी भी बनना पड़ता है, फिर बुद्धिमान् ऐसे कार्यों को क्योंकर करें जिस में अन्त को कुछ लाभ न हो, इसी भांति 'कट्टहा' के देने में पाप होता है क्योंकि यह कर्म वेदविरुद्ध होने से प्रामाणिक नहीं तिस पर प्रसन्न होकर हाथ जोड़ अपने मरे हुओं को वैकुण्ठ जाने की आशा करते हैं, मानों वैकुण्ठ का ठेका महाब्राह्मणों के हाथ में समझ लिया और यह भी विचार न किया कि नरक स्वर्ग किस का नाम और उस का दाता कौन है ॥

सुनिये संसार में वेदानुकूल चल मोक्ष प्राप्त करने ही का नाम वैकुण्ठ और उस के विरुद्ध ही नरक और दुःख । दुःख सुख के देनेवाले मनुष्य के कर्म हैं । अब बतलाइये कि 'कट्टहा' जी किस प्रकार से वैकुण्ठ को भेज सक्ते हैं कि जिन के लिये नाना भांति से भेंट चढ़ाते हो । और जहां उसने प्रसन्न चित्त होकर आप की पीठ पर हाथ फेर दिया और सुफल बोली उसी समय आप फूले नहीं समाते मानों स्वर्ग में भेज ही दिया क्या ही सोच की बात है ॥

इसलिये हे मेरे प्यारे भाइयो ! झूंठी और मिथ्या बातों को छोड़कर जितना रुपया मरे पितरों के श्राद्ध और तर्पण में व्यय करते हो वह विद्यमान पितरों के आदर सत्कार में व्यय कीजिये और दोनों लोकों में यश लीजिये ॥

बहुधा जन ऐसा कहते हैं कि राजा कर्ण जो बड़ा दानी था जब मरा तो मुक्त होकर स्वर्ग में पहुंचा उस ने रुपया और जवाहर बहुतायत से पुण्य किया था परन्तु अन्न बहुत कम, इसलिये उस के आगे स्वर्ग में सोने और जवाहर के ढेर लग गये परन्तु भोजनों को कुछ नहीं। तब राजा साहिब ने इस का वृत्तान्त पूंछा तों जान पड़ा कि तुमने अन्न बहुत कम पुण्य किया है तब राजा साहिब ने पन्द्रह दिन की और भी आज्ञा मांगी कि मैं वहां जाकर अच्छे प्रकार दान करलूं यह प्रार्थना उस की स्वीकृत हुई और उस ने आकर पन्द्रह दिन तक अच्छे प्रकार से भोजन कराये यहां तक कि उस को इतना छुटकारा न मिला कि बाल बनवाता और वस्त्र धुलवाता, देखना चाहिये कि मोक्ष सर्व दुःखों के छूटने को कहते हैं अर्थात् सदा परमानन्द में रहने का नाम मोक्ष है फिर जब वह मुक्त होगये फिर भी खाने का दुःख ही बना रहा और स्वर्ग के अर्थ भी सुख के हैं। इसलिये यही जान पड़ता है कि मोक्ष और स्वर्ग के अर्थ ही नहीं समझें। इसके अतिरिक्त और भी विचार करो कि जब उस की यह प्रार्थना स्वीकृत हुई तो बतलाइये राजा ऊपर से किस प्रकार से आया अर्थात् गर्भाधान की रीति से या ऊपर से गिरपड़ा और आते समय उस की अवस्था क्या थी लड़कपन वा तरुणाई वा बुढ़ापा। यदि कहो गर्भाधान के द्वारा उत्पन्न हुआ तो राज्याधिकारी होना कठिन है और इस कार्य के अर्थ बहुत समय की आवश्यकता है क्योंकि नौ महीने गर्भ में रहना फिर उत्पन्न होकर बड़ा होगा तब ब्राह्मण खिलाने के योग्य होगा। और उस को आज्ञा पन्द्रह दिन तक रहने ही की थी, यदि कहो कि ऊपर से गिरपड़ा तो यह वार्त्ता सृष्टिक्रम के अन्यथा है न कभी ऐसा हुआ न होगा दूसरे यह कि जीव तो मुक्त होकर स्वर्ग को गया था और शरीर यहां जला दिया गया था तो क्या वह जीव दूसरा शरीर धारण करके ऊपर से आया था, नहीं तो विना शरीर के पहचानना अत्यन्त कठिन है। इस के उपरान्त कर्ण कलियुग के आदि में हुए हैं इस से ज्ञात होता है कि सतयुग, द्वापर, त्रेता युगों में यह कार्य प्रचलित न था। यदि कोई कहे कि दान देना तो उचित है वह किसी प्रकार से दिया जाय, तो हम कहते हैं कि दान देना अत्यन्त ही योग्य है परन्तु जब लोग गपोड़े मार कर माता पिता आदि के नाम से धोका देकर ठगई का बाज़ार गर्म करके लूटते चले जावें तो यह पुण्य नहीं

कहावेगा इसलिये इस प्रकार कदापि पुण्य न करना चाहिये। इस के उपरान्त इन दिनों में वर्षा के अन्त होने से वायु भी बिगड़ जाती है और भोजनों में पूरी, कचौड़ी, घुइयां इत्यादि बराबर पन्द्रह दिन तक समय और कुसमय पर खाने में आती हैं इसलिये विशेष कर हैज़ा आदि रोग उत्पन्न कर नाना भांति से दुःख देते हैं और अनेकान यमपुर को भी चले जाते हैं तो बतलाइये कि इस का अपराध यजमानों के सिर पर है या ब्राह्मणों या पुरुषाओं या राजा कर्ण के ? ॥

हे प्यारे सुजनो! यह सब बातें मिथ्या हैं और स्वार्थियों ने अपने पेट भरने के लिये राजा कर्ण का नाम लेकर अपना प्रयोजन निकाला है यदि राजा कर्ण की मोक्ष हो गई तो वहां उन को किसी बात की भी कमी नहीं, यदि मुक्ति नहीं हुई तो नहीं मालूम कि उन्हों ने किस प्रकार किस योनि में जन्म लिया यहां आवागमन चला आता है जो पन्द्रह दिन में यह सब होना असम्भव है इसलिये राजा कर्ण से पहिले जैसे हमारे और आप के पुरुषे जिस रीति पर चलते थे उसी रीति अर्थात् वेदानुकूल ही चलना चाहिये, जैसा कि यजुर्वेद अध्याय २० मं० ३४ में लिखा है—

ऊर्ज्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्। स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन् ॥

ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्यों को पुत्र और नौकर आदि को आज्ञा देके कहना चाहिये कि तुम को हमारे पितर अर्थात् पिता माता आदि वा विद्या के देने वाले प्रीति से सेवा करने योग्य हैं, जैसा कि उन्हों ने बाल्यावस्था वा विद्यादान के समय हम और तुम को पाला है, वैसे ही हम लोगों को भी वे सब काल में सत्कार करने योग्य हैं, जिस से हम लोगों के बीच से विद्या का नाश और कृतघ्नता आदि दोष कभी न प्राप्त हों ॥

इस के उपरान्त गरुड़पुराण में लिखा है कि जीव एक अंगूठे के समान या प्रेत हो कर भ्रमता रहता है और इसीलिये दस दिन तक एक एक पिण्ड आटे का इस को खिलाते हैं, दसवें दिन जब वह पिण्ड खाकर मोटा ताज़ा हो जाता है तब ग्यारहवें दिन एक बड़ा भारी पिण्ड जिस को सपिण्डी कहते हैं बनाते हैं फिर मन्त्रों के बल से उस में प्रेत को बुलाते हैं फिर एक कुश के तिन के से महाब्राह्मण सपिण्डी के तीन बराबर भाग करता है और प्रत्येक भागको ऊपर

के पितरों में मिला देता है अर्थात् एक भाग को बाप में, दूसरे को दादा में और तीसरे को परदादा में, इसी भांति स्त्रियों को। मानो एक प्रेत को काट २ कर तीन स्थानों में मिलाते हैं तब वह प्रेत से पितर हो जाते हैं, इस सब के उपरान्त यह भी जानना चाहिये कि गरुड़पुराण में जो गरुड़ एक प्रकार का पक्षी है इस के और परमात्मा के प्रश्नोत्तर हैं और उस परब्रह्म ने गरुड़ से सब वृत्तान्त कहा है अब आप टुक तो विचार कीजिये यदि ईश्वर को वर्णन करना ही आवश्यक था तो क्या कोई मनुष्य इस योग्य न मिला कि जिस से यह सब वृत्तान्त कहते, दूसरे गरुड़ से मनुष्य के मृतकसंस्कार का हाल कहने से क्या लाभ? यदि गरुड़ को हाल बताना ही था तो सांपों को बताना था कि अमुक स्थान पर सांप है और अमुक समय पर तुम को मिल सकते हैं तो आशा है कि गरुड़ अपना भक्षण पाकर प्रसन्न होता। यह मिथ्या और बुद्धि के विरुद्ध बातें हैं—केवल प्रत्येक प्रकार से अपना ही प्रयोजन निकाला है। मान्यवरो! यदि आप मरे हुओं का श्राद्ध तर्पण मानेंगे तो बहुतसी शङ्काएं इस विषय में ऐसी उत्पन्न होंगी कि जिन का समाधान होना बिलकुल असम्भव हो जायगा प्रथम तनिक ध्यान दीजिये कि श्राद्ध क्यों किया जाता है तो ज्ञात होता है कि अपने २ पुरुषाओं को आराम देने के अर्थ। क्या महाशय! आप किसी प्रकार अपने मरे हुए पुरुषाओं को आराम पहुंचा सकते हैं?। कभी नहीं क्योंकि वेदादि सत्यशास्त्र पुकार २ कह रहे हैं कि मनुष्यों को अपने ही किये हुए कर्मों का फल मिलता है मरने पर माता पिता पुत्रादि कुछ नहीं कर सके देखिये य० अ० २ मं० २८ में लिखा है:—

अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकम्।
तन्मेराधीदमहं य एवास्मि सोऽस्मि॥

जैसा प्राणिमात्र कर्म करता है वैसे ही फल को पाता है प्राणी अपने कर्मविरुद्ध फल को कभी नहीं प्राप्त होते इसलिये सुख भोगने के लिये धर्म युक्त कार्य्यों को करे जिस से कभी दुःख न हो और मनु० अ० ४ श्लोक २३८ में भी ऐसा ही लिखा है जैसा कि—

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः।
न पुत्रदारं न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः॥

प्रत्यक्ष भी जान पड़ता है कि जो मनुष्य भोजन करता है उसी की भूख जाती है और जो औषधि पान करता है उसी का रोग नाश होता है इस के अतिरिक्त कभी दृष्टिगोचर नहीं हुआ फिर भला आप के कर्म आप के पुरुषाओं को क्यों कर आराम पहुंचा सक्ते हैं तुलसीदास ने भी कहा है—

"कर्मप्रधान विश्व कर राखा। जो जस कीन तैस फल चाखा" ॥

क्या कोई कार्य्य संसार में ईश्वरीय नियम के विरुद्ध भी हो सक्ता है कदापि नहीं गीता में श्रीकृष्ण महाराज ने कहा है धर्मयुक्त कार्य्य करने से किसी की दुर्गति नहीं होती। महाभारत में लिखा है एक ही मनुष्य पाप करता है वही भोगता है। श्रीमद्भागवत स्कन्ध १० अ० २४ पूर्वार्द्ध श्लोक १४ में लिखा है कि कर्म का फल कर्त्ता ही को मिलता है अन्य को नहीं। स्कन्ध ११ अ० ४९ में अक्रूर जी महाराज ने धृतराष्ट्र जी से कहा है कि जीव अकेला ही जन्म लेता है अकेला ही मरता है अकेला ही पाप पुण्य को भोगता है जैसा कि—

एकः प्रसूयते जन्तुरेकएव प्रलीयते ।
एकोनुभुङ्क्ते सुकृतमेकएव च दुष्कृतम् ॥

इस से प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि जिस मनुष्य ने अपने जीवन में धर्म का सञ्चय किया उस को अवश्य ही सुख मिलेगा वरन मरने पर अन्य सम्बन्धी किसी कार्य्य को कर उस को सुख नहीं पहुंचा सक्ते। इस के उपरान्त पौराणिक मतानुसार मा बाप के मरने के पश्चात् गया को जाते हैं और वहां श्राद्ध करते हैं तत्पश्चात् फिर श्राद्ध करने की आज्ञा नहीं है इस से श्राद्ध नित्यकर्म नहीं हो सक्ता परन्तु वेदादि सत् शास्त्रों में नित्य श्राद्ध करने की आज्ञा पाई जाती है। इस के उपरान्त जहां वस्तु और सुख का भोक्ता होता है वहीं सुख होता है अन्यथा नहीं। जहां जल और प्यासा होता है वहीं प्यास शान्त होती है। जहां दीपक होता है वहीं उजाला होता है। फिर भला यदि आप ने अपने पुरुषाओं के सुख पहुंचाने के लिये ब्राह्मणों को भोजन भी कराये तो क्या उन को सुख मिल सक्ता है कदापि नहीं। क्या मैं खाकर आप की तृप्ति कर सक्ता हूं यदि हो सक्ता है तो अति ही सुन्दर। इस से हमारे परदेश में रहने वालों को भोजनादि बनाने और खाने पीने का भी कष्ट दूर होना सम्भव था। परन्तु ऐसा नहीं होता, यदि मरों ही का श्राद्ध करना सनातन समझा जावे तो महाशय बतलाइये कि सृष्टि की आदि

में जो ब्रह्मादि उत्पन्न हुए थे उन्होंने किस का श्राद्ध किया होगा। यदि इन असम्भव बातों को मान भी लें तो बतलाइये जो मरते हैं वे कहां जाते हैं यदि पृथ्वी पर जन्म लेते हैं तो श्राद्ध में बुलाते समय कैसे पहुंचते हैं यदि जीव ही श्राद्ध में जाता है तो जब तक वह वहां रहे उस का शरीर मर-जाना चाहिये परन्तु यह हम को दृष्टिगोचर नहीं होता। यदि यह प्राणी अन्य ही लोकों में उत्पन्न होते हैं तो पृथ्वी पर यह नये आत्मा कहां से आते हैं यदि जीव आत्मा असंख्य माने जावें तो भी इस दशा में उन का अन्त होना सम्भव हुआ क्योंकि जिस मनुष्य के पास बहुत धन हो और आमदनी कुछ भी न हो वरन व्यय ही होता रहे तो कभी न कभी उस के धन का अन्त अवश्य ही होगा ॥

यदि जीव आत्मा नया उत्पन्न होता है तो उस का शरीर के तुल्य मरना भी सम्भव होगा फिर कर्मों का भोगने वाला कौन रहा कि जिस को वेदादि शास्त्र पुकार २ कर कह रहे हैं क्या यह सब झूंठे हैं ?। और धर्म अधर्म क्यों माना ? क्या यह झूंठ है नहीं नहीं नहीं। यदि जीवात्मा नया ही शरीर के साथ उत्पन्न हुआ तो उस को विशेष दुःख सुख क्यों हुआ क्योंकि वह पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ था और बुरा भला कर्म भी नहीं किया यदि ऐसा माना जावेगा तो मनु आदि ऋषियों के वाक्य झूंठे होजावें गे कि सत्वगुणी लोग देवता होते हैं रजोगुणी मनुष्य और तमोगुणी पशु आदि योनियों में उत्पन्न होते हैं जैसा कि—

देवत्वं सात्विका यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः ॥

इन उपरोक्त बातों से सिद्ध हुआ कि मरों का श्राद्ध करना बिलकुल असम्भव है इस लिये इस का मुख्य कारण यही जान पड़ता है कि पहले समय में मनुष्य विद्वान् धर्मात्मा ब्राह्मण और अपने पुरुषाओं को भोजनादि से तृप्त करते थे परन्तु जब ब्राह्मणों ने अपने कर्म धर्मों को त्याग दिया और अविद्यारूपी अन्धकार छागया तो उन्होंने जाना कि अब हमारा श्राद्ध न होगा इस लिये उन्होंने यह परिपाटी चलाई होगी कि जो तुम हम को खिलाओगे तो तुम्हारे बाप दादें को मिलेगा क्योंकि संसार में प्रत्येक मनुष्य अपने लिये मांगना बहुत बुरा मानता है इस के अतिरिक्त जब वह जीते

थे दादा नाना प्रकार की कमाई करके हम को खिलाकर प्रसन्न होते थे और शेष हमारे लिये जमा करते थे आप तीन वार भोजन करते थे कई वार जल पीते थे अब मरे पश्चात् ब्राह्मणों के खिलाने से प्रसन्न होते हैं और केवल एक साल में एक ही दिन भोजन खाने लगे-यह सब असम्भव बातें हैं ॥

प्यारे भाइयो ! इन सब बातों से सिद्ध होता है कि जीते माता पिता की सेवा टहल ही का नाम श्राद्ध तर्पण है फिर भला ब्राह्मणों को खिलाने, गयादि जाने और महाब्राह्मण (कटहा) के देने से क्या लाभ हो सक्ता है वरन पाप ही होता है क्योंकि उपरोक्त जन इस प्रकार के पाए हुए धन को बुरे कर्मों में व्यय करते हैं नाना प्रकार के पाप कर्म करते हैं जिन का पाप भी दाता ही के सिर होता है इस के अतिरिक्त इन कर्मों के करने से सत्यग्रन्थों की आज्ञाएं भङ्ग होती हैं देखिये श्रीमद्भागवत स्कन्ध १० पूर्वार्द्ध अध्याय १ श्लोक ३९, ४० में लिखा है जिस समय शरीर का अन्त होता है उस समय जीवात्मा अपने कर्मों के अनुसार परवश हो दूसरे देह को प्राप्त हो पूर्व देह को त्यागता है जैसे चलते समय मनुष्य अगले पांव को धर लेता है तब पिछले पांव को उठाता है और जोंक भी इसी भांति अगले तृण को पकड़ कर पिछले को छोड़ती है उसी भांति जीवात्मा कर्मों के बस और देह को प्रथम ग्रहण कर इस पूर्व देह का त्याग करता है जैसा-

देहे पञ्चत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः ।
देहान्तरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः ॥
व्रजंस्तिष्ठन्पदैकेन यथैवैकेन गच्छति ।
यथा तृणजलौकैवं देही कर्मगतिं गतः ॥

फिर आप की वर्षी चौवर्षी और कनागतों में धनादि व्यय करने से क्या लाभ? पाठकगणो! कैसे अन्याय की बात है कि आप केवल अपने मा बाप दादा दादी के अर्थ तो कनागतों में ब्राह्मणों को नाना प्रकार के उत्तम २ भोजन खिलाते हो और उन के बाप दादों आदि का ध्यान भी नहीं करते क्या वह आप के पूज्य नहीं थे? क्या आप उन के वंश में नहीं हैं? क्या यह आप के बाप दादों को प्रिय हो सक्ता है? जब कि उन के माता पिता उन के सम्मुख भूखे बैठे रहें जिन को वह भोजन करा कर आप भोजन करते थे

मान्यवरो ! क्या यह बातें आप के धर्मशास्त्रों पर धब्बा नहीं लगातीं अवश्य ही । यह विषय वेदादि ग्रन्थों में नहीं है हां वेदों का वचन है कि मनुष्य को अपने पिता माता दादा दादी परदादा परदादी की धन्यवाद पूर्वक आयुपर्य्यन्त नित्यप्रति सेवा करनी चाहिये क्योंकि इस असार संसार में सम्भव नहीं है कि कोई मनुष्य अपने दादे के पिता की भी सेवा कर सके इसलिये विद्यमान माता पिता आदि का शिष्टाचार नम्रतापूर्वक करना योग्य है क्योंकि शिष्टाचार मनुष्यों के सत्स्वभाव का दर्पणस्वरूप निर्मल और प्रदेशान्त नदी के तट वृक्ष लतादिकों का प्रतिबिम्ब जिस प्रकार परिलक्षित होता है तिसी प्रकार बोल चाल आचार व्यवहार के देखने से मनुष्यों के भीतरी भाव का अनुभव होता है चाहे कोई किसी अवस्था में क्यों न हों शिष्टाचार के द्वारा अवश्य वे प्रशंसा लाभ कर सकते हैं क्योंकि मधुर वचन के बोलने से सम्पूर्ण जीव सन्तुष्ट होते हैं जैसा कि कहा है—

मधुर वचन से जात मिट उत्तम जन अभिमान ।
तनक शीत जल सों मिटै जैसे दूध उफान ॥

इस कारण जो कोई इस को त्यागन करता है मानों वह अपनी जड़ आप काटता है, क्योंकि यह ऐसा मन्त्र है कि जिस के धारण करने से सब जीव वश में हो जाते हैं देखिये जो कोई शिष्टाचार सहित प्रिय वचन बोलते हैं वह बड़ी २ आपदाओं को सुगमता से टाल देते हैं, और जिन पुरुषों में यह शक्ति होती है वही देश का नाना भांति से उपकार कर सकते हैं क्योंकि शीतलता से कार्य सिद्ध होते हैं, इसी के द्वारा सहस्रों जनों को अपना बना राज्य कर लेते हैं, यह वह पदार्थ है कि जिस से सिंह से घातक जीव आधीन हो जाते हैं शत्रु के मन में भी शीतलता से दया आजाती है, सच पूंछो तो वशीकरण मन्त्र यही है जैसा कि कहा है—

तुलसी मीठे वचन से सुख उपजत चहुं ओर ।
वशीकरण यह मन्त्र है तजदेउ वचन कठोर ॥

प्यारे भाइयो ! जो संसार में सुख की इच्छा हो तो कदापि कटु वचन और व्यङ्ग शब्द न उच्चारण करो यह विदेश में भी अपमान कराता है और विदुर जी ने भी कहा है कि सुन्दर वाणी के बोलने से संसार में अनेकान सुख मिलते हैं देखो श्रीरामचन्द्र जी ने अपने मधुर और शीतल वचनों से

परशुराम के क्रोध को ऐसा शान्त किया कि वह मारने के पलटे आशीर्वाद देकर वन को चले गये ॥

सत्य तो यह है कि जिन मनुष्यों में यह शक्ति है वही यथार्थ मनुष्य हैं वह अपने सेवकों और टहलुओं से भी ऐसा काम लेसकते हैं कि अन्य की सामर्थ्य नहीं हो सकती, इस के अतिरिक्त राजाओं में प्रतिष्ठा मिलती है सामान्य जन उन का सत्कार करते हैं ॥

इस लिये सर्व शास्त्र और बुद्धिमानों की यही शिक्षा है कि अपने बड़ों का शिष्टाचार नम्रतापूर्वक प्रिय वाक्यों से करे क्योंकि इसी से सर्वजीवों को आनन्द प्राप्त होता है जैसा चाणक्य ऋषि ने कहा है—

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः ।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता ॥

इसलिये माता पिता के उपरान्त मामा, चाचा, श्वशुर, ऋत्विज् और गुरु को जो अपनी अवस्था से छोटे भी हों तो भी उन को नमस्ते करना योग्य है ॥

नमस्ते ॥

परन्तु शोक है कि वर्त्तमान समय में संस्कृत विद्या के प्रचार न होने के कारण देश भाषा के शब्द प्रतिदिन छूटते जाते हैं और दूसरी भाषा के शब्द प्रसन्न चित्त होकर बोलते और अनेकान पुरुष कुछ का कुछ अर्थ समझा देते हैं कि जिस के कारण बहुधा हानि होरही है जैसा 'नमस्ते' शब्द की दुर्दशा करदी है ॥

प्यारे सुजनो ! 'नमस्ते' यह शब्द यौगिक है 'नमः+ते' 'नमः' का अर्थ झुकना, नवना, मान करना, सत्कार करना । 'ते' युष्मद् शब्द की चौथी विभक्ति है जिस के अर्थ तुम को, तुम्हारे लिये । जब यह दोनों शब्द मिलते हैं तो व्याकरण की रीति से 'नमः' के विसर्ग का 'स्' हो जाने से 'नमस्ते' वाक्य बन जाता है जिस का यह अर्थ है कि आप के सम्मुख झुकता हूं, नवता हूं, आप का मान करता हूं, बड़ा समझता हूं इत्यादि । मुख्य अभिप्राय छोटों को बड़ों का शिष्टाचार करने का है और शिष्टाचार के अर्थ सत्कार के हैं जैसा कि बड़ों के आने पर उठ कर खड़ा होना, शिर झुकाना वा शिर नवाना अर्थात् 'नमस्ते' करना, ऊंचे स्थान पर बिठाना, प्रियभाषण करना आदि शिष्टाचार कहलाता है-जैसा वर्त्तमान समय में प्रचलित है अर्थात् जब कोई

काल से नमस्ते पद चला आता है यही कारण है कि प्राचीन पुरुष मिलने के समय नमः, नमस्ते—करते थे देखो—श्रीमद्भागवतस्कन्ध ११ अध्याय ४९ श्लोक १३ में कुन्ती ने श्रीकृष्ण महाराज को (नमः) अर्थात् नमस्ते किया—

नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परात्मने ॥

ऐसा ही प्रश्नोपनिषद् अध्याय ६ श्लोक ८ में पिप्पलादादि ऋषियों को सुकेशादि ऋषियों ने (नमः) ही पद उच्चारण किया है—श्रीमद्भागवतस्कन्ध ११ अध्याय ५२ में श्रीकृष्ण महाराज ने उत्तम ब्राह्मणों को (नमस्ते) किया है—

विप्रान् स्वलाभसन्तुष्टान् साधून् भूतसुहृत्तमान् ।
निरहङ्कारिणः शान्तान् नमस्ये शिरसाऽसकृत् ॥३३॥

देखो वृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है कि राजा जनक ने आसन से उठ कर याज्ञवल्क्य जी को नमस्ते कर कहा है कि हे भगवन् ! मेरे को पढ़ाओ—

जनको ह वैदेहः कूर्चादुपावसर्पन्नुवाच नमस्ते
याज्ञवल्क्यानुमाशाधीति ॥ वृ० अ० ६ ब्रा० २ .

गीता अध्याय ११ श्लोक ३९ से स्पष्ट प्रकट होता है कि अर्जुन ने श्रीकृष्ण महाराज को नमस्ते किया था—

वायुर्यमोग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वम् प्रपितामहश्च ॥
नमोनमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमोनमस्ते ।३८।

प्यारे सज्जनो ! जब हमारे प्राचीन पुरुष नमस्ते करते थे फिर इस को क्या सन्देह ? क्योंकि इतरजनों को वही कर्म करने चाहियें जिन को श्रेष्ठ पुरुषों ने किया हो—यही सत्य-शास्त्रों की आज्ञा है इस के उपरान्त सीता महारानी ने (विराध) नाम राक्षस से कहा कि हे राक्षसों में उत्तम ! मैं तुम को नमस्ते करती हूं मुझे इस वन में शार्दूल और रीछ आदि खा जायंगे तू मुझ को हर ले और रामलक्ष्मण को छोड़ दे देखो वाल्मीकिरामायण आरण्यकाण्ड सर्ग ४ श्लोक ३—

मामृक्षा भक्षयिष्यन्ति शार्दूलद्वीपिनस्तथा ।
मांहरोत्सृज काकुत्स्थौ नमस्ते राक्षसोत्तम ॥

मान्यवरो ! जब सीता महारानी ने राक्षस को नमस्ते की तो फिर हम को आपस में नमस्ते करना क्या अनुचित है और हम "राम राम" कहने

को बुरा नहीं समझते क्योंकि जो सब में रमा हो उस को राम कहते हैं और इस कारण से राम नाम परमेश्वर का है इसका स्मरण रखना अच्छा ही है अपन्तु शिष्टाचार के समय राम राम कहने से आदर सत्कार का कोई अर्थ नहीं निकलता इसलिये प्रत्येक शब्द के अर्थ को समयानुकूल बोलना सभ्यता का काम है अन्यथा यह लक्षण मूर्खों का ही है। इस के उपरान्त जब हम किसी ब्राह्मण वा पण्डित से मिलें तो कहते हैं कि महाराज पालागें अर्थात् मैं पैर छूता हूं वा पायं पड़ता हूं तब वह उत्तर देते हैं कि प्रसन्न रहो, आनन्द रहो और जब वह आपस में मिलें तो एक दूसरे से कहते हैं "नमस्कार" कैसे शोक की बात है कि जब हम आपस में अपने बड़ों से मिलें तो उनका शिष्टाचार न करें और परमेश्वर का स्मरण करें, यह हमारे पूज्य ब्राह्मण जब आपस में मिलें तो एक दूसरे का शिष्टाचार करें क्या अपने लिये राम राम उत्तम पद का स्मरण करना उत्तम नहीं समझते? इसी स्वार्थ ने तो देश को साफ़ कर दिया। इस लिये मान्यवरो! अब इन उपरोक्त बातों को स्मरण कर शिष्टाचार के समय प्रत्येक स्त्री पुरुषों को नमस्ते शब्द का प्रचार करना अभीष्ट है क्योंकि परमात्मा वेद में हम को आज्ञा देते हैं ॥

यजुर्वेद अध्याय १६ मन्त्र ३२ में लिखा है कि जब परस्पर मिलते समय सत्कार करना हो तब (नमस्ते) इस वाक्य का उच्चारण करके छोटे बड़ों, बड़ों छोटों, नीच उत्तमों, उत्तम नीचों और क्षत्रियादि ब्राह्मणादिकों वा ब्राह्मणादि क्षत्रियादिकों का निरन्तर सत्कार करें जैसा कि—

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च ॥ ३२ ॥

नमः। ज्येष्ठाय। च। कनिष्ठाय। च। नमः। पूर्वजायेति पूर्वऽजाय। च। अपरजायेत्यपरऽजाय। च। नमः। मध्यमाय। च। अपगल्भायेत्यपऽगल्भाय। च। नमः। जघन्याय। च। बुध्न्याय। च ॥

इन के उपरान्त मौसी, सास, फूफी भी गुरु की स्त्री के समान हैं इसलिये उन की भी सेवा टहल गुरु की स्त्री की भांति करना चाहिये और फूफी और बड़ी मौसी को माता के तुल्य समझना उचित है। शिष्टाचार करने के समय और अन्य स्थानों पर भी शील को न त्यागना चाहिये देखिये मनु

जीने लिखा है कि जो मनुष्य सदा नम्रतायुक्त शीलसहित प्रतिदिन विद्वान् और वृद्धों को अभिवादन और उन की सेवा करते हैं उन की आयु, विद्या, कीर्त्ति और बल यह चार पदार्थ बढ़ते हैं जैसा कि–

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥

फिर भला जब ऐसी सेवा से उपरोक्त फल मिलते हैं कि जिन का प्रत्यक्ष प्रमाण भी है तो कैसे शोक और पश्चात्ताप का स्थान है कि किसी प्रकार के घमण्ड में आकर शिष्टाचार को त्याग अप्रिय कठोर और असत्य वचन बोलकर चारों पदार्थों को खोदें ॥

इन बातों के उपरान्त यह भी स्मरण रखना योग्य है कि जिस आसन पर बड़े मनुष्य बैठे हों उस पर आप न बैठे यदि आप आसन पर बैठा हो तो उठकर आसन छोड़कर उन को प्रणाम करे और स्थान दे और कभी ऐसे परोपकारी सज्जन पुरुषों के सम्मुख पैर फैलाकर अथवा सहारा देकर न बैठे और न प्रश्न के अतिरिक्त अधिक उत्तर दे और उन के पीछे गमन भाषणादि की नक़ल न करें ॥

बलिवैश्वदेव ॥

यह चतुर्थ नित्यकर्म है देखो मनुस्मृति अ० ३ श्लो० ८४ में स्पष्ट आज्ञा है कि यथावत् प्रतिदिन बलिवैश्वदेव करना चाहिये–

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येग्नौ विधिपूर्वकम् ।
आभ्यः कुर्य्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् ॥

और गीता अ० ४ श्लो० ३१ में लिखा है कि जो यज्ञ करने के पीछे अमृतरूपी अन्न को भोजन करते हैं वह सनातन ब्रह्म को पाते हैं और जो इन यज्ञों को नहीं करते उन को इस लोक और परलोक में सुख नहीं मिलता और अ० ३ श्लो० १३ में भी इस कार्य्य की बहुत प्रशंसा की है जैसा–

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥ ४।३१।
यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ ३।१३।

ऐसा ही याज्ञवल्क्यस्मृति अ० ५ में भी लिखा है। इन के अतिरिक्त व्यासस्मृति अ० २ श्लो० २८। विष्णुस्मृति अ० २ श्लो० ३५। हारीतस्मृति अ० १ श्लो० २६ में भी प्रतिदिन वैश्वदेव करने की आज्ञा है। कात्यायनस्मृति खण्ड १२ श्लो० १० में लिखा है जो दोनों काल बलिवैश्वदेव नहीं करता वह पापभागी होता है। पराशरस्मृति श्लोक ५६ में लिखा है कि जो द्विजाति बिना बलिवैश्वदेव किये भोजन करते हैं वे कौवे की योनि में जाते हैं ॥

अतिथिसेवा ॥

मान्यवरो! गृहस्थ पुरुषों के उद्धार के अर्थ अतिथि ही देवतास्वरूप है जैसा कि तैत्तरीयउपनिषद् में लिखा है कि "अतिथिदेवोभव"—और यथार्थ में यही साक्षात् मूर्त्तिपूजा है—क्योंकि अतिथि की यथावत् सेवा करने से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है अर्थात् इन्हीं के सत्सङ्ग से मनुष्य दोनों लोकों के आनन्द उठाता है प्रियवरो! इस प्रकार संसार के पार करने के लिये अतिथि ही नावरूप है इसी कारण प्रतिदिन अतिथिसेवा करने की आज्ञा वेदादि सत्यशास्त्रों में पाई जाती है। देखिये यजु० अ० ३ मं० ४२ में लिखा है कि जो परोपकार करने वाले विद्वान् अतिथि लोग हैं उन की सेवा गृहस्थों को निरन्तर करना चाहिये औरों की नहीं। जैसा कि—

येषामध्येति प्रवसन्येषु सौमनसो बहुः ॥
गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः ॥

मनुस्मृति अ० ३ श्लोक ९४ में मनु जी ने स्पष्ट आज्ञा दी है बलिवैश्वदेव के पश्चात् अतिथि को भोजन करावे और विधिपूर्वक संन्यासी और ब्रह्मचारी को भिक्षा दे—

कृत्वैतद्बलिकर्मैवमतिथिं पूर्वमाशयेत् ।
भिक्षां च भिक्षवे दद्याद्विधिवद्ब्रह्मचारिणे ॥

और ऐसा ही व्यासस्मृति अ० ३ श्लोक ३९, ४० और विष्णुस्मृति अ० २ श्लोक ३८, ३९ हारीतस्मृति अ० ४ के श्लोक ५७ और शङ्खस्मृति अ० ५ के श्लोक १३ और याज्ञवल्क्यस्मृति अ० ५ श्लोक १०७ में भी लिखा है जैसा कि—

पादधावनसम्मानाभ्यञ्जनादिभिरर्चितः ।
त्रिदिवं प्रापयेत्सद्यो यज्ञस्याभ्यधिकोऽतिथिः ॥

कालायतोऽतिथिर्दृष्टवेदपारो गृहागतः ।
द्वावेतौ पूजितौ स्वर्गं नयतोऽधस्त्वपूजितौ ॥४०॥
दिवा वा यदि वा रात्रौ अतिथिस्त्वाव्रजेद्यदि ।३८।
तृणभूवारिवाग्भिस्तु पूजयेत्तं यथाविधि ।
कथाभिः प्रीतिमाहृत्य विद्यादीनि विचारयेत् ॥
स्वागतासनदानेन प्रत्युत्थानेन चाम्बुना ।
स्वागतेनाग्नयस्तुष्टा भवन्ति गृहमेधिनः ।५७।
न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिर्वह्निशुश्रूषया तथा ।
गृही स्वर्गमवाप्नोति यथा चातिथिपूजनात् ॥१३॥
अतिथित्वेन वर्णानां देयं शक्त्यानुपूर्वशः ।
अप्रणोद्योऽतिथिः सायमपिवाग्भूतृणोदकैः ॥१०७॥

इन सब श्लोकों का तात्पर्य्य यह है कि जब गृह पर अतिथि पधारे तब उठकर नम्रतापूर्वक उस को आसन दे, पैर धोवे, उत्तम भोजन करावे फिर विद्या का विचार करे यही अतिथियज्ञ स्वर्ग की प्राप्ति का द्वारा है इसी से गृहस्थ की उन्नति होती है और कात्यायनस्मृति खं० १२ में लिखा है कि अतिथि-पूजन को ही मनुष्ययज्ञ कहते हैं—लिङ्गपुराण अध्याय २९ श्लोक ४८ में भी लिखा है कि अतिथि का अपमान न करे क्योंकि अतिथि साक्षात् शिव स्वरूप है इसलिये अपने शरीर को अर्पण करने में कुछ सन्देह न करे अर्थात् अच्छे प्रकार सेवा करे जैसा कि—

त्वया वै नावमन्तव्या गृहे ह्यतिथयः सदा ।
शर्व्वएव स्वयं साक्षादतिथिर्यत् पिनाकधृक् ।
तस्मादतिथये दत्त्वा आत्मानमपि पूजयेत् ॥

विदुर जी ने कहा है कि जो अतिथियों का यथायोग्य सत्कार करता है उस का इस संसार में यश होता है । वनपर्व अ० २ में युधिष्ठिर महाराज ने कहा है कि अतिथिसेवा करना परमधर्म है और अध्याय १९४ में महात्मा

(यक्ष) ने इन्द्र को उपदेश किया है अतिथि के आदर सत्कार से गौ दान के समान फल होता है शान्तिपर्व अ० २२१ में भी भीष्मपितामह ने कहा है कि जो मनुष्य अतिथियों को प्रतिदिन भोजन कराते हैं उन को (अमृताशी) कहते हैं और अ० २४२ में लिखा है कि अतिथि की यथावत् सेवा करने से चन्द्रलोक मिलता है अनुशासनपर्व के अ० २ में गृहस्थ का परम श्रेष्ठ धर्म अतिथिसत्कार कहा है अरण्यकाण्ड में अगस्त्य मुनि का वचन है कि हे रामचन्द्र! जो तपस्वी होकर अतिथियों का सत्कार नहीं करता वह झूंठी साक्षी देने वालों के समान परलोक में जाकर अपना मांस आप भोजन करता है--प्रियवरो! जब तपस्वियों की यह दशा होगी तो फिर गृहस्थों की दुर्दशा का क्या ठीक! मनु जी ने कहा है कि जो गृहस्थ अतिथि से प्रथम आप भोजन करता है उस को दूसरे जन्म में कुत्ते और गिद्ध खाते हैं श्रीमद्भागवतस्कन्ध ५ अ० २६ श्लोक ३५ में लिखा है जो गृहस्थ अतिथि को वारम्वार क्रोध की दृष्टि से देखते हैं उन की आंखें गीध, कौआ, बटेर इत्यादि मरने पर निकालते हैं। पराशरस्मृति श्लोक ४६ में लिखा है कि जो अतिथि का सत्कार नहीं करता उस को हजारों घड़े घृत के होम से कुछ लाभ नहीं होता और श्लोक ५८ में लिखा है कि जो बलिवैश्वदेव और अतिथि का सत्कार नहीं करते नरक वा कौवे की योनि में जाते हैं॥

भ्रातृगणो! वैदिक समय में बहुधा संन्यासियों और वानप्रस्थों की अतिथियों में गणना की गई थी जो अपनी आयु के दो वा तीन भाग संसारी आनन्दों में व्यतीत करके सब प्रकार से सन्तुष्ट होजाते थे जिस से उन का मन फिर संसारी वस्तुओं की ओर कभी स्वप्न में भी न झुकता था। संसार के सम्पूर्ण भेदों को जानकर नियमपूर्वक संन्यासी होते थे जिन की कहीं भी नियत कुटी नहीं होती थी जो प्रत्येक नगरों में जाकर भयरहित होकर वेदरूपी सत्धर्म्म का उपदेश करते थे। इसी कारण उन की सब प्रकार से सेवा करना हमारा परमधर्म था हम उन की सेवा के अर्थ तन मन धन से उद्यत रहते थे। परन्तु शोक है कि वर्त्तमान समय में इस उत्तम परिपाटी का कहीं पता भी नहीं चलता जिधर दृष्टि उठाकर देखते हैं एक झुण्ड अनपढ़ नाममात्र के संन्यासियों का दीख पड़ता है जिन की शारीरिकदशा का कुछ वर्णन नहीं होसक्ता कोई भुस खाता है। कोई बड़े २ लकड़ी के गट्ठों की माला पहने होते हैं। बड़े २ बाल बढ़ाये हुए हैं। कोई हाथी आदि उत्तम सवारियों पर चलते हैं। कोई दिन और रात चरस की दम लगाया

करते हैं। सच मुच यह भी सांसारिक मनुष्यों की भांति नाना प्रकार के सुखों के अभिलाषी होते हैं। जैसे हमारी आप की स्त्रियां होती हैं इन के साथ भी स्त्रियां होती हैं कि जिन को बाईजी कहते हैं। जिस प्रकार हम अपनी सन्तान को लड़के बाले कहते हैं यह अपनी सन्तान को चेला चाटी कहते हैं। हम अपने निवासस्थान को गृह कहते हैं और इन का निवासस्थान कुटी कहलाता है जिस में सर्व प्रकार की वस्तु जिन की गृहस्थी में आवश्यकता होती है भरी हुई पाई जाती हैं। सच मुच यह गृहस्थ हैं परन्तु जीविका के अर्थ यह वेष धारण कर लेते हैं और नाना प्रकार से धन उत्पन्न कर कुकर्मों में व्यय करते हैं किसी के साथ एक झुण्ड आठ २ दस २ वर्ष के बालकों का (जो इस संसार के तृणमात्र से भी निपट अज्ञान होते हैं) होता है यह सब संन्यासियों के वेष में रहते हैं। मान्यवरो! यह कदापि संन्यासी नहीं कहे जा सक्ते देखिये शातातपजी कहते हैं कि संन्यासी वही है जिस की सब सांसारिक पदार्थों में अप्रीति हो जैसा कि—

यदा सर्वपदार्थेषु वैराग्यं यस्य जायते ।
अधिकारी सविज्ञेयइति शातातपोऽब्रवीत् ॥

इन का तो केवल यही उद्देश है कि प्रातःकाल होते ही नगर की ओर जाते हैं घर घर जाकर घण्टों खड़े होकर मांगते फिरते हैं जिस की निन्दा बहुत प्रकार से की गई है देखिये —

आहारमात्रेपि नातिस्पृहा कार्य्या संन्यासिनेति भिक्षाप्रकरण-वाक्यात् प्रतीयते ॥

नेक्षयेद्द्वाररन्ध्रेण भिक्षालिप्सुः कचिद्यतिः ।
न कुर्याद्वै कचिद्घोषं न द्वारं ताडयेत् कचित् ॥
देहि देहीति यो ब्रूयाल्लवणव्यञ्जनादिकम् ।
गोमांसतुल्यं तद्भक्ष्यं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

अर्थ—संन्यासियों को आहारमात्र में भी बहुत इच्छा न करनी चाहिये यहां तक कि भिक्षा की इच्छा करता हुआ द्वार में न देखे न मांगे न दरवाज़े को खटखटावे। लाओ २ जो ऐसा शब्द कहता लवण या व्यञ्जनादि भोजन

मांगता है वह गोमांसतुल्य होता है उस को खाकर चान्द्रायण व्रत करने से शुद्ध होता है। फिर कहिये कि यह संन्यासी कैसे ! यह तो केवल अपनी स्त्री माता पिता आदि से लड़ झगड़ कर वा सांसारिक आनन्दों से निराश होकर देश देशान्तरों में भ्रमण कर देश की रेड मार रहे हैं—इसलिये आप भी जान बूझ कर कार्य्य कीजिये। देखिये लिखा है कि वेदविरुद्ध कार्य्य करने वाले, झूंठ बकने वाले; तथा बगुला और बिलाव की वृत्ति रखने वाले दुष्टों का वाणीमात्र से भी सत्कार न करना चाहिये ॥

पाषण्डिनो विकर्मस्थान्वैडालव्रतिकान् शठान् ।
हैतुकान्बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥

इसलिये मान्यवरो ! केवल उन हीं पुरुषों का सत्कार कीजिये जो अपने २ वर्णों के धर्मों को पूर्ण रूप से करने में उद्यत हैं अन्यथा कुछ लाभ नहीं वरन जितने पाप कर्म ऐसे जन आप का धन पाकर करते हैं उन के पाप के भी आप भागी होते हैं। इस के उपरान्त यह जन आप ही की लडैती सन्तान को स्वप्नवत् सुख दिखलाकर रंगे स्यार बना कर लेजाते हैं कि जिन के दुःखों में आप प्राण गवाने तक उद्येत हो जाते हैं इसलिये शास्त्रानुसार अतिथियों की परीक्षा करके वेदानुकूल अतिथिसेवा का प्रचार कीजिये देखिये य० अ० २१ मं० १४ में लिखा है कि धर्मात्मा और विद्वान् अतिथियों की सेवा करे। सचमुच ऐसी ही आज्ञाओं पर चलने से इस अभागे भारत की सुदशा हो सक्ती है ॥

अब मैं इस स्थान पर वर्तमान समय के अठारह पुराणों की संक्षेपरूप से कुछ व्याख्या करता हूं उस को विचारिये और फिर दृष्टि डालिये कि यह पुस्तकें वेदों के सम्मुख किस प्रतिष्ठा के योग्य हैं इस के उपरान्त इन के अन्तर्गत मूर्ति-पूजा, त्योहार, ज्योतिष, मन्त्र, तन्त्र, व्रत, तपस्या, तीर्थयात्रा, मोक्ष के विषय में क्या क्या लिख मारा है और इन विषयों में ऋषिगणों का क्या सिद्धान्त है ॥

पुराणपरीक्षा ॥

पुराण जिन का वर्तमान समय में अधिक प्रचार हो रहा है और अनेकानं जन तो इन्हीं को धर्मपुस्तक मानते हैं—मान्यवरो ! यह धर्म-पुस्तक कदापि नहीं हो सक्ते क्योंकि पुराणों के कर्त्ता वेद ही वेद पुकारते हैं और उसी के अनुकूल चलने की आज्ञा देते हैं द्वितीय उन के पाठ करने से

प्रकट होता है कि वह ऐसे मनुष्यों के निर्मित किये हैं जो वेदमत के विरुद्ध थे परन्तु शोक का स्थान है वर्तमान समय में निडर हो कर यह कहते हैं कि— "अष्टादशपुराणानां कर्त्ता सत्यवतीसुतः" अर्थात् इन अठारह पुराणों को व्यास जी ने बनाया है—मान्यवरो! इस विषय के जानने के लिये यह भी जानना आवश्यक है कि व्यास जी महाराज कब उत्पन्न हुए और वह किस धर्म के मानने वाले थे—फिर इन पुराणों में जो कुछ लिखा है वह उन के धर्म के अनुकूल है या प्रतिकूल?

(१) इस के उपरान्त यह भी देखना चाहिये जो विषय इस में एक स्थान पर वर्णन किया है उस के विरुद्ध तो किसी स्थान पर नहीं लिखा? जिन सज्जनों ने महाभारत को अवलोकन किया होगा वह जानते होंगे कि व्यास जी महाराज महर्षि पराशर के पुत्र थे उन के बहुधा अमूल्य वचन भिन्न २ स्थानों पर पाये जाते हैं उसी समय से कलियुग का आरम्भ होता है जिस को अब तक ४९९६ वर्ष हुए अर्थात् व्यास को हुए ४९९६ वर्ष व्यतीत हुए अब ध्यान देना चाहिये यदि व्यास जी इन पुराणों के कर्त्ता हैं तो वह उसी समय बने होंगे परन्तु ऐसा नहीं जान पड़ता क्योंकि पुराणों के विषय अपने २ समय को पृथक्२ बतला रहे हैं—श्रीमद्भागवत के एक स्थान पर लिखा है एक समय श्रीनारद जी महाराज व्याकुल हो कर विष्णु के पास गये जो कि बदरिकाश्रम पर तपस्या कर रहे थे विष्णु ने नारद जी को व्याकुल देख कर पूछा कि आप कैसे आये? नारद जी महाराज कहने लगे कि म्लेच्छों ने महादेव का मन्दिर तोड़ डाला और महादेव जी कुए में गिर कर डूब गये। इतिहास के जानने वाले इस विषय को ख़ूब जानते होंगे यह वृत्तान्त औरंगज़ेब के समय में हुआ था जिस ने १६५७ ई० से १७०७ ई० तक राज्य किया इस से ज्ञात होता है कि भागवत को बने हुए केवल १८७ वर्ष हुए जिस की पुष्टि देवीभागवत का टीकाकार करता है।

(२) बहुधा पुराणों में बुद्ध को अवतार माना है और इतिहासों से ज्ञात होता है कि बुद्ध विक्रमी संवत् से ६१४ वर्ष पूर्व हुए थे और ८० वर्ष की आयु में मर गये जिस को आज तक केवल २५६७ वर्ष हुए फिर व्यास जी ने पुराणों को क्यों कर बनाया?

(३) ब्रह्माण्डपुराण में लिखा है कि इस घोर कलियोग में जो तम्बाकू पीता है वह नरक को जाता है और पद्मपुराण में लिखा है कि जो मनुष्य तम्बाकू

पीने वाले ब्राह्मण को दान देता है वह नरक को जाता है और ब्र
रो शूकर का जन्म लेता है ॥

सम्पूर्ण इतिहासज्ञाता इस विषय को एक सम्मत हो कर कह
तम्बाकू एमरीका से अकबर के समय में भारतवर्ष में आया। इस
होता है कि ब्रह्माण्ड और पद्मपुराण अकबर के समय में या उस प
बनाये गये ॥

(४) राधावल्लभी सम्प्रदाय सं० १६४१ में प्रचलित हुआ है और
किसी प्राचीन पुस्तक में राधा का नाम नहीं पाया जाता परन्तु
पुराण में उस का बहुत कुछ माहात्म्य वर्णन किया है जिस से प्रकट
ब्रह्मवैवर्त्त पुराण सं० १६४१ के पश्चात् बना है। इस के अतिरिक्त जो महा
जगन्नाथ जी को गये होगें उन को ज्ञात होगा कि उस मन्दिर पर वि०
सं० १२३१ पड़ा है और स्कन्दपुराण में इस का बहुत माहात्म्य वर्णन किय
इस से ज्ञात होता है वह पुराण १२३१ वि० के पश्चात् बनाया गया
प्रकार अन्य पुराण अपने २ विषय से अपने २ समय को बतला रहे हैं
विस्तारभय से नहीं लिखते ॥

(५) व्यास जी महाराज ने अनेकान स्थानों पर उपदेश किया है जो
हाभारत से प्रकट है उस से उन की विद्या और वेदोक्तधर्म का प्रकाश हो
हैं इस के अतिरिक्त उन्होंने वेदान्तसूत्र और मीमांसा की व्याख्या और
भाष्य निर्मित किया है जिन में बड़े २ वेदोक्त विषय भरे हुए हैं जिस
समझने वाले इस समय बहुत कम हैं जो सब प्रकार से बुद्धि और सृष्टि
के अनुसार हैं जिन पर चलने से मोक्ष प्राप्त होती है। और पुराणों के कर्त्ता
ने भी श्रीमान् को त्रिकालदर्शी माना है परन्तु शोक का विषय है कि इन
पुराणो में उन के नाम से ऐसी २ लीला भरी हैं जिन को मूर्ख भी ठ
नहीं कह सक्ता। देखिये श्रीमद्भागवत स्कन्ध ५ अ० १ श्लोक २१ में लिखा
कि राजा प्रियव्रत ने इस जगत् में ११ अरब वर्ष तक राज्य किया ॥

(६) एक महापापी अजामिल नामक ब्राह्मण ने कि जिस ने अपनी
म्पूर्ण आयु केवल कुकर्मों के करने में व्यय की थी अन्त को अपने दासीपु
"नारायण" का नाम लेने से स्वर्ग पाया ॥

(७) शुकदेव जी महाराज दो अरणी की लकड़ियों में से विना गर्भाश
के व्यास जी का वीर्य्य गिरने से उत्पन्न हुए ॥

(८) एक समय श्री वेदव्यास जी महाराज ने जो त्रिकालदर्शी थे मनुष्यों की कुगति देखकर एक वेद के चार वेद किये और शूद्रों के लिये महाभारत बनाया ॥

(नोट) मान्यवरो! चारों वेद सृष्टि के आदि से ही चले आते हैं जिस को हमारे मुनि व्यास जी महाराज भी मानते थे फिर यह कब सत्य होसक्ता है।

(९) श्रीकृष्ण और उन के दासों की सेवा से मनुष्य पापों से छूटता है वैसा तप, ब्रह्मचर्य्य, शम, दम, दान, सत्य, शौच, यम, नियम आदि से नहीं ॥

(१०) और वाल्मीकिरामायण में लिखा है जब महादेव जी के वीर्य्य को अग्नि और पार्वती की बहिन गङ्गा अत्यन्त उष्णता के कारण न झेल सकी तो अशक्त होकर छोड़ दिया उस के भूमि पर पात होने से उस वीर्य्य से सोना, चांदी, तांबा, लोहा, रांगा, सीसा आदि नाना प्रकार की धातु उत्पन्न हुईं ॥

(११) एक समय दिति नामक राक्षसी ने तीनों लोकों के जीतने वाला पुत्र उत्पन्न करने के अर्थ तपस्या की एक दिन दुपहर को वह नींद के कारण बहुत अशक्त होकर तपस्या के नियम के विरुद्ध दिन में सो रही पस इन्द्र ने उस स्थान से जिस का लिखना सभ्यता के विपरीत है दिति के गर्भ में प्रवेश किया भीतर जाकर वज्र से गर्भ के सात टुकड़े कर दिये परन्तु अब तक उस बेचारी को कुछ ख़बर न हुई। रोने पीटने का शब्द सुन कर दिति जाग उठी और मत मारो मत मारो ऐसा कहा इसी प्रकार तुलसीदास जी भी कहते हैं ॥

सुधावृष्टि भई दोऊ दल माहीं।
जिए भालु कपि निश्चर नाहीं॥

मान्यवरो! क्या यह बातें सत्य और व्यास जी वा वाल्मीकि जी की कहीं हो सक्ती हैं कदापि नहीं, कदापि नहीं। यह तो बिलकुल, सृष्टिक्रम, शास्त्र और बुद्धि के विरुद्ध है इसी कारण अत्रि जी महाराज ने कहा है कि—

वेदैर्विहीनाः पठन्ति शास्त्रं शास्त्रेण हीनाश्च पुराणपाठाः।
पुराणहीनाः कृषिणो भवन्ति भ्रष्टास्ततो भागवता भवन्ति॥

वेद से हीन लोग शास्त्र पढ़ते हैं, शास्त्र से हीन पुराण बांचते हैं, पुराणों से हीन हल जोतते हैं और सब से पतित भागवत पुराण बांचते हैं। फिर भला! आप को मुक्ति इन के द्वारा क्योंकर मिल सक्ती है। बहुधा हमारे

भाई शङ्का करते हैं कि वाल्मीकिरामायण, महात्मा वाल्मीकि ने रामचन्द्र की उत्पत्ति से कई हजार वर्ष पहले लिखी थी परन्तु यह बात भी उसी रामायण के बालकाण्ड के आदि के दूसरे श्लोक में नारद ने वाल्मीकि से पूछा कि इस लोक में अब इस समय कौन गुणवान्, पराक्रमी, धर्मज्ञ, दृढ़व्रत और सत्यवादी राजा है जैसा कि–

कोन्वस्मिन्साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्य-
वान्। धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः॥

इस के उत्तर में वाल्मीकि जी ने रामचन्द्र जी का नाम लिया है इस पर आगे कथा चली है जिस को बहुधा लोग दश हजार वर्ष पहले रामचन्द्र जी से रामायण बनाई हुई बताते हैं यह कैसे सोच की बात है। इस के अतिरिक्त इन पुराणों का कथन एक दूसरे के भी विरुद्ध है देखिये पद्मपुराण में लिखा है–

व्यामोहाय चराचरस्य जगतश्चैते पुराणागमास्तां–
तामेवहि देवतां परत्रिकां जल्पन्ति कल्पावधि।
सिद्धान्ते पुनरेकएव भगवान् विष्णुस्समस्तागम-
व्यापारेषु विवेचनं व्यतिकरं नित्येषु निश्चीयते॥

इस का तात्पर्य्य यह है कि सब पुराण मनुष्य को भ्रम में डालने वाले हैं और उन में अनेक देव ठहराये गये हैं एक ईश्वर का निश्चय नहीं होता केवल एक भगवान् विष्णु ही पूजने योग्य हैं। अब देखिये शिवपुराण में शिव को परमेश्वर मान कर विष्णु, ब्रह्मा, गणेशादि को उन का सेवक ठहराया है और विष्णुपुराण में विष्णु को परमात्मा मान शिवादि को उन का दास और देवीभागवत में ब्रह्मा, विष्णु, महेश को आदि शक्ति श्री नाम की स्त्री से उत्पन्न हुए और वह उन की माता इन पर मोहित होगई और तीनों से भोग करने को कहा कि जिस में महादेव ने भोग किया और मार्कण्डेयपुराण के दुर्गापाठ में लिखा है कि विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए जैसा कि–

स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः।

मत्स्यपुराण में लिखा है कि ब्रह्मा से शिव उत्पन्न हुए यथा–

ततोऽसृजद्वामदेवं त्रिशूलवरधारिणम् ।

नारदीयपुराण में लिखा है कि नारायण के दाहिनी ओर से ब्रह्मा बांई ओर से विष्णु और मध्यम भाग से शिव भी उत्पन्न हुए और मार्कण्डेयपुराण में लिखा है कि महालक्ष्मी से विष्णु महाकाली से महादेव और महासरस्वती से ब्रह्मा पैदा हुए और अनुशासनपर्व में लिखा है कि महादेव जी श्रीकृष्ण के शिर से उत्पन्न हुए और ब्रह्मा महादेव जी के पेट से उत्पन्न हुए हैं और उसी अनुशासनपर्व अ० १४ में लिखा है कि विष्णु को महादेव जी ने उत्पन्न किया इस से ज्ञात होता है कि ब्रह्मा और विष्णु के जन्मदाता महादेव जी हैं॥

इस के अतिरिक्त पाण्डव लोग जब विराट नगर में प्रवेश करने लगे हैं तब महाराज युधिष्ठर ने जो देवी की स्तुतिं की है उस के पढ़ने से मालूम होता है कि देवी ने विष्णु आदि को बनाया अब बतलाइये कि हम किस का कथन ठीक जाने और किस को व्यास जी मानते थे ? ।

प्यारो ! इन पुराणों के मानने से ही फूट का बाज़ार गर्म हो गया है देखिये जब चार पुराणों के श्रोता इकट्ठे होते हैं वहां सब अपनी २ सुनी कथा कहते हैं एक कहता है कि विष्णु बड़े दूसरा कहता नहीं ब्रह्मा, तीसरा कहता महादेव चौथा कहता कि तुम सब भूलते हो आदि शक्ति माया बड़ी है, इन बातों के प्रामाणिक होने के अर्थ इन्हीं पुराणों के प्रमाण भी देते हैं उस समय कुछ भी निर्णय नहीं होता सब भ्रम में पड़ चुप हो जाते हैं हां जो भक्तिपक्ष में रंगे हुए हैं वे कहते हैं कि यह तीनों ब्रह्मा विष्णु महेश एक ही हैं इन में भेद न मानना चाहिये परन्तु पुराण इन के भोलेपन का खण्डन करते हैं शिव के मन्दिर में श्री लगा के जाने का निषेध है देखिये भागवत में लिखा है–

भवव्रतधरा ये च ये च तान् समनुव्रताः ।
पाषण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिनः ॥
मुमुक्षवो घोररूपान् हित्वा भूतपतीनथ ।
नारायणकलाः शान्ताभजन्ति ह्यनसूयवः ॥

अर्थ–शिव जी की सेवा करें और उस के मत पर चलने वालों की बात मानें अर्थात् शैव मत पर चलें वे सत्य शास्त्र के शत्रु और पाखण्डी हैं, मुमु-

क्षुओं को भयानक भूतपति को छोड़ शान्तरूप नारायण को भजना चाहिये, और पद्मपुराण को सुनिये--

ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनस्य श्मशानसदृशं मुखम् ।
अवलोक्य मुखं तेषामादित्यमवलोकयेत् ॥
ब्राह्मणः कुलजोविद्वान् भस्मधारी भवेद्यदि ।
वर्जयेत्तादृशं देवी मद्योच्छिष्ट घटं यथा ॥

जो तिलक (वैष्णवीमार्क) धारण नहीं करता उस का मुख श्मशान के तुल्य है इसलिये देखने योग्य नहीं कदाचित् देखपड़े तो इस का प्रायश्चित्त करे अर्थात् तुरन्त सूर्य का दर्शन कर लेवे ब्राह्मण कुल में जो विद्वान् होकर भस्म धारण करे उस को शराब के जूठे बासन की नाईं त्याग देवे, अब शिवपुराण को देखिये--

विभूतिर्यस्य नो भाले नाङ्गे रुद्राक्षधारणम् ।
नहि शिवमयी वाणी तं त्यजेदन्त्यजं यथा॥

अर्थ--विभूति (भस्म) जिस के माथे पर नहीं और अङ्ग में रुद्राक्ष नहीं पहिने मुंह से शिव २ ऐसा न कहे वह चाण्डाल की नाईं त्याज्य है ॥

ऐसी ही गरुडपुराण में नाना प्रकार से पोपलीला गाई हैं जैसा कि 'यमराज' जिन के मन्त्री चित्रगुप्त जी हैं उन के गण जिन के शरीर पहाड़ के तुल्य होते हैं, जीव को पकड़ लेजाते हैं, और पाप पुण्य के अनुकूल नरक स्वर्ग पाते हैं इस के लिये दान पुण्य श्राद्ध तर्पण गोदानादि वैतरणी उतारने के अर्थ लिखी है यह सब मिथ्या है क्योंकि "यमेन वायुना सत्यराजन्" यम नाम वायु का है शरीर छोड़ वायु के साथ अन्तरिक्ष में जीव रहते हैं और पक्षपात से रहित न्यायकारी परमेश्वर "धर्मराज" है वही न्यायकर्त्ता है और मरने के पीछे जीव को कुछ नहीं मिलता ॥

(१) इस के अतिरिक्त वेदों में ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य को जनेऊ धारण करने की आज्ञा है परन्तु पुराणों में कण्ठी कण्ठ में बांधने का बड़ा माहात्म्य लिखा है और शूद्रों के भी बांधी जाती है ॥

(२) वेदों में न्यून से न्यून २५ वर्ष ब्रह्मचर्य्य के पश्चात् विवाह की आज्ञा है परन्तु अब पुराणों की रीति पर आठ वर्ष की कन्या का विवाह होता है ॥

(३) वेदों में स्त्रीशिक्षा की आज्ञा पाई जाती है परन्तु पुराणों में इस का निषेध है ॥

(४) वेदों में प्रतिदिन पञ्चयज्ञ करने की आज्ञा है परन्तु पुराणों में इस के अतिरिक्त नाना प्रकार के कपोलकल्पित मन्त्रों के जप और अनेक प्रकार की पूजा के बड़े २ विधान और माहात्म्य दिखलाये हैं ॥

(५) वेदों में केवल एक ईश्वर की उपासना करने की आज्ञा है परन्तु पुराणों में नाना देव और वृक्षादि पशुओं के पूजने की आज्ञा है ॥

(६) वेदों में ज्ञान प्राप्त करना मुक्ति का साधन बतलाया है परन्तु पुराणों में (राम) आदि के बारम्बार कहने से मुक्ति पाना बतलाया है ॥

(७) वेदानुकूल धर्म ही मरने पर सहायक होता है पुराणों में गयादि का जाना मरने पर कट्टहा आदि का देना भी सहायक होना बतलाया है ॥

(८) वेदों में स्त्रियों को सर्वोपरि पतिसेवा ही धर्म बतलाया है परन्तु पुराणों के अनुकूल नित्य प्रति उपवास और पेड़ आदि की पूजा करने की आज्ञा और मुक्ति के साधन और हैं ॥

(९) वेदों में मांस और नशों के पीने का निषेध किया है प्ररन्तु पुराणों में उस के खान पान की आज्ञायें मिलती हैं ॥

(१०) वेदानुकूल मनुष्य की आयु ४०० वर्ष की मानी गई है पुराणों में ११ अरब तक आयु लिखी है ॥

(११) वेदों में सत्यादि यम नियम पालन करने का नाम व्रत कहा है पुराणों में भूखे रहने अथवा विना अन्न जल के दिन रात्रि व्यतीत करने को व्रत बतलाया है॥

(१२) वेदों में ईश्वर अजन्मा वर्णन किया है और सर्वसामर्थ्य कहा है परन्तु पुराणों के कर्त्ताओं ने सर्वसामर्थ्य पर धब्बा लगाया है क्योंकि अवश्य कार्य्य करने को पृथवी पर जन्म लेना प्रकट किया है अर्थात् बहुत प्रकार के अवतार बतलाये हैं जिन में कच्छ, मच्छ, वराह भी अवतार माने गये हैं ॥

(१३) वेदों में ईश्वर निराकार सर्वव्यापक माना गया है । पुराणों में ईश्वर को साकार माना है और अनेक प्रकार की मूर्त्ति मानते इसी प्रकार मूर्त्तिपूजा का बड़ा माहात्म्य लिखा है और वह मूर्त्ति धातु आदि की बनाना लिखा है । वेदों में योग के द्वारा सर्वोपरि उपासना मानी गई है और ज्ञानी जन इसी रीति से परम धाम को जाते हैं । इसी कारण हम यह कहते हैं—

ब्रह्मपुराण। पद्मपुराण। ब्रह्माण्डपुराण। अग्निपुराण। गरुड़पुराण। ब्रह्म-वैवर्त्तपुराण। शिवपुराण। लिङ्गपुराण। नारदपुराण। स्कन्दपुराण। मार्कण्डेयपुराण। भविष्यपुराण। मत्स्यपुराण। कूर्मपुराण। वाराहपुराण। वामनपुराण। भागवतपुराण। विष्णुपुराण। वायुपुराण। देवीभागवत। मानसपुराण। इत्यादि पुराण प्राचीन पुराण नहीं हैं इन पुराणों की संख्या के अनुसार १ नृसिंहपुराण २ बृहन्नारदीयपुराण ३ शिवपुराण ४ दुर्वासःपुराण ५ कपिलपुराण ६ मानवपुराण ७ औशनसपुराण ८ वरुणपुराण ९ कालिकापुराण १० शाम्बपुराण ११ नन्दीपुराण १२ सौरपुराण १३ पाराशरपुराण १४ आदित्यपुराण १५ महेशपुराण १६ भार्गवपुराण १७ वशिष्ठपुराण १८ भविष्यपुराण १९ ब्रह्माण्डपुराण और कूर्मपुराण सब उपपुराण २१ होते हैं यद्यपि अग्नि और वह्नि का एक ही अर्थ है परन्तु अग्निपुराण और वह्निपुराण दो जुदे २ ग्रन्थ हैं ब्रह्मवैवर्त्त यद्यपि एक ही पुराण प्रसिद्ध है परन्तु आज कल उस के दो प्रकार के पुस्तक पाये जाते हैं इस कारण एक नाम ब्र० वै० और दूसरे का नाम प्राचीन ब्रह्मवैवर्त्तपुराण रक्खा गया है स्कन्दपुराण का आज कल कोई स्वतन्त्र पुस्तक प्रचलित नहीं परन्तु उस के कई भाग काशीखण्ड, रेवाखण्ड, उत्कलखण्ड, कुमारिखण्ड और भीमखण्ड आदि स्वतन्त्र पुस्तक रूप से प्रचलित हैं ॥

अनुमान होता है कि अठारह पुराण बन जाने के पश्चात् किसी तीर्थविशेष वा देवताविशेष का माहात्म्य की प्रसिद्धि करके टका कमाने की इच्छा से लोगों ने अन्यथा पुराणों को प्रकाशित कर दिया जब स्कन्दपुराण का पुस्तक विलुप्त होगया तब बनारसी गुरुओं को काशीखण्ड बना के स्कन्दपुराण के नाम से प्रचलित करने में कौन रोक सक्ता था। स्कन्दपुराण के नाम से केवल खण्ड नामक आधुनिक पुस्तक ही प्रचलित नहीं हुए हैं वरन व्यास के नाम को कलङ्कित करने वाले कितने ही माहात्म्य भी लोगों ने स्वार्थसिद्धि के वास्ते प्रचरित कर दिये जैसे पद्मपुराण के अन्तर्गत अग्नीश्वरमाहात्म्य, अनन्तशयनमाहात्म्य, तुङ्गभद्रमाहात्म्य, अग्निपुराण के अन्तर्गत अर्जुनपुरमाहात्म्य, और कावेरीमाहात्म्य स्कन्दपुराण का भाग इन्द्रावतार, क्षेत्रमाहात्म्य, कदम्बवनमाहात्म्य, कमलालयमाहात्म्य, कान्तेश्वरमाहात्म्य, कार्त्तिकमाहात्म्य, कुमारक्षेत्रमाहात्म्य, कृष्णमाहात्म्य, गोकर्णमाहात्म्य, चिदम्बरमाहात्म्य, ब्रह्मवैवर्त्त के अन्तर्गत गरुड़ाचलमाहात्म्य, घटकाचलमाहात्म्य इत्यादि अनेक मा

ङ्गात्म्य तथा सत्यनारायण आदि नवीन पुस्तकें वनगई मान्यवरो। यह वह ग्रन्थ नहीं हैं जिन को " पुराण नाम से " पाणिनि आदि ने अपने २ ग्रन्थों में लिखा है जो व्यास जी से बहुत पूर्व हुए हैं जैसेः—

इतिहासमधीतेऽसौ—ऐतिहासिकः ।

तथा पुराणमधीतेऽसौ पौराणिकः ॥

इतिहास के पढ़ने वाले ऐतिहासिक और पुराण के पढ़ने वाले पौराणिक कहाते हैं क्या कोई पण्डित वा साधारण भी यह कह सक्ता है कि जब तक व्यास जी ने पुराण नहीं बनाये तब तक ऐतिहासिक पौराणिक शब्द ही नहीं थे यदि थे तो किन पुराणों के पढ़ने वाले पौराणिक कहाते थे इस से यह सिद्ध हुआ कि जो पुराण पहले से वर्णाश्रम धर्म के वेदानुकूल प्रतिपादन करने वाले थे उन्हीं को वात्स्यायन ऋषि ने प्रामाणिक कहा है क्योंकि इस समय प्रवृत्त पुराणाभास के तो बनाने वाले कोई नहीं जन्मे थे तो प्रामाणिक किस को कहते और भी देखिये महर्षियों का सिद्धान्त है कि—

दशमेऽह्नि किंश्चित् पुराणमाचक्षीत ॥

अश्वमेधयज्ञ में दशवें दिन थोड़ी कथा कहे आप लोगों के विचारानुसार अश्वमेधयज्ञ जब कलियुग में वर्जित है और पुराण कलियुग के आरम्भ में बने यह वचन सर्वथा व्यर्थ हुआ क्योंकि जब अश्वमेध होते थे तब तो पुराण ही न थे कथा किस की कहते। और जब से पुराण बनाये गये तब से अश्वमेध करना ही रोक दिया और करने के सामर्थ्य वाले चक्रवर्त्ती राजा भी न रहे इसलिये यह जो आज्ञा है कि अश्वमेध में दशवें दिन थोड़ी पुराण की कथा कहे यह जब ही ठीक होगा जब कि व्यास जी से पहले भी पुराण माने जावें। यह बात अनेक प्राचीन ग्रन्थों से सिद्ध है कि पुराण बहुत प्राचीन काल से चले आते हैं ब्राह्मण ग्रन्थों में बहुधा इतिहास पुराण के नाम से आये हैं। और ब्राह्मणों को अपौरुषेय वेद मानते हो तो कहिये कि व्यास जी जब नहीं थे तब कौन से ग्रन्थ पुराण शब्द से लिये जाते थे वा जब तक आप के पुराण नहीं बने तब तक ब्राह्मण ग्रन्थों का यह लेख है कि इतिहास पुराण वेदों में पांचवां वेद है व्यर्थ ही रहा। और जैसे रघुवंशी आदि अनेक राजाओं ने अनेक अश्वमेधयज्ञ किये तब व्यास जी कृत पुराण न होने से किस की कथा सुनते थे इस वास्ते आवश्यकता हुई कि इतिहास पुराण वही माने

आदि जिन को वात्स्यायन ऋषि ने प्रामाणिक माना है। हम यह नहीं कहते कि पुराणों के मानने की आज्ञा सद्ग्रन्थों में नहीं है अवश्य ही है। परन्तु भागवतादि नवीन ग्रन्थों का नाम पुराण ही नहीं है वरन पुराण नाम ब्राह्मण ग्रन्थों का है। इस बात को केवल हम हीं नहीं कहते वरन भागवत आदि को जिन लोगों ने बनाया है वह भी इस बात को अपने ग्रन्थों में लिख गये हैं। परन्तु आश्चर्य का विषय है कि आज कल के हिन्दू अपने ग्रन्थों को श्रद्धा और विचार के साथ नहीं पढ़ते देखिये पद्मपुराण में लिखा है कि-

ब्रह्मणा सर्वशास्त्राणां पुराणं प्रथमं स्मृतम् ।

इसी के अनुकूल वायुपुराण में भी लिखा है-

प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम् ॥
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ॥

अ० १ श्लो० ५६

ब्रह्मा ने पहले पुराण को बनाया पश्चात् उस के मुख से वेद निकले। ऐसा ही मत्स्य पुराण में भी लिखा है।

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।
नित्यं शब्दमयं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः।
मीमांसा न्यायविद्या च प्रमाणाष्टकसंयुता ॥

इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि ब्रह्मवैवर्त्त के बनाने वाले भी ब्राह्मण ग्रन्थों ही को पुराण मानते थे, क्योंकि यदि ब्रह्मवैवर्त्त को वह लोग पुराण मानते तो ब्रह्मा के मुख में उन की उत्पत्ति न लिखते। पुराण नामधारी नवीन ग्रन्थों को ब्रह्मा का बनाया हुआ कोई नहीं मानता इस कारण ब्राह्मण ही पुराणशब्दवाच्य है ऋग्वेद के उपोद्घात में हिन्दुओं के परममान्य सायणाचार्य्य भी लिख गये हैं-

"देवासुरा संयत्ता आसन्नित्यादयइतिहासाः। इदं वा अग्रे नैव किञ्चिदासीदित्यादिजगतः प्रागवस्थामुपक्रम्य सर्गप्रतिपादकं वाक्यजातं पुराणम्"

जिन शङ्कराचार्य्य को हिन्दू लोग महादेव का अवतार मानते हैं उन्हीं ने ही बृहदारण्यकोपनिषद् (चतुर्थ ब्राह्मण) के भाष्य में लिखा है-

इतिहासइत्युर्वशीपुरुरवसोः संवादादिरुर्वशीहाप्सरा इत्यादि ब्राह्मणमेव पुराणम् ॥

अर्थात् ब्राह्मणग्रन्थ में उर्वशी और पुरुरवा का संवादरूप इतिहास है इस कारण ब्राह्मण ही पुराण हैं ॥

पुराण नामधारी नवीन पुस्तकों में पुराणों के पांच लक्षण लिखे हैं वे भी ब्राह्मणग्रन्थों में ही घटते हैं भागवत आदि में नहीं पाए जाते वह पांच लक्षण ये हैं ॥

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

सृष्टि, प्रलय, वंश, मन्वन्तर, वंशो का चरित्र इन पांचों का जिन में वर्णन हो उसे पुराण कहते हैं ब्राह्मणग्रन्थों में सृष्टि का वर्णन तो स्पष्ट ही लिखा है देखिये तैत्तिरीयब्राह्मण के प्रथम अष्टक प्रथम अध्याय तृतीय अनुवाक में लिखा है ॥

आपो वावेदमग्रे सलिलमासीत् । तेन प्रजापतिरश्राम्यत् । कथमिदंस्यादिति । सोपश्यत् पुष्करपर्णन्तिष्ठत् । सोमन्यत । अस्ति वै तावत् । यस्मिन्निदमधितिष्ठतीति । स वराहो रूपं कृत्वोपन्यमज्जत् । स पृथ्वीमध आर्च्छत् । तस्याउपहत्योदमज्जत । तत्पुष्करपर्णे प्रथयत् तत् पृथिव्यै पृथिवीत्वम् ॥

इस ब्राह्मण वाक्य में जो सृष्टिक्रम का वर्णन है वह तैत्तिरीयसंहिता के एक मन्त्र का अर्थ है इस से ब्राह्मण ग्रन्थ वेद भी नहीं हैं वरन वेदों की व्याख्या और पुराणशब्दवाच्य हैं, गाथा वा वंशानुचरित ब्राह्मणग्रन्थों में स्पष्ट ही लिखे हुए हैं देखिये ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है ॥

एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेन दीर्घतमा मामतेयो भरतं दौष्मन्तिमभिषिषेच तस्माद्भरतो दौष्मन्तिः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परियाय ॥

अर्थात् ममता का पुत्र-दीर्घतमा ऋषि ने इस ऐन्द्र अभिषेक द्वारा महाराज दुष्मन्त के पुत्र भरत का अभिषेक किया था इसी कारण दुष्मन्तनन्दन भरत ने सम्पूर्ण पृथिवी को जीत के भ्रमण किया था इस के अतिरिक्त शतपथब्राह्मण (१३ । ५ । ४ । १) में लिखा है ॥

"एतेन हैन्द्रेतो दैवा यः शौनकः जनमेजयं पारिक्षितं याजयांचकार तेनेष्ट्वा सर्वां पापकृत्यां सर्वां ब्रह्मत्यामपजघान"

शतपथादि ब्राह्मणों में मिथिलाधिपति महाराज जनक तथा महाराज दुष्मन्त और अनेक ऋषियों की कथा लिखी हुई है इस कारण वेदार्थों को जानने वाले प्राचीन महर्षियों के बनाये ब्राह्मणग्रन्थों की पुराणसंज्ञा है-यह सब को स्वीकार करना उचित है इसलिये प्यारे भाईयो ! भागवतादि नवीन अठारह पुराणों को जो व्यास जी के नाम से स्वार्थियों ने बनाए हैं कि जिन में बहुत हानिकारक बातें भरी हुई हैं उन को त्याग कर वेदोक्त ही कार्य्य कीजिये क्योंकि वेद ही सनातन ईश्वररचित पुस्तक है पुराणादि कदापि नहीं होसक्ते ॥

ईश्वरकृत वेदों का होना ॥

मान्यवरो ! ईश्वरकृत वही पुस्तकें हो सक्ती हैं जिस में निम्न लिखित बातें पाई जावें॥

(१) यह कि वह किसी देश की भाषा न हो, क्योंकि अगर अरबी होगी तो अरब वालों को, फ़ारसी होगी तो फ़ारिस वालों को, अंगरेज़ी होगी तो इङ्गलिस्तान वालों को, हिन्दी होगी तो हिन्दवालों को सुगम होगी, पस ऐसी विद्या सिवाय संस्कृत के कोई नहीं है क्योंकि वह किसी देश की भाषा नहीं है इस में सम्पूर्ण देशनिवासियों को एक सा परिश्रम करना पड़ता है यदि किसी देश की भाषा होती तो उस से परमेश्वर में पक्षपात अर्थात् विकार पाया जाता और वह निर्विकार है इसलिये ऐसी भाषा में वेदों को प्रकट किया कि वह किसी देश की भाषा नहीं है ।

(२) किसी क़ौम की तरफ़दारी न हो ।

(३) सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही प्रकट हुई हो, न कि थोड़ा या बहुत समय व्यतीत होने पर ।

(४) उस की आज्ञा सब जगह एकसी ही हो ऐसा न हो कि एक आज्ञा उस की दूसरी आज्ञा को काट सके ।

(५) सृष्टिनियम जो उसी का रचा हुआ है उस के विपरीत न हो।
(६) न्याय और खगोल भी उस को झूंठा न कर सके।
(७) किसी ख़ास मनुष्य पर ईमान लाने की आज्ञा न हो, वरन उस में केवल एक ईश्वर ही माननीय पूजनीय हो।
(८) मनुष्यों की बुद्धि को उन्नति करने वाली हो।
(९) उस में क़िस्सा कहानियां न हों।
(१०) जितनी विद्या दुनियां में प्रचलित हैं उन सब का कोष हो, इन गुणों से परिपूर्ण जो कोई पुस्तक इस संसार में हो वह ईश्वरकृत पुस्तक हो सक्ती है ॥

मूर्त्तिपूजाविचार ॥

सब से प्रथम यह जानना चाहिये कि "मूर्त्ति„ किस को कहते हैं देखिये बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है—

द्वे वा ब्रह्मणो रूपे मूर्त्तं चैवामूर्त्तं च तदेतन्मूर्त्तं यदन्य-द्वायोश्चान्तरिक्षाच्च। अथामूर्त्तं वायुश्चान्तरिक्षं चेत्यादि ॥

ईश्वर की सृष्टि में दो प्रकार के पदार्थ हैं एक मूर्त्त, दूसरे अमूर्त्त इन में आकाश वायु से भिन्न सब मूर्त्त और आकाश वायु अमूर्त्त हैं अर्थात् पञ्चभूतों में पहले दो मूर्त्त और अन्त में तीन स्थूल हैं और इन तीन भूतों के विकार भूत सभी पदार्थ स्थूल (मूर्त्त) हैं और इसी को आकृति कहते हैं अर्थात् जो नेत्रद्वारा प्रत्यक्ष हो उसी को मूर्त्त वा मूर्त्ति कहते हैं और कोष के अनुसार मूर्त्ति शब्द के दो अर्थ हैं—

"मूर्त्तिः काठिन्यकाययोः"

अर्थात् कठिनाई और शरीर का नाम मूर्त्ति है और इसी से मूर्त्तिमान् शब्द भी बनता है, इस से प्रत्यक्ष प्रकट है कि पाषाणादि से बनी हुई मूर्त्तियों ही का नाम मूर्त्ति नहीं है जो हिन्दू मन्दिरों और ठाकुरद्वारों में ताले के भीतर बन्द रखते हैं।

अब यह विचार करना चाहिये कि मूर्त्ति शब्द के साथ जो पूजा शब्द लगा है उस का क्या अर्थ है तो प्रत्यक्ष प्रकट है कि सत्कार करने का नाम पूजा है, किसी प्रकार के कोष वा व्याकरण के प्रमाण से पूजा शब्द का अर्थ धूप दीप नैवेद्य वा चन्दनादि पदार्थ जड़ वस्तु पर चढ़ाने का प्रसिद्ध नहीं है,

एां पूजा शब्द का अर्थ चेतन वस्तुओं के प्रसंग में आता है अमरकोष में जहां पूजा शब्द आया है उस प्रकरण को देखने से निश्चय होता है कि इस पूजा शब्द का अर्थ चेतनों ही से सम्बन्ध रखता हैं, देखो अमरकोष के द्वितीयकाण्ड के सप्तम ब्रह्मवर्ग में पूजा शब्द आया है वहां उस से पहिले अतिथि और पाहुन का प्रसंग है इसलिये ठीक सिद्ध है कि पूजाशब्द चेतनसम्बन्धी है और सर्वचेतनों के बीच में मनुष्य ही बुद्धिमान् हैं इसलिये इस की ही पूजा करना योग्य है जैसा कि मनु जी महाराज ने कहा है–

आचार्य्यो ब्रह्मणो मूर्त्तिः पिता मूर्त्तिः प्रजापतेः ।
माता पृथिव्या मूर्त्तिस्तु भ्राता स्वो मूर्त्तिरात्मनः ॥

आचार्य गुरु ब्रह्म की मूर्त्ति है अर्थात् जिस भावना से आचार्य की पूर्ण सेवा करेगा वही अभीष्ट सिद्ध होगा, ब्रह्म नाम वेद वा परमेश्वर का यथावत् ज्ञान गुरु की पूजा के आधीन है जब गुरु सन्तुष्ट होगा तो उस को सुगमतापूर्वक वेद वा ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करादेगा ईश्वर और शब्दार्थ सम्बन्ध रूप वेद दोनों अमूर्त्त हैं परन्तु आचार्य के अन्तःकरण में स्थित हैं इस कारण आचार्य को ब्रह्म की मूर्त्ति कहा जिस को ब्रह्म की पूजा करना अभीष्ट हो वह आचार्य की पूजा करे, क्योंकि धर्मशास्त्र आज्ञा देता है कि ब्रह्म की मूर्त्ति आचार्य है और ऐसा किसी ने नहीं कहा कि "पाषाणो ब्रह्मणो मूर्त्तिः" क्योंकि "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" अर्थात् ज्ञान के विना मुक्ति नहीं होती और पाषाणादि जड़ पदार्थ ज्ञान होने में सहायता नहीं दे सकते क्योंकि वह स्वयं ज्ञानरहित हैं इसलिये आचार्य गुरु की ठीक ठीक सेवा किये विना ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती, और पिता सृष्टिकर्त्ता की मूर्त्ति है उसी से शरीररूप पुत्र होता है अर्थात् पिता उस पुत्ररूप शरीर का बनाने वाला है इसलिये जहां सृष्टिकर्त्ता की मूर्त्ति पूजना हो वहां साक्षात् पिता की मूर्त्ति को पूजे जिस से ऋण का उद्धार होजावे माता पृथ्वी की मूर्त्ति है, क्योंकि "इयं भूमिर्हि भूतानां शाश्वती योनिरुच्यते" अन्नादि की उत्पत्ति के समान प्राणियों की उत्पत्ति का स्थान भूमिस्थानी माता है जिस ने सब प्रकार के क्लेश सह के उत्पन्न कर पालन पोषण कर बड़ा किया है उस की साक्षात् मूर्त्ति पूजनी चाहिये और सहोदर भाई अपनी मूर्त्ति है अर्थात् एक स्थान और एक पिता से उत्पन्न होने के कारण सब भ्राता एक ही मूर्त्ति हैं इसलिये जितनी सेवा भ्राता की करे वह जानों अपनी मूर्त्ति की पूजा है जैसा कि–

आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः।
नार्त्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः ॥

आचार्य्य माता पिता और ज्येष्ठ भाई ये यदि किसी प्रकार का दुःख भी दें तथापि इन का अपमान कदापि न करें यह उपदेश सब वर्णों के लिये है परन्तु ब्राह्मण के लिये विशेष है क्योंकि वह धर्म की मर्यादा को अधिक जानता है।

प्यारो ! इसी प्रकार की मूर्त्तिपूजा प्राचीन काल से आर्यों में चली आई है और इसी प्रकार की पूजा का आर्य ग्रन्थों में बहुत उपदेश है, जैसा इन तीनों की सेवा से तप की समाप्ति मनुस्मृति में लिखी है वैसे पापाणादि मूर्त्तियों के पूजने से तप का पूर्ण होना किसी ऋषिकृत ग्रन्थ में नहीं लिखा अब बहुधा लोग मूर्त्ति पूजन को ईश्वर की उपासना के सम्बन्ध में लगाते हैं कि ईश्वर के अवतारों की प्रतिमा बना कर पूजने से ईश्वर में भक्ति और उस का ज्ञान होगा, उस को विचार करना चाहिये कि जब न्यायादि शास्त्रों के अनुसार रूपादि गुण जीवात्मा के भी नहीं मानते अर्थात् जड़स्वरूप पञ्च भूतों के गुण रूपादि हैं किन्तु चेतन में रूपादि का अभाव होने से उस को इन्द्रियगोचर नहीं कह सकते तो उस परमात्मा की प्रतिमा कैसे बनी ? यद्यपि अवतार शब्द और उस के वाच्यार्थ का विचार करना इस प्रसङ्ग में अभीष्ट नहीं है तथापि जो जो लोग श्रीरामचन्द्रादि को ईश्वर का अवतार मानते हैं उन से केवल इतना ही निवेदन है कि आप यदि चिदात्मवाद को लेकर रामचन्द्र जी आदि को ईश्वर मानें तो चेतन वस्तु उन के शरीरों में भी रूपादि गुण रहित ही था, कोई कदापि त्रिकाल में भी सिद्ध नहीं कर सकता कि अमुक चेतन की मूर्त्ति में नीरूपत्वादिगुणयुक्त देखी तो अवतारों के शरीरों को (कि जो पृथ्वी का विकार है) ही प्रतिमा बन सकती है किन्तु उन के शरीरों में जो आत्मा है उस की प्रतिमा बनाना सर्वथा असम्भव है और यदि देहात्मवाद को मानते हो अर्थात् भौतिक शरीर को आत्मा मानते हो तो अविद्या का फल है क्योंकि योगशास्त्र में कहा है कि अनात्मा शरीरादि में आत्मबुद्धि करना अविद्या का लक्षण है और किसी शास्त्र का सिद्धान्त नहीं है कि शरीर को आत्मा माना जावे, इसलिये परमेश्वर की प्रतिमा बनाना सर्वथा असम्भव है, और यदि मनुष्यों की स्वाभाविक वृत्ति

पर ध्यान दिया जावे कि वे अपना उपास्य देव कैसा मानना चाहते हैं तो यही सिद्ध होगा कि हमारा उपास्य देव वही होना चाहिये जिस से ऊपर कोई न हो, यदि हमारे उपास्य देव के ऊपर उस को दवाने वाला कोई अन्य भी हुआ तो हमारा उपास्य देव छोटा हो जायगा फिर हम यथावत् उस की भक्ति न कर सकेंगे और यही चित्त में आवेगा कि हम अपना उपास्य उसी को मानें जो सर्वोपरि है, तात्पर्य यह है कि जब हम किसी पुरुषविशेष पर दृष्टि देवें तो शास्त्रों के अनुसार उन २ पुरुषों के ऊपर भी ऐश्वर्यवान् प्रतीत होते हैं, क्योंकि जिन लोगों ने अवतार माने हैं उन का यही सिद्धान्त है कि नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव ब्रह्म का अवतार नहीं होता तो उस की प्रतिमा कैसे बन सकेगी रहे ब्रह्मादि सो सर्वतन्त्रसिद्धान्त से संसारान्तर्गत हैं क्योंकि ब्रह्मा से लेकर स्थावरान्त जगत् कहाता है, जब संसार में है तो विशेषविभूति वाले होकर भी कर्मानुसार शुभाशुभ कर्मफल के भागी होते हैं जैसा हमारा राजा विशेषविभूति और ऐश्वर्यवान् है पर भोग उस को भी कर्मानुसार मिले हैं तो जिन को ईश्वर मान कर उन की प्रतिमा बनाना चाहते हैं और वे साक्षात् परमेश्वर नहीं तो उन प्रतिमाओं से परमेश्वर की पूजा क्योंकर कही जावेगी, यदि अस्मदादि की अपेक्षा विशेष ऐश्वर्यवान् होने से वे ईश्वर माने जावें तो आज कल के राजा लोग क्यों नहीं माने जाते, और राजादि का ईश्वर नाम केवल विशेष ऐश्वर्य ही के कारण है किन्तु उपास्य देव की दृष्टि से नहीं है, तो जिन का अवतार होना मानते हैं वे उपास्य प्रकरण में ईश्वर ही नहीं फिर उन की प्रतिकृति (तस्वीरों) के बनाने और पूजने से किस प्रकार अभीष्ट सिद्ध हो सकता है, और अवतार मानने वालों से यह भी निवेदन है कि जब चौवीस अवतार हुए मानते हो तो सब अवतारों की प्रतिमा क्यों नहीं बनाई गईं और पांच ही प्रकार की मूर्तियां क्यों बनाईं, यदि शूकर देव वा कच्छपादि की मूर्ति बना कर पूजी जाती तो क्या लोग प्रसन्न होते कि बहुत अच्छे अवतार की प्रतिमा है, कदाचित् शूकरादि की प्रतिमा इसी लज्जा से पूजा में न लीगई हो । सो यदि लज्जा है तो क्या ऐसे अवतार मानने में लज्जित न होना चाहिये, हां श्रीमान् राजा रामचन्द्रादि की प्रतिकृति किसी ने प्रचरित की तो बहुत अच्छे विचार से की होगी किन्तु ईश्वर का अवतार समझ कर नहीं की यदि अवतारों की ही प्रतिमा बनने का कोई नियम किया चाहे तो ठीक नहीं क्योंकि महादेवादि कई की प्रतिमा

बनती हैं और वे अवतारों में नहीं गिने जाते तो यह कहना भी नहीं बनता कि जिन २ ने मनुष्यादि योनि में शरीर धारण किया उन्हीं की प्रतिमा पूजनार्थ बनाई गई और यह भी विचारणीय है कि जैसे महादेव जी शरीरधारी नहीं थे तो उन के लिङ्ग की प्रतिमा कैसे बनी, यदि साकार मानो तो उन के लिङ्ग की प्रतिमा जैसे बन गई वैसे ही विष्णु भी साकार हो सकते हैं और उन की बिना शरीर धारण किये भी प्रतिमा बन सकती है फिर शरीर-धारण अर्थात् विष्णु का अवतार लेना व्यर्थ है क्योंकि जब पहिले ही साकार थे तो शरीर धारी के तुल्य दैत्यवध आदि काम कर सकते थे ॥

अब इस के तत्त्व पर दृष्टि डालिये कि प्रतिमा पूजन की जड़ क्या है तो यह प्रतीत होता है कि प्रतिकृति (तस्वीर वा फ़ोटो) के बनाने की परिपाटी तो सदा से है और होनी भी चाहिये क्योंकि इस से अनेक प्रयोजनों की सिद्धि समझी गई है, जब किसी की किसी के साथ अधिक प्रीति होती है तो देशान्तर होने के समय वा शरीरान्त होने के पश्चात् उस की प्रतिकृति सामने रहने से उस के गुणों का स्मरण करते और उस से चित्त को सन्तोष पहुंचता है तथा अनेक भद्र पुरुषों की तस्वीर देख के उन के शुभ गुण कर्मों का स्मरण होता है, इस से मनुष्य को गुणवान् होने में सहायता मिलती है और यह भी विचार होता है कि जब ऐसे २ गुणी लोग संसार में न रहे तो क्या हम रह सकते हैं हम को भी कभी न कभी यह सब छोड़ना ही है इस से विषयासक्ति कम होती है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं जिन के लिये तो प्रतिकृति का प्रचार बहुत ही उत्तम है परन्तु मुख्य प्रयोजन जो उन से निकलते हैं उन से यथावत् काम लेना विद्वानों का काम है, जब समय के हेर फेर से विद्या और शिक्षा प्रणाली आर्यावर्त्त में घटती गई तो सामर्थ्य हीन होने से उन प्रतिमाओं को ईश्वर की प्रतिमा मानने लगे, क्योंकि जिन दिनों श्रीरामचन्द्र जी आदि की प्रतिकृति प्रचरित थी उन के गुण कर्म शुभ तो बहुत अधिक थे अपने सामने ऐसे गुणी पराक्रमी कोई हुए नहीं तो उन्हीं को ईश्वर मानने लगे, सो यह सब अविद्या देवी का प्रताप है, क्योंकि जिस ने अच्छे विद्वानों की विद्वत्ता को नहीं जाना वह यदि लालबुझक्कड़ को बड़ा पण्डित कहे तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं है, जैसा आज कल भी बहुत से ग्रामीण मनुष्य रेल के इञ्जन को काली देवी की साक्षात् मूर्त्ति मान कर घी गुड़ से पूजते हैं अर्थात् जिस ने विद्या शिक्षा वा सत्सङ्ग के यथावत् न

होने से परमेश्वर के गुण कर्म स्वभावों को यथावत् नहीं सुना वह विशेष ऐश्वर्य वाले शरीरधारियों के गुण कर्म सुन के उन को ईश्वर माने वा उन की प्रतिकृति को ईश्वर की प्रतिकृति समझे तो इस में कुछ आश्चर्य नहीं है, इस से यही प्रतीत होता है कि जो २ महात्मा सज्जन धार्मिक विद्वान् पराक्रमी हुए उन की प्रतिकृति बनी तो देखने आदि के लिये थी पर अविद्या के प्रताप से उन का अभिप्राय लौट कर कुछ का कुछ होगया, और अब यह भी निश्चय नहीं कि जो २ प्रतिमा प्रचरित हैं वे २ उन २ महात्माओं की आकृति के अनुसार हैं, हम को कदापि प्रतीत नहीं होता कि राजा रामचन्द्र जी वा श्रीकृष्णचन्द्र जी की आकृति ऐसी ही हों कि जैसी भयानक प्रतिमा अक्खड़दासी वैरागियों ने त्रिवेणी आदि पर रक्खी हैं यदि उन महात्माओं की ठीक २ प्रतिमा जैसी उन की आकृति थी मिले और कोई अनेक प्रकारों से निश्चय करादेवे कि अमुक महात्मा ऐसे ही थे तो अभी प्रायः लोग ऐसी प्रतिकृतियों को अपने पास रखने की अवश्य चेष्टा करेंगे और उन की प्रतिकृतियों को देख २ आर्यों को बड़ा सन्तोष होगा, जब लोगों ने मनमानी आकृति बनाली तो प्रतिकृति से जो लाभ होना सम्भव था सो भी होना कठिन होगया और प्रतिमा बनाने का प्रचार प्रायः ऐसा है कि शरीर के अन्य अवयवों की प्रतिमा नहीं बनाते अर्थात् कटिभाग से ऊपर की तसवीर प्रायः बनाई जाती है यदि कोई सर्वाङ्ग भी बनावे तो उस का अभिप्राय भी ऊपर के भाग पर ही अधिक होता है और यही होना भी चाहिये क्योंकि मुख का नाम उत्तमाङ्ग है मुख की पहिचान ही मुख्य समझी जाती है, यदि किसी का शिर न हो तो उसे सदृश से पहिचान लेना भी कठिन है, और विषयासक्त लोगों की विषयों में रुचि बढ़ने के लिये उन २ अवयवों की स्पष्ट और शृङ्गारादि सहित भी शिल्पी लोग प्रतिमा बनाते हैं परन्तु केवल लिङ्ग की कोई तस्वीर नहीं बनाता क्योंकि यह तो मूत्र का मार्ग है उस की तस्वीर से क्या प्रयोजन होगा अब यदि कोई प्रश्न करे कि महादेव जी कि जिन को योगिराज मानते हैं उन के लिङ्ग की प्रतिमा क्यों बनाई गई क्या उन के मुख नहीं था, जब जटाजूट में गङ्गा फिरती रही और उस को पार नहीं मिला तो हज़ारों कोस वन के समान केश होंगे उस में शिर भी बड़ा भारी होगा, तीन नेत्र के कहने से भी शिर का होना सिद्ध होता है, कण्ठ में विष पी लिया था इस से भी कण्ठ और शिर का होना सिद्ध होता है तो सब शरीर वा उत्तमाङ्ग की तस्वीर

क्यों नहीं बनाई गई, क्या कारण है जो महादेव जी के लिङ्ग की तस्वीर बनाई गई ? अवश्य इस में कोई विशेष कारण है जिस को अपना पूज्य वा बड़ा मानते हैं उस के पग पूजा करते हैं यही शिष्टों का व्यवहार है, महादेव जी को ऐसा पूज्य मान कर उन के लिङ्ग की पूजा चलाई गई इस में यही कारण प्रतीत होता है कि विषयी लोगों ने वाममार्ग चलाने के लिये यही जड़ रक्खी है, यदि विरक्त से तात्पर्य था तो पद्मासनस्थ विभूति रमाये समाधिस्थ महादेव जी की प्रतिमा बनाते जिस से सज्जनों को हर्ष होता ॥

ऐसे प्रश्न सब के अन्तःकरण में नहीं उठते अनेक लोग तो यह भी नहीं जानते कि महादेव जी के लिङ्ग की यह आकृति है किन्तु जो पूजना उन को बताया गया है सो करते जाना उन का काम है, इस में उन का क्या दोष है । जो लोग आग्रही वा पक्षपाती हैं उन से ऐसा प्रश्न किया जाय तो वे नास्तिकादि कहकर गालियां प्रदान के विना अन्य कुछ भी उत्तर नहीं देते इसलिये वेदानुकूल माता पिता आचार्य आदि मूर्त्तिमान् देवों का सदा आदर सत्कार करना अभीष्ट है ॥

अनेक लोग यह कहते हैं कि यह पाषाणादि मूर्त्तियों का पूजन मूर्खों के लिये है क्योंकि वे ईश्वर की भक्ति वेद वा मन्त्रादि द्वारा नहीं कर सकते और जब उन के चित्त में प्रेम बढ़ते २ ज्ञान होजायगा तो आप ही उस को छोड़ देंगे । जैसे छोटी २ लड़कियां पहिले गुड़ियों के द्वारा खेला करती हैं और जब उन को सच्चे पति का ज्ञान होजाता है तब वह इस खेल को आप ही छोड़ देती हैं, उसी भांति मूर्ख लोग ज्ञान होने पर इस को त्याग कर देते हैं । यदि ऐसा ही हो तो अभी तक ऐसा देखने में नहीं आया कि किसी मूर्खमण्डली को पाषाणादि मूर्त्तियों की पूजा करते २ ईश्वर का ज्ञान हुआ हो और उन्होंने मूर्त्तिपूजन छोड़ दिया हो । हां यह तो देखने में आया है कि सहस्रों मूर्ख जन्म जन्मान्तरों तक मूर्त्तिपूजन करते २ मरजाते हैं परन्तु किसी को ज्ञान नहीं होता, इस का कारण यही है कि वहां उन मूर्त्तियों में स्वयमेव ज्ञान का लेशमात्र भी नहीं होता तो भला फिर सेवकों को कहां से आजावेगा क्योंकि जो पदार्थ जिस के पास होता है वही दूसरों को देसकता है हां जैसा मूर्त्तिपूजन वेदादि शास्त्रानुकूल है अर्थात् चेतन मूर्त्तियों की यथावत् सेवा करना उस से अवश्य ज्ञान हो सकता है । इस के उपरान्त यह भी विचार करना योग्य है कि यदि मूर्खों के लिये पाषाणादि पूजन है

वा जिन मूर्खों के लिये ? अर्थात् एक तो जन्म से बाल्यावस्था से सभी मूर्ख होते हैं तथा एक मूर्ख वे हैं कि जिन को बड़ी अवस्था में भी किसी प्रकार की विद्या वा सत्सङ्ग से ज्ञान नहीं हुआ । यदि बालकों के लिये है तो उन को सन्ध्योपासनादि का विधान जैसा ब्रह्मचर्य्य आश्रम से ही धर्मशास्त्रों में किया गया है वैसा धर्मशास्त्र का उपदेश क्यों नहीं किया गया और उन बालकों को सन्ध्योपासनादि वा विद्याभ्यास से जब ज्ञान हुआ तो उन के लिये पाषाणपूजन का उपदेश निरर्थक है । दूसरे प्रकार के मूर्खों को इस मूर्त्तिपूजा से ज्ञान होना ही असम्भव है, कदाचित् मान भी लिया जावे कि मूर्खों के लिये है, तो फिर विद्वान् लोग क्यों करते हैं, यदि कोई कहे यह सब पूजन शूद्रों के लिये है तो भी उन को कालान्तर में ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती, हां विद्वान् महात्माओं की सेवा उन शूद्रों और मूर्खों से कराई जावे कि जिस से उन को भी सत्सङ्गरूपी गन्ध पहुंच कर उन के अन्तःकरण की धीरे २ शुद्धि होने लगे, शूद्रों को तीनों वर्णों की सेवा करना बतलाया गया है, बहुधा जन यह भी कहते हैं कि प्रतिमा में मन लग जाता है परन्तु उपासना प्रकरण में वेद वा किसी सत्यशास्त्रकार ने प्रतिमा में मन को ठहरा कर उपासना करना नहीं लिखा, फिर किस प्रकार से माना जावे, देखिये अर्जुन ने श्रीकृष्णचन्द्र जी महाराज से कहा है कि मन बड़ा चञ्चल है इस का रोकना अत्यन्त कठिन है जैसा कि-

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥

इस पर श्रीकृष्णचन्द्र जी महाराज ने उत्तर दिया कि सच मुच मन ऐसा ही चञ्चल है उस का ठहरना बहुत कठिन है तथापि अभ्यास और वैराग्य से ठहराया जाता है । ऐसा ही योग सूत्र में भी लिखा है-

"अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः"

अर्थात् चित्त का निरोध अभ्यास और वैराग्य से करना चाहिये, मन को स्थिर करने के लिये प्रतिदिन अभ्यास और जिन वस्तुओं के लिये मन अधिक चलता है उन से वैराग्य करके रोकना चाहिये क्योंकि जिस की उपासना करना चाहते हैं उस आत्मा में चित्त को स्थित करने के लिये बार २ यत्न करने को अभ्यास कहते हैं तथा संसारी वा परमार्थसम्बन्धी सुखों के

भोग की तृष्णा को छोड़ना वैराग्य कहाता है। और ऐसे ही भगवद्गीता में लिखा है-

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥

स्थिरतारहित चञ्चल मन जिधर को निकले उधर से बार २ रोक कर अन्तःकरण में वशीभूत करे इत्यादि प्रकार से मन को स्थिर करने के अर्थ अनेक उपाय शास्त्रकारों ने लिखे हैं, पर यह किसी ने नहीं लिखा कि ईश्वर की प्रतिमा पाषाणादि की बना कर उस में चित्त को ठहरावे, तो किस प्रकार मान लिया जावे कि चित्त को स्थिर करने के लिये प्रतिमा होनी चाहिये, और यह बात युक्ति से भी सिद्ध नहीं कि जो विषय भौतिक इन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष करें उसी को हम जान सकें, यदि ऐसा हो तो भूख प्यास सुख दुःख हानि लाभ आदि अनेक विषय हैं जिन को हम कभी इन्द्रियों के द्वारा न प्रत्यक्ष किया और न कर सकेंगे कि भूख इतनी लम्बी चौड़ी मोटी पतली काली पीली आदि है, परन्तु जानते अवश्य हैं कि यह भूख प्यास आदि है किन्तु उस निराकार भूख प्यास आदि के जानने के लिये किसी पाषाणादि की प्रतिमा बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती और मूर्ख पण्डित सभी उस को जानते हैं तो निराकार ईश्वर को जानने के लिये पाषाणादिनिर्मित प्रतिमा की क्या आवश्यकता है, देखिये-

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचित् जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥

जो धातु आदि में आत्मबुद्धि करते हैं और नदी नाले पहाड़ स्थान आदि में तीर्थबुद्धि और स्त्री पुत्रादि में ममता रखते हैं वे मनुष्यों के बीच में गधे वा बैल हैं। महाभारत में लिखा है-

तीर्थेषु पशुयज्ञेषु काष्ठपाषाणमृण्मये।
प्रतिमादौ मनो येषां ते नरा मूढचेतसः ॥

तीर्थ और पशुओं के यज्ञ, काष्ठ, पाषाण, मिट्टी की प्रतिमा अर्थात् तसवीरों में जिन का मन है वह मनुष्य मूर्ख हैं, और भी कहा है-

मृच्छिलाधातुदार्वादिमूर्त्तावीश्वरबुद्धयः। क्लि-
श्यन्ति तपसा मूढाः परां शान्तिं न यान्ति ते ॥

जो जीव सर्वव्यापक परमात्मा न्यायकारी की धातु पत्थर लोहा पीतल चान्दी सोना आदि किसी भांति की मूर्त्ति बनाते हैं वे अज्ञानी हैं, और गीता में भी लिखा है।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परंभावमजानन्तो ममाव्यक्तमनुत्तमम् ॥

अविवेकी विचाररहित, मुझ निराकार को मूर्त्तिमान् मानते हैं मेरे परम भाव अर्थात् मुख्य प्रयोजन को नहीं जानते। यजुर्वेद अ० ४० मं० ९ में लिखा है—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते ।
ततो भूयइव ते तमो य उ संभूत्याꣳ रताः ॥

अर्थात् जो असम्भूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारण की ब्रह्म के स्थान में उपासना करते हैं वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दुःखसागर में डूबते हैं, और सम्भूति जो कारण से उत्पन्न हुए कार्यरूप पृथिवी आदि भूत पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादि के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं वे उस अन्धकार से भी अधिक अन्धकार अर्थात् महा-मूर्ख चिरकाल घोर दुःखरूप नरक में गिर के महाक्लेश भोगते हैं। इस के उपरान्त य० अ० ४० मं० ८ में लिखा है—

सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधा-
च्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥

उक्त मन्त्र में अकाय, अव्रण, अस्नाविर, जो ईश्वर के विशेषण दिये हैं इन से स्पष्ट जाना जाता है कि ईश्वर निराकार है क्योंकि 'काय' नाम शरीर का है जिस के 'काय' शरीर नहीं वह अकाय कहाता है तथा वेदों में और भी बहुत मन्त्र हैं जिन में ईश्वर को निराकार कहा है, तथा उपनिषदों में भी लिखा है—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥

अर्थात् वह ईश्वर हाथ पैरों से रहित है पर वेगवान् और ग्रहण करने वाला है, वह नेत्रवान् नहीं पर देखता है, वह कानों से रहित है पर सुनता

है, वह सब को जानता है परन्तु उस का जानने वाला कोई नहीं, उस को अग्रय पुरुष पुराण परमात्मा कहते हैं ॥

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥
दिव्योह्यमूर्त्तः पुरुषः स वाह्याभ्यन्तरोह्यजः ।
अप्राणोह्यमनाः शुभ्रोह्यक्षरात् परतः परः ॥

इत्यादि वाक्यों में जो अशब्द, अस्पर्श, अरूप तथा अनादि, अनन्त, अमूर्त्त और नित्य आदि विशेषण ईश्वर के लिये दिये हैं इस से निश्चय है तथा वेदों में अन्य भी अनेक मन्त्र हैं जो ईश्वर को निराकार प्रतिपादन करते हैं, और युक्ति से भी ईश्वर निराकार है क्योंकि जो पदार्थ साकार है वह एक देश में रह सकता है सर्वव्यापक कभी नहीं हो सकता, ईश्वर सर्वव्यापक है तो फिर वह साकार कैसे हो सकता है? हां अन्तर्यामी मर्वोपरि विराजमान सनातन आदि गुण सहित परमेश्वर की उपासना करने को सगुण और 'अकाय' अर्थात् काया से रहित, पापाचरण कभी नहीं करता, सुख दुःख कभी नहीं होता इत्यादि गुणों से पृथक् मान कर जो उपासना करते हैं वह निर्गुण उपासना कहलाती है। देखिये य० अ० १० मं० २५ में परमात्मा आज्ञा देते हैं कि जो मनुष्य अपने हृदय में ईश्वर की उपासना करते हैं वे सुन्दर जीवनादि के सुखों को भोगते हैं और कोई भी पुरुष ईश्वर के आश्रय के विना पूर्ण बल और पराक्रम को प्राप्त नहीं होसकता। जैसा कि:-

इयदस्यायुरस्यायुर्मयि धेहि युङ्ङसि वर्चोऽसि वर्चो मयि धेह्यूर्गस्यूर्जम्मयि धेहि । इन्द्रस्य वां वीर्यकृतो वाहू अभ्युपावहरामि ॥

और ऐसा ही इसी अ० के २४ वें में भी लिखा है इस लिये प्यारे सांसारिक भाइयो आओ! हम सब मिल कर उस परमेश्वर को वेद द्वारा जान कर नाना प्रकार से उस की स्तुति, प्रार्थना, उपासना सदा करें और कभी किसी समय में भी उस परमपिता अन्तर्यामी को क्षणमात्र के लिये भी त्याग न करें क्योंकि वही हमारे आत्मिक रोगों का नाश करने वाला डाक्टर है वही हमारा पालन करने वाला हमें ज्ञान देने वाला और हम को दुःखों से छुटाकर सुख प्रदान करने वाला है उस के उपरान्त कोई दूसरा नहीं ॥

त्योहार ॥

इस समय भारतखण्ड में 'त्योहारों' की भी धूम धाम है, कोई महीना ऐसा न होगा कि जिस में कोई त्योहार न होता हो, वरन दो २ चार २ त्योहार एक २ महीने में आन पड़ते हैं जिन के नियत करने के कारण भी पृथक् २ हैं परन्तु अब कुछ के कुछ समझे जाते हैं और प्राचीन समय में इतने त्योहार न थे। हां जब से भारत में विद्या का प्रकाश कम हुआ और अविद्या ने अपना राज्य किया तब से स्वार्थियों ने नाना लीला रचकर अपने २ मतलब गांठने के अर्थ अनेकान त्योहार नियत कर लिये जिन का यदि व्योरेवार वर्णन किया जावे तो एक बड़ी पुस्तक बन जावे। इस कारण हम श्रावणी, दशहरा, दिवाली, डयोथान, वसन्त, होली जो सब से प्राचीन त्योहार हैं उन का संक्षेप से वृत्तान्त और मुख्य प्रयोजन लिखते हैं कि जिस कारण यह त्योहार नियत किये गये हैं। और अब जैसा गड़बड़ कर लिया है उस को भी सज्जनों के सम्मुख प्रकाश करता हूं। अब निष्पक्ष हो विचारपूर्वक प्रत्येक त्योहार के मुख्य कारण को जान यथार्थ व्यवहार करना उचित है और इन सम्पूर्ण त्योहारों में जो २ मिथ्या वार्त्ता हैं उन का त्यागना अभीष्ट है कि जिस से आगे को सुख हो ॥

ऋषितर्पण वा श्रावणी ॥

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमात् ।
त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्षं मरणं व्यथा ॥

इस श्लोक के अर्थों से प्रकट होता है कि इसी ऋषितर्पण त्योहार पर कि जिस का अशुद्ध नाम 'सलोना' प्रसिद्ध है, अब हम इस के तात्पर्य्य को प्रकाश करते हैं कि मुख्य प्रयोजन इस का क्या है और हम को क्या करना चाहिये।

प्यारे सुज्जनो! यह बात स्पष्टरूप से प्रकट है कि संसार में विद्वानों और महात्माओं की प्रतिष्ठा करना ही सुख का हेतु और भलाइयों का मूल है और जिस स्थान पर ऐसे गुणी और सत्पुरुषों का अच्छे प्रकार से आदर सत्कार नहीं होता वहीं नाना प्रकार के उपद्रव मचते हैं जैसा कि उपरोक्त श्लोक के अर्थों से प्रकट होता है। जहां अपूज्य अर्थात् मूर्खों की पूजा और ज्ञानी महात्माओं का असत्कार होता है वहां तीन बातें होती हैं। अकाल, मरी, व्यथा। जो अधर्म के फैलने से प्रकट होती हैं। हमारे प्राचीन सत्य-

शास्त्रों में भी तीन प्रकार के क्लेश लिखे हैं—पहिला 'आध्यात्मिक' जो कि ज्वरादि रोगों से शरीर में पीड़ा होती है। दूसरा 'आधिभौतिक, जो प्राणियों से होता है। तीसरा 'आधिदैविक, जो मन और इन्द्रियों के विकार अशुद्धि और चञ्चलता से क्लेश होता है। यदि ध्यान लगाकर देखा जावे तो यह तीनों दुःख विद्वान् और महात्माओं के निरादर करने से उत्पन्न होते हैं क्योंकि 'आध्यात्मिक, जो अन्तःकरण के दोषों से होता है और उस की शुद्धि और अन्तःकरण की शुद्धि सत्योपदेश से होती है। सत्योपदेश विद्वानों का (जो ऋषि मुनि वा देवता के नाम से पुकारे जाते हैं) काम है इस के उदाहरण उपनिषद् और ब्राह्मण ग्रन्थों में बहुत से पाये जाते हैं कि मन की शान्ति के लिये बड़े २ विद्वान् भी सत्योपदेश सुनने को आत्मतत्त्वज्ञानियों के निकट जाया करते थे। 'आधिभौतिक' शारीरक रोगों वा घातक जन्तुओं से होता है जिस से आराम पाना वैद्यक विद्या के आधीन है जो पूर्ण विद्वानों के सत्सङ्ग से जाते हैं। तीसरा 'आधिदैविक' जो सर्दी गर्मी वर्षा के न्यूनाधिकत्व से होता है उस का उपाय और दूर होना भी महात्माओं के हाथ है क्योंकि यह सज्जन सदा हर एक ऋतु और मौसम के अनुकूल योग्य पदार्थों से हवन यज्ञ करते थे जिस के प्रभाव से साफ़ वायु शुद्ध हो कर समय २ पर यथावत् वर्षा होती थी, और कभी मरी बवा और हैज़ा का नाम न सुना जाता था। और जो दुःख चोर डांकू और घातक जन्तुओं होते हैं उन का प्रबन्ध राजऋषि करते थे। इस उपरोक्त व्याख्यान से स्पष्ट प्रकट होगया कि सब प्रकार के दुःख विद्वानों और महात्माओं के परिश्रम से दूर हो सकते हैं, जहां उन की प्रतिष्ठा नहीं वहां उन का मिलना दुर्लभ है। ऐसा ही वेदों में भी पाया जाता है जैसा कि अथर्ववेद के प्रपाठक ३५ काण्ड १९ अनुवाक १ मं० १४ में लिखा है—

शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिः सर्वे मे देवाः ॥

अर्थ—सम्पूर्ण देवता (विद्वान् लोग) प्रत्येक प्रकार के दुःख दूर कर के शान्ति करने वाले हों।

इसी प्रकार और भी अथर्व वेद में लिखा है कि जो विद्वानों में श्रेष्ठ यज्ञ कराने वाले हैं और जो यज्ञ में सत्कार करने योग्य हैं जिन के लिये 'हव्य' अर्थात् उत्तम सामग्री के भाग किये जाते हैं और वह सर्व विद्वान् (देवता) अपनी स्त्रियों के साथ आकर इस यज्ञ को उत्तम बुद्धि से पूर्ण करें—

ये देवानामृत्विजो ये च यज्ञिया येभ्यो हव्यं क्रियते भागधेयम्।
इमं यज्ञं सह पत्नीभिरेत्यवावन्तोदेवा समिषा मादयताम् ॥
अ० प्र० १९ कां० ५७ अनु० ५९ मं० १०

इन मन्त्रों से स्पष्ट प्रकट है कि हमारे सम्पूर्ण कार्य विद्वान् महात्मा ऋषिओं के द्वारा ही हो सक्ते हैं यही कारण था कि प्राचीन राजा महाराजा विद्वानों और ज्ञानियों का आदर सत्कार तन मन धन से करते थे, देखिये महाराजा दशरथ ने श्रीविश्वामित्र जी महाराज जो वन के रहने वाले एक ऋषि थे, जब महाराजा के निकट आये तब उन्हों ने उन का यहां तक मान और सत्कार किया कि अपने प्यारे कुलभूषण श्रीरामचन्द्र जी को यज्ञ की रक्षा और उन की सेवा सहायता के अर्थ साथ कर दिया, इसी प्रकार राजा और प्रजा अपनी शक्ति के अनुकूल इन सत्पुरुषों की सहायता और सेवा करते रहे हैं परन्तु वर्षा के इन चार महीनों में विशेष कर सेवा और सत्कार का अधिक प्रचार था क्योंकि इन्हीं दिनों में वर्षा की अधिकता के कारण व्यापार कम होता था व्यापारी जन अपने घरों पर निवास करते थे और ऋषि महात्मा विद्वान् लोग जङ्गल पहाड़ों से आकर नगरों में निवास करते थे, इसलिये यह समय सत्सङ्ग के लिये अत्यन्त उचित और योग्य था, घर से मनुष्य उन के पास जाकर उन के सत्सङ्ग से नाना लाभ उठाते थे, आषाढ़ और सावन दो महीने के सत्सङ्ग से गृहस्थी और राजपुरुष लोग विचारते थे कि अमुक ऋषि वा महात्मा इस सत्कार वा सम्मान के योग्य हैं, वैसा ही इस पूर्णमासी के दिन जो श्रावण महीने का अन्त दिवस है, प्रत्येक ऋषि महात्मा विद्वान् के साथ यथायोग्य वित्तसमान दान देते थे, और जो मनुष्य यज्ञोपवीत से भ्रष्ट होते थे उन को यज्ञोपवीत दिया जाता था, और जो कुसङ्ग के कारण पतित हो जाते थे उन को भी इस समय पर शुद्ध किया जाता था वह सम्पूर्ण महात्मा इन गृहस्थी और राजपुरुषों से सम्मान पाकर धर्मोपदेश किया करते थे और राजा प्रजा को हवन यज्ञ की ओर रुचि दिलाते, अपने हाथों से भी करते कराते थे, यज्ञ के लाभ अनेक हैं कि जिन का वर्णन पञ्चयज्ञों में किया है ॥

इस ऋतु में अधिक यज्ञ करने की प्रेरणा इस कारण है कि इन दिनों में स्थान स्थान पर पानी रुक जाता है कि जिस से वायु बिगड़ जाती है

कि जिस से नाना रोगों के उत्पन्न होने का भय होता है इस कारण प्राचीन समय के ऋषि मुनियों ने इन सब बुराइयों के मेटने का उपाय एक यज्ञ करना ही विचारा था और वह आप इन परोपकारी यज्ञों में वेद मन्त्रों को उच्चारण करते थे कि जिन में यज्ञ की रीति और फल, परमात्मा की उपासना और प्रार्थना होती है करते कराते थे। कैसा शुभ समय वह होता होगा क्योंकि प्रथम तो वर्षा ऋतु के कारण हरे २ पौदों की हरियाली आंखों को आनन्द देती होंगी, दूसरे 'यज्ञ' के होने से उस की सुगन्धों की लपटें सब स्थानों और शरीर को सुगन्धित कर देती होंगी, तीसरे ऋषि और महात्माओं के सत्योपदेश से अन्तःकरण के मल दूर होते होंगे, तदनन्तर वह सर्व जन उन सत्पुरुषों और ऋषि मुनि महात्माओं को आदर सत्कार कर विदा करते थे, उसी समय वे महात्मा जन उन को आशीर्वाद देते थे, जिस को ऋषितर्पण कहते हैं, आर्यों में जो देवयज्ञ करने की शिक्षा है वे विशेष कर इन्हीं महीनों में पूर्ण होते थे, राखी या कलावा हाथ में बान्धने की रीति जो अब तक प्रचलित है, यह उन यज्ञों में जाने का चिह्न था, जो मनुष्य इन दिनों में महात्माओं के सत्सङ्ग और उपदेश से लाभ उठाते, उन के हाथ में यह शुभ चिह्न बांधा जाता था ॥

दशहरा ॥

यह हमारे देश का प्रसिद्ध त्योहार है जो श्रीरामचन्द्र धर्मात्मा परोपकारी के स्मरण का दिन है कि जिन के नाम का स्मरण प्रत्येक की जिह्वा पर है। जिन को मरे हुए लाखों वर्ष होगये परन्तु उन के गुणों की प्रशंसा प्रत्येक जन करता है। ये महात्मा उस समय के मनुष्यों में सर्वोपरि थे जिन के समान इस समय तक पृथ्वी पर श्रीकृष्णचन्द्र महाराज के सिवाय और कोई नहीं हुआ देखिये अपने पिता की आज्ञा को मान राज्य के सुखों को त्याग कर चौदह वर्ष वन में रहना स्वीकृत किया और वहां सेना के न होने पर भी वनवासियों के दुःखों को दूर किया। चौदह वर्ष की आयु में विश्वामित्र ऋषि की सेवा टहल कर अनेक दुष्टों को मारा और सदा सत्य को ही सम्पूर्ण कार्यों में प्रधान समझ कर उस को कभी त्याग न किया। इसी कारण सम्पूर्ण प्रजा जन उन को अधिक चाहते थे। आप ही ने राजा जनक का प्रण पूरा कर जानकी के साथ विवाह किया था यह आप ही की सामर्थ्य थी कि वन के बीच में होने पर भी दुष्ट राक्षसों को मार कर वनवासियों को

आराम दिया। क्या कोई नहीं जानता कि इन्हीं प्रतापी महात्मा ने लङ्का में राजा रावण को मारा था। यह राजा भी महाबली और बलवान् था। जिस दिन इस दुष्ट को मारा था वह दिन कुआर शुदी १० थी जिस को विजयदशमी कहते हैं। जो श्री महाराजा के स्मरणार्थ आज तक उसी दिन पर त्योहार मनाया जाता है। दूसरे वर्षा के दिनों में सम्पूर्ण असबाब राजाओं का पड़ा रहता है क्योंकि वर्षा के दिनों में चढ़ाई आदि बहुत कम होती है और हथियारों पर भी मैल जम जाता है इसलिये वर्षा के अन्त पर एक दिन नियत किया गया कि उस तारीख़ को सम्पूर्ण माल असबाब ठीक हो जावें और बड़ी धूमधाम की जावे और वर्ष भर का हिसाब किया जावे, इत्यादि बातों के लिये यह त्योहार किया जाता है॥

परन्तु कैसे शोक का स्थान है कि वर्तमान समय में मुख्य अभिप्राय को छोड़ कर ऐसा आश्चर्ययुक्त रंग रचा है जो बुद्धि के अत्यन्त विरुद्ध है क्योंकि ऐसे सच्चे परोपकारी धर्मात्मा के स्थान पर ऐसे २ मूर्ख लड़कों के स्वांग बना कर दिखलाते हैं जिन को किसी प्रकार का ज्ञान नहीं, तिस पर उन के चाल चलन ऐसे ख़राब कि जिन के कथनमात्र से लाज आती है। लुच्चों की गोद में सोते हैं उन्हीं का नाम राम लक्ष्मण इत्यादि होता है और नक़ल बनाना बहुत बुरा है जैसा मनु जी ने लिखा है—

दशसूनासमश्चक्रं दशचक्रसमोध्वजः ।
दशध्वजसमो वेशो दशवेशसमो नृपः॥

अर्थात् किसी की नक़ल बनाने में मनु जी ने १००० गोहत्या का पाप लिखा है भाट भंडेले बहुरूपिये आदि तो इस पाप कर्म से सदा अपना जीवन ही करते हैं परन्तु स्वांग बनाने वाले तथा रामलीला कृष्णलीला बनाने वाले अपना धन व्यय कर के नक़ल बना कर इस पाप में क्यों पड़ते हैं॥

दिवाली॥

इस के विषय में पुराणों के वचन सुनाते हैं—देखिये कार्त्तिकमाहात्म्य में लिखा है कि प्राचीन समय में एक ब्राह्मण था जो धन की लालसा में विष्णुमहाराज जी की सेवा करने लगा थोड़े दिनों में जब विष्णु महाराज उस के तप से प्रसन्न हुए तो उस के निकट पहुंचे और पूंछा कि तुम क्या चाहते हो उस ने धन (लक्ष्मी) के मिलने की प्रार्थना की उन्होंने कहा कि

तुम अपने स्थान पर जाकर राजा से यह मांगो कि मिती कार्तिक वदी अमावस की रात्रि को कोई नगर में दिया न जलाने पावे जब यह प्रार्थना अङ्गीकृत हो जावे तो तू अपने घर में अच्छे प्रकार से दियों को जलाना उस दिन लक्ष्मी उस नगर में आवेगी और सब नगर में अन्धेरा होने के कारण घबड़ा कर तेरे घर में घुस पड़ेगी इस वरदान को पाकर घर आ, विष्णु की आज्ञानुसार राजा से प्रार्थना की जो तुरन्त स्वीकार हुई उस ब्राह्मण ने वैसा ही किया, जब आधी रात का समय हुआ और लक्ष्मी जी आई जो चारों ओर नगर भर में अन्धेरा फैला हुआ देख कर उस ब्राह्मण के घर में कि जो नानाभांति से सजा हुआ प्रकाशित हो रहा था घुस गई, तब ब्राह्मण डंडा लेकर पीछे पड़ा कि तू निकल मेरे घर से तू बड़ी चञ्चल विष्णु की स्त्री है, तू कहीं नहीं ठहरती मेरे घर में भी नहीं ठहरेगी, इसलिये मैं तुझ को अपने घर में रहा न करूंगा, लक्ष्मी ने निहायत खुशामद की और प्रण किया कि मैं तेरे घर से कभी न जाऊंगी वह ब्राह्मण लक्ष्मी के कारण धनाढ्य हो गया, लोगों ने उस को धनवान् देख कर लक्ष्मी की चाहना में उसी के अनुसार उस दिन सब घरों को स्वच्छ और सुथरा कर दीपमालिका की। उसी दिन से यह रीति चली आती है जिस से इस कार्य के कर्त्ता धन दौलत से भरे पुरे रहते हैं॥

अब इस उपरोक्त लेख पर दृष्टि डालने से प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि ब्राह्मण ने दुःखी हो कर धन (दौलत) की प्रार्थना की थी न कि विष्णु महाराज की स्त्री की, फिर श्रीविष्णु जी ने लक्ष्मीप्राप्ति का यह अनोखा उपाय ब्राह्मण को क्यों बतलाया ऐसे विष्णु को आप क्या कहेंगे कि जिस ने अपनी स्त्री के मिलने का उपाय दूसरे को बताया और आप ने सदा के लिये अपनी स्त्री की जुदाई स्वीकार की यदि उस शहर वा नगर में राजा के हुक्म से अन्धेरा था तो और आस पास के नगर गांव में तो आधीरात थी वहां क्यों न चली गई, तिस पर भी उस ब्राह्मण के कटु वचन सुन कर उस के गृह में सदा के लिये रहना स्वीकार किया, पर यह नहीं लिखा कि वह क्योंकर लक्ष्मी की बदौलत धनवान् होगया क्योंकि वह अपने साथ कुछ लाई न थी, उपाय क्या किया कि जिस से वह ब्राह्मण द्रव्यवान् होगया ?॥

अब देखिये कि इस के विरुद्ध शिवपुराण में दिवाली के विषय में इस प्रकार लिखा है—

श्रीकृष्ण महाराज ने युधिष्ठिर से कहा कि हे राजा ! प्राचीन समय विष्णु महाराज ने 'वामन' अवतार राजा बलि के फुसलाने के अर्थ लिया और इन्द्र को राज्य दिला कर बलि को पाताल में नियत किया, और केवल एक दिन इस पृथ्वी पर राजा बलि के राज्य के अर्थ नियत किया इसलिये कार्तिक बदी अमावस को पृथ्वी पर दैत्यों का राज्य होता है और वह अपने स्वभाव के अनुकूल कार्य्य करते हैं इसी से उस दिन जुआ खेलने की आज्ञा है ॥

प्यारे सुजनो ! अब विचारिये कि एक 'दिवाली' कि जिस के अर्थ दो रायें, वह भी एक दूसरे के विरुद्ध, तो बताइये किस को सच कहें और किस को झूठ, यदि उस दिन दैत्यों का राज्य मानते हो तो दैत्यों के कार्य में शामिल होना और त्योहार मान कर खुशी करना भी वृथा और अनुचित है ॥

अब हम आप को ठीक २ वृत्तान्त इस त्योहार का सुनाते हैं उस को विचारिये और सच को मानिये—

यह त्योहार वर्षा के समाप्त होने पर होता है, अत्यन्त वर्षा होने के कारण सम्पूर्ण मकानों की शकल सूरत बुरी और भोंडी हो जाती है, हमारे बड़े २ ऋषि, महात्मा, जो पदार्थ विद्या को यथावत् जानते थे और शौच को धर्म का एक लक्षण मानते थे यह एक दिन इसी लिये नियत किया था कि उसी दिन तक प्रजा के सब मकानों की सफ़ाई ठीक २ होजावे कि जिस से उन की सुन्दरता में अन्तर न होजावे और वायु अशुद्ध न होने पावे इस कारण इस कार्य को आवश्यक समझ कर इस दिन त्योहार मान लिया कि जिस से सम्पूर्ण स्थानों में यह कार्य होजावे ॥

अब रहा दीपमालिका का होना यह भी प्रयोजन से पृथक् नहीं है क्योंकि बुद्धि से ऐसा जाना जाता है कि श्रीरामचन्द्र जी विजयदशमी को रावण को मारकर कार्त्तिक वदि अमावस को अयोध्या में पधारे थे क्योंकि राजा रामचन्द्रजी महाराज चौदह वर्ष पश्चात् वन से आये थे जो प्रजा के अत्यन्त प्यारे थे इस प्रसन्नता को प्रकट करने के लिये दीपमालिका की थी और नवीन अन्न इत्यादि का हवन परमेश्वर का धन्यवाद मानकर प्रसन्नता मनाई थी। यह यादगार अब तक चली जाती है और ऐसे ही चली जायगी ॥

देवोत्थान अर्थात् ड्योठान ॥

यह त्योहार मिती कार्त्तिक शुदि ११ को होता है पूर्वकाल में ऋषि, मुनि, देवता, विद्वान्, महात्मा जो कि वर्षा ऋतु में शहरों में आजाते थे इस

तिथि से फिर अपना दौरा आरम्भ करते थे। इस समय तक ज्वार बाजरा आदि अन्न और गन्ना भी तय्यार होजाता था। इसलिये इस दिन सम्पूर्ण जन हवन करके प्रकार २ के पदार्थ विद्वानों को अर्पण करके प्रार्थना करते थे कि हे विद्वानो! आप संसार के भिन्न २ भागों में जाकर अपने सदुपदेश से मनुष्यों को धर्मात्मा बनाइये। बहुधा मनुष्य ऋतु की नई २ वस्तुएँ भी इस कारण से इस तिथि तक नहीं खाते थे क्योंकि वे अपक्व रहती हैं इसलिये आज हवन करके विद्वानों को खिलाकर गन्ना आदि खाते थे वर्त्तमान समय में भी स्त्रियां एक पले के नीचे दिये और ऋतु के पदार्थ रखकर सम्पूर्ण गृह स्त्री पुरुष कहते हैं कि उठो देव बैठो देव पामरिया चटकाओ देव आदि। इस से भी वही अभिप्राय पाया जाता है जो ऊपर वर्णन हुआ। इस से ज्ञात होता है कि मनुष्यमात्र मुख्य अभिप्राय को भूल गये मगर लीक पीटते चले आते हैं॥

हिमेष्टि अर्थात् वसन्त ॥

यह त्योहार मिती माघ शुदि ५ को होता है क्योंकि इस ऋतु में नई २ कोंपलें और हरे २ पत्ते दरख्तों से निकलते हैं, पुष्प भी खिलते हैं और वसन्त ऋतु आरम्भ हो जाता है और फस्लरबी भी फूलने फलने लगती है जिस से प्रजा का पालन होता है इसलिये सब मनुष्य मिल कर यज्ञ कर के परमात्मा से धन्यवादपूर्वक प्रार्थना करते थे, कि यह फस्ल अच्छे प्रकार से निर्विघ्न समाप्त हो, परन्तु अब तो केवल गेहूं जौ की बाल और सरसों राई आम के फूलों को ब्राह्मण लोग लाते हैं और धनिक लोगों को प्रसन्न करने के अर्थ देकर कुछ प्राप्त करते हैं॥

होली ॥

यह त्योहार फसल रबी का उत्सव है। इस वसन्त ऋतु में वह अन्न फल फूल उत्पन्न होते हैं कि जिन से मनुष्यों का जीवन आधार है। क्योंकि होली पर यह सब अन्न आधे पक जाते हैं इसलिये इस त्योहार का नाम होलिका रक्खा है। क्योंकि संस्कृत में "अर्द्धपक्वमन्नम् होलिका" अर्थात् आधे पके अन्न को होलिका कहते हैं। यह बात प्रत्यक्ष प्रकट है कि चनों के बूटा जो बहुधा गांव के लोग भून लेते हैं उन को होले कहते हैं जो कुछ पक्के और कच्चे होते हैं। इन से जाना जाता है कि होलिका अर्थात् आधे

पत्ते नाज का पूजन, इस के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता कि उस को आग में भूने वा पकाया जाय क्योंकि पूजा शब्द का यही अर्थ है कि जो पदार्थ जैसा है उस के साथ उसी प्रकार वर्त्ताव किया जावे। इसलिये होली का जलाना अर्थात् नाज का भूनना उस की पूजा है। परन्तु बड़े शोक की बात है कि जिस को हम देवी मान कर त्योहार मनायें फिर उसी को जलाकर राख की ढेरी बनाकर प्रसन्न हों।

हमारे देश में होली के विषय में यह बात प्रसिद्ध है कि प्रह्लाद परमेश्वर का भक्त था, उस का बाप हिरण्यकशिपु नास्तिक था और प्रह्लाद को ईश्वराराधन करने को मना करता था परन्तु वह इस को नहीं मानता था। इस से उस को नाना भांति से कष्ट देता था। यहां तक कि उस को आग में डाल दिया। यह भी प्रसिद्ध है कि हिरण्यकशिपु की बहन कि जिस को यह आशीर्वाद था कि वह आग में न जलेगी, उस के साथ बिठाई गई परन्तु वह तो जलगई और प्रह्लाद को परमेश्वर की कृपा से आंच भी न आई और इस पर जो हरिभक्त थे उन्हों ने अधिक प्रसन्नता की और कहा कि प्रह्लाद! तू बचगया और वह (होली) जलगई। निदान यह वही होली है इसी कारण इस का वही नाम पड़ गया है॥

प्यारे सुजनो! यह बात महामिथ्या है क्योंकि आग में डालने से कोई बच नहीं सकता चाहो कैसा ही भक्त हो यह कभी हो नहीं सकता कि दो मनुष्य आग में बैठें एक उन में से मरजाय और दूसरे को कुछ आंच न आये यदि परमेश्वर अपने भक्त को भक्ति करने के कारण जलने न दे तो वह न्यायकारी नहीं रहता अर्थात् जो नियम और रीति और सृष्टिक्रम रचा है वह जाता रहे सो यह असम्भव है। इसलिये परमेश्वर के प्रतिकूल कोई कार्य हो नहीं सकता, यदि ऐसा ही मानलिया जावे तो हरिभक्त के बचने की प्रसन्नता में जो आनन्द मनाया जावे उस में शराब भङ्ग पीना, माजून नशे खाना, खाक उड़ाना, कीच फेंकना, नाचना आदि मिथ्या प्रपञ्च क्यों रचे जायं ऐसे समयों पर तो परमेश्वर के गुणानुवाद गाना और हवन आदि यज्ञ करके जगदीश्वर का धन्यवाद गाना चाहिये कि जिस ने ऐसी कृपा की थी। भला बताओ तो सही यह कौन सी नीति और धर्म की बात है कि परमेश्वर तो ऐसी असम्भव कृपा करे और हम तुम उस के पलटे में और अशुभ कार्य करें। इस के उपरान्त इसी त्योहार के साथ एक त्योहार धुरहड़ी का भी है।

यदि होली की व्युत्पत्ति यही मानीजाय तो धुरहडी की वजह क्या है ? इस का सबब यों वर्णन करते हैं कि धुरहडी के दिन जो राख उड़ाई जाती है यह उसी आग की राख का चिह्न है। परन्तु हम नहीं जानते कि इस से क्या उत्तम बात प्राप्त होती है। यदि राख उड़ाते तो राक्षस उड़ाते कि जिन के अफ़सर की बेटी आग में जलगई थी। हरिभक्तों को ख़ाक उड़ाने से क्या प्रयोजन ? इस के सिवाय प्रह्लाद रात्रि के समय आग में डाला गया था चुनाचे होली भी रात को ही फूंकी जाती है इस से प्रकट है कि होली फूंकने की रात्रि से पहिले दिन खुशी करने का समय नहीं है वरन उस दिन रञ्ज करने का समय है क्योंकि उस दिन प्रह्लाद के जलजाने का सन्देह था फिर इस का क्या कारण है कि रञ्ज के दिन खुशी मनावें और उस के अगले दिन ख़ाक उड़ावें। योग्य तो यह था कि धुरहडी के दिन खुशी मनाई जाती और होली के दिन रञ्ज किया जाता, इस को भी जाने दीजिये। अब ज़रा विचार कीजिये कि जिस आग को जलाकर हम और आप पूजते हैं वह सचमुच राक्षसी की चिता है मानो आप होली की पूजा नहीं करते वरन राक्षसी की कबर अर्थात् चिता पूजते हो। इसी प्रकार की और भी हज़ारों शङ्का उत्पन्न होती हैं कि जिन का उत्तर कुछ नहीं। इस से प्रत्यक्ष प्रकट है कि होली और धुरहडी की व्युत्पत्ति महामिथ्या है। और होली का मुख्य वही प्रयोजन है जो हम ने ऊपर वर्णन किया और धुरहडी की व्युत्पत्ति यह है कि यह त्योहार चैत वदि अमावस को होता था जैसा कि वर्त्तमान समय में दक्षिण में अब भी होता है। और उसके अगले दिन चैत्र शुदि प्रतिपदा को महाराजा विक्रमादित्य के गद्दी पर बैठने का दिन है। पस श्रीमहाराज के गद्दी पर विराजमान होने के पीछे होली के बाद यह दूसरा त्योहार बढ़ाया गयाहै ॥

इन सब के सिवाय अबीर गुलाल उड़ाने, रङ्गपाशी करने की जो रीति प्रचलित है यदि पौराणिकों से उस का कारण पूंछा जावे तो वह कुछ नहीं बताते सिवाय इस के कि कृष्णचन्द्र महाराज ने गोपियों के साथ रंग खेला है कि जिस का किसी पुस्तक में प्रमाण नहीं इस से यह कहना मिथ्या जान पड़ता है। बुद्धि से विचार करने से जाना जाता है कि यह केसर कस्तूरी आदि सुगन्धित वस्तुएँ हवन यज्ञ करते समय गुलाब आदि में पीस कर केवड़ा गुलाब की भांति गुलाबपाशी में भर कर जैसा कि विवाह आदि में छिड़के जाते हैं, छिड़के जाते होंगे ॥

ज्योतिष ॥

प्रकट हो कि ज्योतिष शास्त्र का नाम लेकर वर्तमान समय में नाम मात्र के पण्डित लोग जातकर्म नामकरण विवाह और व्यापारादि में ग्रहों की दूकान खोल नाना भांति से धन हरण करते हैं यह केवल हमारे और आप के संस्कृत विद्या के न जानने ही का कारण है प्यारे भाइयो ! ज्योतिष शास्त्र छः शास्त्रों में से एक शास्त्र है उस में गणित मुख्य है शेष फलित अनुमान मात्र है परन्तु आज कल इस फलित के द्वारा लाखों के धन हरण करते चले जाते हैं जिन के महूर्तचिन्तामणि, लघुजातक, नीलकण्ठी, जातकाभरण आदि नवीन ग्रन्थ बनते चले जाते हैं, शोक तो हम को अपने देशीय भाइयों पर है जो यह भी विचार नहीं करते कि भूत, भविष्यत्, वर्तमान, इन तीनों कालों को जानने वाला सिवाय उस परमात्मा सर्वव्यापक के कोई नहीं होसक्ता सो इस समय में भाषा के जानने वाले ब्राह्मण जिन को पत्रापांड़े कहते हैं त्रिकालदर्शी का दम भरते हैं फिर नहीं मालूम कि हमारे पत्रापांडे कैसे जानलेते हैं जैसा कि उत्पन्न होने के समय और अन्य २ समयों पर जन्मपत्री बना कर सुनाते हैं, कि इस लड़के को चौथे आठवें महीने बड़ी कठिनाई से व्यतीत होंगे इस के ग्रह ननसाल के लिये उत्तम हैं परन्तु माता के लिये उत्तम नहीं हैं धन स्थान में इस के ऐसा ग्रह पड़ा है जो बाप के धन को भी सोख लेगा मृत्यु स्थान में सौम्यग्रह बैठा है इसलिये इस के जीवन में खटका है इत्यादि बातें महामिथ्या हैं कि जिन के सुनने से हानि के अतिरिक्त और कुछ भी लाभ नहीं होता हां जन्मपत्री अवश्य बनाना चाहिये कि सरकार दर्बार विवाह आदि में अवश्य तिथि आदि की आवश्यकता पड़ती है इस में वार तिथि मास संवत् बाप दादे का नाम ही लिखना योग्य है ॥

इसीलिये हमारे पुरुषों ने इस को बनवाया था इस के उपरान्त ग्रह इत्यादि लिखे जाते हैं यह सब अनुमान मात्र है जिन से हानि के अतिरिक्त कोई लाभ नहीं जान पड़ता प्यारो! ज्यों २ इन जन्मपत्रियों की दक्षिणा अधिक मिलती गई त्यों २ यह भी अपनी दशा पलटती गईं अर्थात् बहुत बड़ी नाना प्रकार के रङ्गों और चित्रों समेत बननेलगीं जिस में अष्टोत्तरी विंशोत्तरी जन्मकुण्डली चन्द्रकुण्डली आदि नवग्रहों तिथि वार लग्न इत्यादि के भाव लम्बे चौड़े लिख कर यजमान को देते हैं। बीमारी के समय तो यह अच्छे प्रकार हाथ मारते हैं अर्थात् पत्रा और जन्मपत्री को खोल कुम्भ मीन मेष

कह मुंह विगाड़ अपने चेलों से यों कहते हैं कि सूर्य और चन्द्र अरिष्ट पड़े हैं और इस वर्ष जन्म लग्न और वर्ष लग्न भी एक ही है इतनी बात के सुनते ही मुखड़े का प्रकाश फीका हो गया अति गिड़गिड़ाय पण्डित जी के पैरों पर गिर पड़ते हैं और कहते हैं कि हे गुरु जी! अब आप हमारे ऊपर कृपा कीजिये और इस से छूटने का कोई उपाय बतलाइये सच तो यह है कि हमारे सीधे साधे भोले भाई उन पण्डितों को परमेश्वर ही मानते हैं और पण्डित जी भी परमेश्वर का भय न कर परमेश्वरी नियमों को तोड़ यजमान से कहते हैं दशलक्ष दुर्गा जी का पाठ और सूर्य चन्द्र इत्यादि का दान करादो तो यह कष्ट दूर हो जावेगा और यदि बहुत बड़े साहूकार हुए तो उन को गौमठ तुलसी शालिग्राम का विवाह ब्रह्मभोज महामृत्युञ्जय आदि का जप बता कर हज़ारों रुपये चट कर जाते हैं हमारे प्यारे भाई बहनें पण्डित जी के भरोसे पर रहते हैं यहां तक कि जप होते ही होते दम निकल जाता है और मुख्य उपाय अर्थात् चिकित्सा कराने से बेसुध रहते हैं या उधर पूरा ध्यान नहीं देते और जब कोई पण्डित जी से कहता है कि यह जप आप ने कैसा किया तब अति क्रोधित हो कर कहते हैं कि 'कर्म गति कौन जाने' हम क्या परमेश्वर से बड़े हैं जो मृत्यु से बचा सकें उन की मृत्यु ही बदी थी! पस सोचने का स्थान है जब उन के कहने के अनुसार मरने वाले को कोई नहीं बचा सकता फिर ग्रहों के नाम पर दान और उन के जप का क्या लाभ क्योंकि जिस का जीवन होगा वह अवश्य ही बच जावेगा इसलिये बीमारी के समय औषध करना योग्य है और यथायोग्य रीति पर दान करना उत्तम है न कि धोखे की टट्टी में शिकार मारना ॥

इस के उपरान्त जब यह पत्रापांडे आप वा उन के घरों में कोई बीमार होता है तब वह क्यों वैद्य की चिकित्सा कराते हैं यह आप उस समय जप और ग्रहों के दान करा कर क्यों नहीं बीमारी को दूर कर लेते यह प्रत्यक्ष प्रकट है कुछ कहने की बात नहीं क्योंकि हमारे भाई प्रतिदिन देखते हैं कि पण्डित साहिब शीशी में मूत्र लिये वैद्यों और अत्तारों के यहां मारे मारे फिरते हैं कैसे शोक का स्थान है कि यह ज्योतिषी हम को तो जप और ग्रहों के दान में फंसा कर सत्यानाश करा देवें और आप अपनी और अपने बच्चों की औषध करा कर जान बचालेवें, हाय क्या ही अचम्भे की बात है कि अपने घर के तरुण बच्चे को तो मरजानेदें और हमारे घर के लोगों को जप ग्रह दान से बचाने का उपाय रचें! हाय मूर्खता तेरा मुंह काला हो ॥

इसी प्रकार जब कोई मुकद्दमा होता है तो एक पण्डित मुद्दई और दूसरा मुद्दायले को जाकर घेरता है और दो चार बातें इधर उधर से कह सुन कर मुकद्दमें की चर्चा छेड़ते हैं और उपदेश देते हैं कि यदि आप शिव जी इत्यादि किसी देवता का जप करादेवें तो आप की जय हो जायगी और हमारी आप की एक बात है जो कुछ आप देदेंगे वह हम लेलेंगे क्योंकि आप हमारे यजमान हैं इस में बड़ी २ मिहनत करनी पड़ेगी रात्रि में जप जङ्गल में जा करना होगा, जिस की दक्षिणा इतनी है परन्तु आप के मन में आवे सो देदेना क्योंकि आप के घर से हम को प्रतिवर्ष मिलता ही रहता है लेकिन इतने रुपये की सामग्री आप आज ही घर पर भेजदें और दो पण्डितों के भोजनों का आप प्रबन्ध किसी दूकान से करादें। अब विचार करने का स्थान है कि दोनों में एक की जीत तो अवश्य ही होगी पण्डित जी के ठहराये हुए रुपये चित्त हो गये और उस के घर में और मित्रों में ज्योतिषी जी की प्रतिष्ठा सदा के लिये हो गई, भाइयो! मुकद्दमे का मन्त्र कानून सर्कारी सुबूत आदि हैं न कि ग्रहों का जप और दान, यदि आप को ग्रहों पर ही ऐसा विश्वास है तो वकील आदि की सम्मत्यनुसार सुबूत आदि न दीजिये फिर हम देखें कि ज्योतिषी का जप किस प्रकार डिगरी कराता है, और जब आप दोनों बातें करते हो मानों डिगरी हो भी गई तो आप को यह कैसे ज्ञात हुआ कि आप की जीत ग्रहों के दान से हुई या सुबूत आदि से ॥

इस के उपरान्त ज्योतिषियों पर भी डिगरी होती है क्यों जप से डिसमिस नहीं करा देते, हाय अन्धेर! यही हाल प्रश्नों का है क्योंकि हम ने और हमारे मित्रों ने बहुधा निश्चय किया तो प्रश्न का उत्तर कभी ठीक नहीं आया हां वह प्रश्न कुछ २ ठीक होते हैं कि जिन के वृत्तान्त से वह कुछ जानकार होते हैं बहुधा देखा गया है कि जब बाहर के पण्डित किसी नगर में आते हैं तब वहां के पण्डित उन से मिल कर अनेक वृत्तान्त सेठ साहूकारों, नौकर, चाकरों का बता देते हैं वे ही पण्डित नगर में उन की ज्योतिष की प्रशंसा अपने यजमानों से करते हैं और उन को लेजाकर उन का मान कराते हैं और भेंट दिलाते हैं और प्राप्ति में अपनी चौथ ठहरा लेते हैं अनेकों को पण्डित जी जप के बहाने से अपने पास लगा लेते हैं और जयमानों से मुद्रा दिलाते हैं, और हमारे ज्योतिषी पण्डित प्रकट लक्षणों को देख कर जन्मपत्री का फल वर्णन करते हैं, जैसा कि किसी को दुबला पतला देख कर कहेंगे

कि तुम को धातु की कोई बीमारी है दूसरे वह बातें जो प्रत्येक को अच्छी जान पड़ती हैं जैसा कि तुम जिस किसी के साथ भलाई करते हो वह तुम्हारे साथ बुराई करता है तुम्हारी भलाई वृथा जाती, जितना रुपया पैदा करते हो तुम्हारे हाथ में नहीं ठहरता, तुम्हारा मन किसी से लगा है यह किसी उपाय से मिल सक्ता है, इस पर तुर्रा यह वहां नगर के दो चार पण्डित भी होते ही हैं जो ज्योतिषी जी के मुंह से यह निकलते ही रजिस्टरी कर देते हैं चाहो यजमान के जी में कुछ ही हो, यथार्थ में हमारे ज्योतषी जी का कहना बहुत ही ठीक है क्योंकि वह समय की दशा देख कर धातु की बीमारी बतलाते हैं जो प्रत्यक्ष प्रकट है कि वर्तमान में न्यून अवस्था का विवाह प्रचलित है तिस पर गुदाभञ्जन, वेश्यागमन आदि की अधिक चर्चा है, इस कारण भारत में बहुत ही न्यून मनुष्य निकलेंगे जिन को धातुक्षीण की बीमारी न हो ॥

दूसरे हमारे देश में अविद्या के कारण लालच में आ कर बहुधा मित्र बन जाते हैं और प्रयोजन निकलने पर बात भी नहीं करते फिर उपकार मानना किस को कहते हैं क्या पण्डित साहिब प्रतिदिन अपने प्रयोजन के लिये ऐसी बातें नहीं मिलाते ? तीसरे हमारे देश में रुपया उत्पन्न करने का उपाय केवल नौकरी रह गई है तिस पर विवाह, मरण, आदि में मिथ्या व्यय, इस के उपरान्त नशा पीना, मांस खाना, लौंडेबाज़ी, रण्डीबाज़ी आदि नाना लीलाओं में धन व्यय होता है जिस को पण्डित साहिब आंखों से देखते हैं, यथार्थ में ज्योतिष इसी का नाम है ?

वर्तमान समय में जैसी इश्क़ हुसन की चर्चा है, ऐसे बहुत थोड़े मनुष्य हैं जो इस बला से बचे हों वरन कोई किसी स्त्री पर मरता है कोई लौंडे पर, यह बात बताना भी तो ज्योतिषी जी का ही काम है उपाय ग्रहों के जप और दान के पण्डित जी जानते ही होंगे ॥

सच पूछो तो हमारे भाइयों को ग्रहों में इन पण्डितों ने ऐसा फांसा है कि विना सायत पूछे आना जाना भी नहीं होता चाहे कैसा ही काम क्यों न बिगड़े पर विना मुहूर्त पूछे जाना कैसा !

हमारे पण्डित जी कहते हैं कि नीचे लिखे के प्रतिकूल जो कहीं को यात्रा करेगा वह अवश्य ही आपत्ति में पड़ेगा जैसा कि—

सोम शनिश्चर पूर्व काला, रवि शुकुर पश्चिममें वासा ।
मङ्गल बुध उत्तर में रहहीं, रहे बृहस्पति दक्षिण माहीं ॥

इसी भांति और २ वार्तों का भी विचार सुनाते हैं प्यारे भाइयो ! हज़ारों मनुष्य शनैश्चर और सोमवार को रेल की गाड़ी में पूर्व को जाते हैं इसी भांति शुक्र और इतवार को पश्चिम जाते हैं जिन पर दिशाशूल का कुछ भी प्रभाव नहीं होता, इस के उपरान्त ईसाई और मुसलमान तो इन ग्रहों को मानते ही नहीं ये ग्रह उन पर अपना कुछ प्रभाव क्यों नहीं करते यदि कहो कि वह म्लेच्छ हैं इसलिये उन पर कुछ प्रभाव नहीं होता तो कैसे आश्चर्य की बात है कि उत्तमों को दण्ड मिले और दुष्ट चैन करें क्या इसी का नाम न्याय है ? देखिये जब कोई धूप में खड़ा होता है तो सब को गर्मी एक सी जान पड़ती है यही दशा सर्दी की है, क्या यह ग्रह, आर्य जो अपने को हिन्दू बोलते हैं उन्हें दण्ड देते हैं ? यह सब मिथ्या है, सच पूछो तो इन्हीं ग्रहों के पूजने वालों की कृपा से यहां के राज्य के और ही मनुष्य राजा हो गये, कौन नहीं जानता कि जब महमूद ग़ज़नवी ने मन्दिर सोमनाथ पर चढ़ाई की थी उस समय इन ग्रहों की दूकान राजा के समीप खुली हुई थी और वह पण्डित लोग कहते थे कि लड़ने की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि आप के फ़लां २ ग्रह बड़े अच्छे पड़े हैं और हम सब जप करते हैं तीसरे दिन शत्रु अपने आप आ के आप के चरणों में गिरेगा वा फिर कर चला जायगा, अन्त को ऐसा हुआ कि यह सब पण्डित अपने २ ग्रहों की शूर वीरता सुनाते ही रहे कि वह मन्दिर में घुस गया और मूर्त्ति को तोड़ दस करोड़ का माल लेकर चला गया, इस के उपरान्त जब ये लोग अपनी पुत्रियों का विवाह करते हैं तो सब प्रकार से विधि मिला लेते हैं परन्तु फिर भी इन्हीं लोगों में विधवा अधिक देखी जाती हैं यदि यह परापरीत ठीक होती तो पण्डितों अर्थात् ज्योतिषियों की पुत्रियां रांड न होतीं, इस पर भी तो आप को ज्ञात नहीं होता कि यह सब मिथ्या है इन का मुख्य प्रयोजन टका ही है बहुधा जन यह भी कहते हैं कि तुम ज्योतिषियों के फलित को ग़लत बताते हो देखो वह कितने दिन पहिले ग्रहण बता देते हैं कि फ़लां तिथि को ग्रहण होगा और वैसा ही होता है, प्यारे सुजनो ! हम प्रथम ही कह चुके हैं कि ज्योतिष में गणित बहुत ठीक है परन्तु फलित का फल

प्रत्यक्ष ठीक नहीं मिलता और ग्रहण का बताना हिसाब का काम है देखो *गोलप्रकाश में दो सौ वर्ष तक के ग्रहण निकाल कर रख दिये हैं, हां यदि कोई ज्योतिषी यह कहे कि फ़लां ग्रहण के होने का यह फल होगा तो मैं कह सकता हूं कि फल अवश्यमेव ग़लत पड़ता है और पड़ेगा ॥

इन्हीं कारणों से हमारे पुराने पुरुषे फलादेश को मानते न थे, इस में किसी को सन्देह नहीं कि प्राचीन समय में विद्या की बड़ी चर्चा थी और प्रत्येक विद्या के बड़े २ महात्मा, ऋषि, मुनि, विद्वान् विद्यमान थे परन्तु उस समय में किसी ने ग्रहों का जप दान करके किसी के दिल को नहीं फेर दिया वा आपस में क्यों नहीं मिला दिया वा एक को क्यों नहीं मारडाला वा अपने आधीन करलिया । यदि ऐसा होता तो अयोध्यापुरी के सुजन अवश्य कैकेयी के मन को फिरवा देते तो क्यों वनवास होता । इस के उपरान्त सीता हरजाने पर भी रामचद्र ने बहुत प्रकार के विचारांश किये और हनुमान् आदि को सुध लेने के लिये भेजा क्यों नहीं एकाध रुपया देकर ज्योतिषी ही से पूछ लिया होता कि जिस से उन को ज्ञात होजाता कि रावण हर लेगया है । सुग्रीव ने अपने भाई बाली को जप कराकर क्यों नहीं प्रसन्न करलिया इसी प्रकार विभीषण को रावण ने क्यों नहीं मिलालिया कि जिस ने सम्पूर्ण वंश का खोज मार दिया । लक्ष्मण जी के शक्ति लगने पर श्रीमहाराज रामचन्द्र जी ने संजीवनी नाम बूटी को क्यों मंगवाया क्यों नहीं ग्रहों का जप करा-कर आराम करालिला ॥

इस के उपरान्त युधिष्ठिर और दुर्योधन कि जिन की लड़ाई होने से भा-रत का भारत होगया क्यों नहीं ग्रहों के जप से सम्मति करादी ? इस के अतिरिक्त श्रीकृष्णजी महाराज ने कंस को क्यों मारा क्या उस समय वर्त्तमान समय के ज्योतिषी उपस्थित न थे जो आप से काम करदेते ?

वर्त्तमान समय में जब कोई कहीं को चला जाता है तो हमारे ज्योतिषी जी बताते हैं कि वह पूर्व को गया है और अभी इतना अन्तर है यदि यह वार्त्ता सच होती तो क्यों दमयन्ती नल के मिलने को नाना प्रकार के उपाय करती झट ज्योतिषियों से पूछ कर ढूंढ लेती इत्यादि अनेक प्रकार की गप शप ज्ञात होती है ॥

---

* एक पुस्तक जिस को एक अङ्गरेज ने लिखा है ॥

रसायन मन्त्र और तन्त्र ॥

इस के उपरान्त रसायनियों के धोके में न आओ जो तुम्हारा माल मार अपनी रसायन बना लेते हैं उन को आती तो पहिले अपने भाई, बन्धु, लड़के आदि को करोड़ों रुपये बनाकर साहूकार करदेते, सो तो कुछ न हुआ परन ऐसा गुण, और फिरें मारे २। यह सब मिथ्या है, वह भी एक प्रकार के ठग हैं सच पूछो तो वह अपनी रसायन बना लेजाते हैं और तुम लालच में जो कुछ होता है देदेते हो, इसी धन को हर देश में जाकर दो तीन रुपये रोज़ खर्च करते हैं, रुपये को कुछ नहीं गिनते, हमारे भाई लोग उन को रसायनी जान उन की सेवा करते हैं किसी २ को वह हाथ की चालाकी से बना कर दिखला देते हैं फिर उन ही के हाथ से बिकवाते हैं, वह बिचारे सीधे साधे लोभी, अक्ल के दुश्मन झट स्त्री तक का माल उतार कर देदेते हैं, फिर बाबा जी के पते तक नहीं मिलते सिर पीटते रह जाते हैं, भला अब बताओ किस की रसायन बनी ?

इस के उपरान्त भूत, शाकिनी, डाकिनी आदि जो भ्रमजाल हैं और नाना भांति के रोगों में आप ओषधि नहीं कराते और उन धूर्त्त, महामूर्ख, कुकर्मी, भंगी, चमार आदि के भरोसे पर जो अनेक प्रकार से छल, कपट, डोरा धागा बांध, धन हरण करते हैं, उन में मिथ्या धन व्यय न करो, और इन सब बातों के सत्य२ जानने के अर्थ सत्य ग्रन्थों को देखो तो प्रत्यक्ष प्रकट हो जायगा कि यह सब ठगई के जाल हैं, क्योंकि जो उत्पन्न होकर वर्त्तमान समय में न रहे सो भूतस्थ होने से भूत कहाता है जैसा कि सृष्टि की आदि से लेकर आज तक लाखों करोड़ों मर गये और फिर कर्मानुसार जन्म लेते गये वह सब उन नामों से न रहने के कारण सब भूत हैं इसी भांति मृतक शरीर को प्रेत और दाह करने वाले को प्रेतहार कहते हैं और जैसा इस समय में गोलमाल हो रहा है यह सब महामिथ्या है, इस कारण इन मिथ्या विचारों को छोड़ कर सन्तानों को भी सत्योपदेश करते रहो, इस के अतिरिक्त मन्त्र यन्त्र इत्यादि प्रकट फैले हुए हैं कि जिस के कारण यह देश और भी अधोगति को पहुंच रहा है—(मन्त्र) शब्द का अर्थ गुप्त भाषण का है परन्तु वर्त्तमान काल में उस से यह प्रयोजन लेते हैं कि कोई मनुष्य मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण के अर्थ जप करे इसी भांति (यन्त्र) शब्द के अर्थ युक्त क्रियाओं के करने के अर्थ कोई कोष्ठ बना कर उन में कुछ संख्या वा शब्द वा वाक्य

लिखो इसी प्रकार (तन्त्र) शब्द के अर्थ यह लेते हैं कि ओषध्यादि के मेल से कुछ आश्चर्य जान कर क्रिया दिखलाना ॥

जिधर हम देखते हैं उधर ही पण्डित ब्रह्मचारी जती (यति) क़ाज़ी, पीरज़ादे इत्यादि सभी मन्त्रादिक के सहारे से शिकार मारते दृष्टि आते हैं, विद्वान् से तो यह मनुष्य दृष्टि तक नहीं मिलाते, परन्तु मूर्ख पुरुषों की सभा वा इस देश की अनपढ़ी स्त्रियों में पांव फैलाते हैं, जब वहां से कुछ मिल जाता तब उस का पीछा छोड़ते हैं और जो स्त्री पुरुष उन को कुछ नहीं देते तो यह कह के कि देखना हम तो जाते हैं परन्तु भगवती, हनूमान्, भैरव, वैताल, नरसिंह, पीर ने जब कुछ न किया तो पछताओगी और फिर पैरों पड़ोगो, इसी प्रकार की बहुत बातें बनाते हैं कि जिन को वह भोले भाले मनुष्य सुन कर फिर कुछ दे दिला कर राज़ी करते हैं ॥

मन्त्र, संस्कृत, अरबी, फ़ारसी, उर्दू, व्रजभाषा, पंजाबी, महाराष्ट्री इत्यादि भाषाओं में हैं और प्रतिदिन नवीन बनते जाते हैं। इस देश में यह बात प्रसिद्ध है कि कामरू देश में 'कामाक्षी' देवी और 'इस्माईल' योगी सिद्ध हैं, योगी के प्रताप से मन्त्र तत्काल सिद्ध होता है। और मूर्ख जन ऐसा निश्चय रखते हैं कि अन्य देश का मनुष्य कामरू देश में जाय तो वहां की स्त्रियां उसको मन्त्रों से बांध सदैव रात्रि को पुरुष और दिन में हल आदि में जोतने के लिये बैल बनालिया करती हैं। लाखों मन्त्रों में—'कामरू देश कामाक्षी देवी जहां अस्मायल, (इस्माईल) योगी' यही पाया जाता है ! बड़े आश्चर्य की बात है कि कामरू प्रदेश में सहस्रों मनुष्य आते जाते हैं परन्तु तब भी हमारे भोले भाई वैसा ही निश्चय करे बैठे हैं॥

इन मन्त्र बनाने वालों और जप करने वालों ने एक बड़ी आड़ यह भी बना रक्खी है कि इन के देवता ३३ करोड़ हैं, जब एक के नाम से काम नहीं होता तो दूसरे के आश्रय फिर तीसरे चौथे आदि के, मुख्य यह है कि सारी उमर जप करते २ मर जायं पर इन की कभी हार नहीं होती हैं, धन्य है इन पुरुषों को !

वेदों में तेंतीस देवता व्यवहार प्रयोजन के अर्थ माने हैं जिन में से उपासना के अर्थ एक सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ही है और वह तेंतीस देव यह हैं—आठ वसु, ११ रुद्र, बारह आदित्य, एक इन्द्र, एक प्रजापति, इन में से आठ वसु ये हैं—अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा और

नक्षत्र इन का नाम वसु इसलिये है कि सब पदार्थ इन्हीं से वसते हैं और यहीं सब के निवास करने के स्थान हैं । ११ रुद्र यह कहाते हैं—जो शरीर में दश प्राण हैं अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय, और ग्यारहवां जीवात्मा क्योंकि मरण होने के समय जब यह शरीर से निकलते हैं तब उस के सम्बन्धी लोग रोते हैं और वे निकलते हुए उन को रुलाते हैं इस से इन का नाम रुद्र है । इसी प्रकार आदित्य बारह महीनों को कहते हैं, क्योंकि वे सब जगत् के पदार्थों का आदान अर्थात् सब की आयु को ग्रहण करते चले आते हैं इसी से इन का नाम आदित्य है । ऐसे ही इन्द्र नाम विजली का है क्योंकि वह उत्तम ऐश्वर्य की विद्या का मुख्य है और यज्ञ को प्रजापति इसलिये कहते हैं कि उस से वायु वृष्टि जल की शुद्धि द्वारा प्रजापालन होता है तथा पशुओं की यज्ञ संज्ञा होने का कारण यह है कि उन से भी प्रजा का पालन होता है, यह सब मिला कर अपने २ दिव्य गुणों से तेंतीस देव कहाते हैं ॥

प्यारे सुजनो ! यह सब व्यवहार के अर्थ हैं और उपासना के अर्थ केवल एक परमेश्वर ही हैं जैसा कि शतपथ ब्राह्मण में लखा है—

योऽन्यां देवतामुपास्ते पशुरेवꣳस देवानाम् ।

अर्थात् जो मनुष्य ईश्वर को छोड़ कर अन्य की उपासना करता है वह पशु के समान है ॥

परन्तु अब तो लोगों की तेंतीसकोटि से भी तृप्ति न हुई तब मरे हुए गोर निवासी मुसलमान पीर, औलिया, मियां आदि को भी मानने लगे, हाय लज्जा भी नहीं आई ! इसी कारण इन के पूजने वालों की कुगति होगई कि जिस से भारत के ऐश्वर्य को भी खोदिया ॥

इसलिये हे गृहस्थो ! इन मिथ्या बातों में न फंसो और कृपाकर वेदादि सत्य शास्त्र पढ़ो व सुनो और पूर्ण विद्वान् और सत्य वक्ताओं का सत्सङ्ग करो तो यह मिथ्या पोल खुलजावे ॥

पाठकगणों के दिखलाने के अर्थ कुछ उदाहरण लिखता हूं—

[कृत्रिम सोना चांदी बनाने का मन्त्र]

ओं नमो हरिहराय रसायन सिद्धिं कुरु २ स्वाहा ।

इस मन्त्र को २१ दिन तक १०८ वार जपने से सोना चांदी बनजाता है।

[चौकी मुट्ठी पीर की]

बिस्मिल्ला अर्रहमान अर्रहिम लोहचक्र की बावडी
गल मोतियन का हार लङ्का सी कोट समुद्र सी खाई
जहां फिरै मुहम्मदा बीर की दुहाई कौन बीर आगे
चले सुलेमान वीर चले दुर्रानी बीर चले नादरशाह
बीर चले मुट्ठी चले नहीं चले तो हज़रत सुलेमान
की सात दुहाई शब्द सांचा चलो मन्त्रों ईश्वर वांचा

इस मन्त्र को ४० दिन तक १००० मन्त्र जपे तो बीर हाज़िर होकर काम करे ॥

[मार्ग में बाघ (सिंह) के प्रबन्ध का मन्त्र]

वघ बांधु वघायन बांधु बघ के सातों बच्चे बांधु राह बाट
मैदान बांधु दुहाई वासुदेव की दुहाई लोना चमारी की॥

इस को सात वार सात मङ्गल को जपे तो सिंह पर फूंक दो वा सोते समय अपने ऊपर फूंक लो तो सिंह आधीन होजावेगा ॥

[बवासीर दूर करने का मन्त्र]

सुम्मुन वुकमुन उमयुन फहुम लापर जठनी ॥

[यन्त्र]

५३	५९	२	७
६	३	५६	५३
५८	५३	८	१
४	५	५५	५७

इस यन्त्र के लिये लिखा है कि पीपल के पात में घर के पीछे लिखे तो दिन से रात दिखलाई देनेलगे ॥

तं	तं	तं	तं
पं	पं	पं	पं
दं	दं	दं	दं
लं	लं	लं	लं

इस के विषय में लिखा है कि सिरस के वृक्ष के नीचे बैठ के लिखे तो भूत प्रेत देवी यक्ष आदि सब प्रसन्न हों ॥

इसी प्रकार अनेक मन्त्र तन्त्र गपोल और मिथ्या फैल रहे हैं ॥ मैं पहिले लिखचुका हूं कि आधुनिक लोग औषधादिक के मेल से आश्चर्य जनक क्रिया कर दिखलाने को तन्त्र कहते हैं। अब मैं इस विषय में लिखता हूं—

हम स्वीकार करते हैं कि औषधादि ईश्वरकृत अनेक पदार्थ हैं उन को परस्पर मिलाने से बहुत आश्चर्यजनक क्रिया होसकती है । हम नित्य देखते हैं कि रोगों के निवारणार्थ सब लोग नाना प्रकार की ओषधियों का सेवन करते हैं और उन के यथायोग्य सेवन से रोगों की निवृत्ति होती है । रेल तारादिक इन्हीं पदार्थों के सेवन से चलते हैं परन्तु इन को सदैव देखते हैं इस कारण से आश्चर्य नहीं होता । हां जो लोग प्रथम देखते हैं उन को आश्चर्य जानते हैं ॥

इस वर्णन से यह सिद्ध हुआ कि पदार्थों के मिलाने से उन के गुणानुसार चमत्कारक बातें होसकती हैं परन्तु वे भी ऐसी होती हैं कि जिन को बुद्धिमान् लोग सम्भव जानते हैं । कुछ ऐसा ही नहीं है कि पदार्थों के नाम लिख कर उन के मेलनादि क्रियाओं से जो अयंड बयंड फल लिख दिये सो होजायं जैसा कि 'तन्त्रमहार्णव, नामक तन्त्र ग्रन्थ के वशीकरण प्रकरण में लिखा है-

तुलसीरसंगृहीत्वा धात्रीरससमन्वितं ।
तुलसीबीजसंयुक्तं हरतालमनःशिलम् ॥
देहान्ते तिलकंकृत्वा यमदूतो वशीभवेत् ।
पापी चैव महापापी वैकुण्ठं गच्छते नरः ॥

अर्थ-तुलसी और आंवले का रस बरा बर लेकर उस में तुलसी के बीज हरताल और मैनसिल मिलाकर मरण समय में उसके तिलक करने से यमके दूत मृतक के वश में होजाते हैं इस कारण से पापी भी वैकुण्ठ को चला जाता है ॥

प्यारे सुजनो! इन लेखों को ज्ञानदृष्टि से विचारो तो स्पष्ट प्रकट होगा कि इन मन्त्र तन्त्र यन्त्र आदि मिथ्या बातों ने ईश्वर की आज्ञा को भी तोड कर अपना दखल कर लिया भला यह आप की समझ में आता है कि परमेश्वर की आज्ञा को कोई भङ्ग करसके ? यह सब इनके मिथ्याप्रपञ्च हैं सच पूछो तो वर्तमान समय में नाना प्रकार के ढंग ठगने के हैं । जैसा कि कोई २ इन मन्त्र यन्त्रादि के तावीज़ बनाकर बाज़ारों में पैसे दो २ पैसे में बेंचते हैं और भूत पलीत बीमारी आदि खोते फिरते हैं । सो हे भारतवासियो ! तुम कदापि इन मिथ्या प्रपञ्चों में न फंसो, सदा वेदादि में लिखे सत्य गुणों का अवलोकन करो तो आप को इन सब का भेद यथावत् प्रकाश होजावेगा ॥

देखिये बीमारियों के अर्थ परमेश्वर ने वैद्यकविद्या को बनाया है यदि मारण मोहन वशीकरण उच्चाटनादि मन्त्र वेद में पाये जायं तो सच होसकते हैं सो इन का कहीं पता तक भी नहीं। इस के उपरान्त कुछ बुद्धि से विचारना भी योग्य है कि ऐसे मन्त्र वेदोक्त हैं या नहीं। यदि ऐसे मन्त्र वेद में हों कि जिन के पढ़ने आदि से मनुष्य मरजावें तो बताइये यह पाप परमेश्वर को होगा वा मारने वाले को ? तो यही उत्तर होगा कि परमेश्वर को, तो इन मन्त्रादिक के मानने वालों ने परमेश्वर को भी पापी बना दिया ! सो वह पापी नहीं होसकता। यथार्थ में पापी यही हैं क्योंकि कोई मन्त्र ऐसे नहीं कि जिन से मनुष्य मरजावें हां कई प्रकार की औषधि ऐसी हैं कि जिन के खिलाने से मनुष्य मरजाते हैं सो यह पापी उन के नौकर आदि को लालच देकर खाने पीने आदि में ज़हर दिलवा देते हैं कि जिन से मनुष्य मरजाते हैं फिर अपनी सिद्धि प्रकट करते हैं यदि उन को ऐसे ही मन्त्र आते हैं तो क्यों नहीं महमूद ग़ज़नवी, नादिरशाह, तैमूरलङ्ग आदि को मारडाला कि जिन्होंने भारत के मनुष्यों को क़तल कराया। यदि ऐसा ही होता तो अंगरेज़ी राज्य न होता। यदि आप को इतने पर भी विश्वास न हो तो आप एक शीशी में कि जिस में वायु आती हो मक्खी बंद करके अपने पास रख लीजिये और उन से कहिये कि इस को मन्त्रों से मारिये यदि वह मरजावे तो सच, नहीं तो मिथ्या है ॥

प्यारे भाई बहनो ! यदि इन को मारण आता होता तो स्वामीदयानन्दसरस्वती जी को कि जिन्हों ने भारत के मूर्ख पण्डित और वर्तमान धर्म्म की कलइ खोलदी क्यों नहीं मार डाला, इस के अतिरिक्त समस्त आर्य्यों पर जो सम्पूर्ण देश में कोलाहल मचा रहे हैं जिस से नाममात्र के पण्डितों की प्रतिष्ठा भङ्ग हो रही है क्यों मारण मन्त्र नहीं चलाते वा मोहन मन्त्र से मोहित और वशीकरण से वश में नहीं करलेते जो इन मिथ्या मन्त्रों की पोल खोल मन्त्रादिक के करने वालों की आमदनी का नाश मार रहे हैं—सो कुछ भी न हुआ फिर मैं नहीं जानता कि इन गपोड़ों में पड़ कर क्यों अपने देश का सत्यानाश मारते चले जाते हो इसलिये अब विचार कर प्रत्येक कार्य्य का करना अभीष्ट है। प्यारे सुजनो ! इन्हीं कार्य्यों के करने से हमारे देश का नाम आर्य्यवर्त्त से हिन्दुस्तान रख दिया आप विचार कीजिये ॥

—*—

आर्य्यशब्द ॥

देखिये (ऋ गतौ) धातु से ऋहलोर्ण्यत् इस सूत्र द्वारा (ण्यत्) प्रत्यय लगाने से आर्य्य शब्द बन जाता है इस के उपरान्त अमरकोश प्रथम काण्ड भूमिवर्गस्थ अष्टम पद्य में लिखा है (आर्य्यावर्त्तः पुण्यभूमिर्मध्यं विन्ध्यहिमानयोः) अर्थात् उस पवित्र भूमि को आर्य्यावर्त्त कहते हैं जो हिमालय और विन्ध्याचल के बीच में है ऐसा ही मनुस्मृति अ० २ श्लोक २२ में भी लिखा है और जैनकृत अमरकोश द्वितीय काण्ड के भीतर (ब्रह्मवर्गस्थ तृतीय श्लोक को देखिये–महाकुल, कुलीन, आर्य्य, सभ्य, सज्जन, साधु ये छः नाम श्रेष्ठ पुरुष के हैं इस के उपरान्त वसिष्ठस्मृति में वसिष्ठ जी महाराज ने लिखा है जो कर्त्तव्य कर्मों का सेवन करता है और अकर्त्तव्य कर्मों का परित्याग करता है वह आर्य्य कहलाता है जैसा कि–

कर्त्तव्यमाचरन् काममकर्त्तव्यमनाचरन्।ति-
ष्ठति प्राकृताचारो यः स आर्य्य इति स्मृतः ॥

महाभारत उद्योग पर्व अ० ३१ श्लोक ११३ व ११४ में लिखा है कि जो शान्तचित्त रहते हैं वैर को नहीं बढ़ाते घमण्ड नहीं करते उद्योग से कार्य्यों को करते हैं जो गिरी दशा में भी चोरी आदि अकार्य्य नहीं करते और न अपने सुख में हर्ष और दूसरे के दुःख में आनन्दित नहीं होते वही आर्य्य हैं जैसा कि–

न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं न दर्पमारोहतिनास्तमेति ।
न दुर्गतोऽस्मीतिकरोत्यकार्यंतमार्यशीलं परमाहुरार्याः॥
न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं नान्यस्य दुःखे भवति प्रहृष्टः ।
दत्वा न पश्चात् कुरुतेऽनुतापं स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः॥

ऐसा ही विदुर जी ने विदुरनीति में कहा है–इस के उपरान्त मनु जी ने अ० ४ श्लोक १७५ में अध्यापकों को उपदेश किया है कि आर्य्य पुरुषों की भांति सदाचार कर उसी प्रकार अपने शिष्यों को सिखलाओ–

सत्यधर्म्मार्य्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा ।
शिष्यांश्च शिष्याद्धर्म्मेण वाग्बाहूदरसंयतः॥

इस के उपरान्त भीष्मपर्व अ० २५ और गीता अ० २ श्लोक २ में श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुन से कहा है आर्य्य पुरुषों को मोहवश हो कर अनार्य की भांति कर्म न करने चाहियें—

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थित-
म् । अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥

हितोपदेश के संधिप्रकरण में राजा को विजय पाने के अर्थ आर्य्य और अनार्य से संधि कर लेनी चाहिये—

सत्यार्योऽधार्मिकोऽनार्यो० ॥

वेदों में भी मनुष्यमात्र की गणना आर्य्य और दास अर्थात् अनार्य नामों से की है । देखो ऋ० मं० १ सू० ५१ मं० ८ में और अथर्व० कां० ५ अ० २ व० ११ में लिखा है—

विजानीह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते । रन्धया शासदव्रतान् ॥
सत्यमहं गम्भीरः काव्येन सत्यजातेनरीष्म जातवेदाः । न मे
दासो न मे आर्यो महित्वा व्रतं मीमाय यदहं धरिष्ये ॥३॥

इस के अतिरिक्त वाल्मीकीयरामायण अयोध्याकाण्ड सर्ग ३ श्लोक २५ सर्ग ११ श्लो० ८४ स० ७५ श्लो० २० स० ९२ श्लो० २६ स० ९९ श्लो० ३० । आरण्य-काण्ड सर्ग ४३ श्लो० ४ । किष्किन्धाकाण्ड स० २९ श्लो० २८ । सुन्दरकाण्ड स० २२ श्लो० १८ स० ३५ श्लो० ४४ और लङ्काकाण्ड सर्ग ७४ श्लो० १५ में श्रीराम, सीता, कौशल्या, वालि और विभीषण आदि के लिये आर्य्य और रावण के लिये अनार्य शब्द आया है । इसी भांति महाभारत आदिपर्व अ० १५४ व १५८ सभापर्व अ० ६४, ७३ । वनपर्व अ० १७९ अ० २९७ । शान्तिपर्व अ० ६३, ६४, ६५ १४०, २९२ इत्यादि स्थानों पर आर्य्य शब्द का प्रयोग किया गया है । विष्णु-पुराण तृतीय अं० अध्याय ७ में यमराज ने विष्णुभक्तों के लक्षण वर्णन किये वहां पर लिखा है कि जो मनुष्य अशुभमति असत्कार्य्यों और अनार्यों के साथ निरन्तर लगा रहता है वह विष्णु का भक्त नहीं है अर्थात् विष्णुभक्त वहीं हैं जो प्रतिदिन आर्य्य पुरुषों का सत्सङ्ग कर शुभ कार्य्यों को करते हैं इस के अनन्तर नया गुटका जो मिडलक्लास में पढ़ाया जाता है जिस में (मुद्रा राक्षस) नाम नाटक जिस को कवि विशाखदत्त जो महाराजा पृथ्व का बेटा

ना बनाया है जिस का भाषा बाबू हरिश्चन्द्र जी ने बनाया है उस के सफ़े ६९, ७८, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ८४, ८६, ९०, ९१ में आर्य्य शब्द आया है और पण्डितगण भी प्रतिदिन संकल्प के समय इस देश का नाम आर्य्यावर्त्त पढ़कर अपने यजमानों को सुनाते हैं—

ओंविष्णुर्विष्णुर्विष्णुः अद्येत्यादि परमात्मने श्रीपुराणपुरुषोत्तमाय द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलौयुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भारतखण्डे आर्य्यावर्त्ते पुण्यक्षेत्रे वर्त्तमाननामसंवत्सरः प्रवर्त्तते तत्र अमुकायने अमुकऋतौ मासानामुमासोत्तमे मासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरान्वितायाम् अमुकगोत्रोत्पन्नः ? अमुकनामधर्मार्थमहं करिष्ये ॥

इसी कारण इस देश की भाषा का नाम आर्य्यभाषा प्रसिद्ध है और बहुधा पुस्तकरचना करने वाले धर्मसमाजी पण्डित जन इस शब्द का प्रयोग करते हैं और महात्मा हंसस्वरूप जी वर्त्तमान समय में धर्मसभा के बड़े उपदेशक हैं उन्हों ने त्रिकुटीविलास नाम पुस्तक के सफ़े १४, १५ में इस देशवासियों को आर्य्य नाम से सूचित किया है ॥

फिर हम नहीं जानते कि क्यों कर हिन्दू कहलाते चले जाते हैं जिस के अर्थ गुलाम, काफ़िर, चोर, लुटेरे के हैं जो (ग़यासुल्लुग़ात) के सफ़े ५०० में लिखे हैं हा शोक! हा शोक!! हा शोक!!! कि क्या समय आया जो जान बूझ कर भी हम कुए में गिरते चले जाते हैं और प्रसन्नता प्रकट करते हैं। प्यारे भाईयो! यह शब्द प्राचीन नहीं है यही कारण है कि हमारे किसी प्राचीन पुस्तक में नहीं लिखा हां मुसल्मानों ने इस देश को विजय किया तो पक्षपात के कारण इस देश का नाम हिन्दुस्तान रख दिया जो हिन्दु+स्तान से बना है जिस के अर्थ काफ़िर आदि की जगह के हैं क्योंकि फ़ार्सी में (स्तान) कलमाज़र्फ़ का अर्थात् स्थान का है जैसा गुलिस्तां, बोस्तां, अफ़ग़ानिस्तान। इसलिये प्यारे सुजनो! एक सम्मत हो शीघ्र इस अपवित्र नाम को त्याग दो और वेदानुकूल प्राचीन पुरुषों की भांति आर्य्य शब्द का प्रचार करो—अब विद्या का प्रकाश हो रहा है जिस से (हिन्दू) शब्द के अर्थ भी जानते हैं और फिर उसी क़ौम में जिस से हम प्रत्येक प्रकार से प्रधानता रखते हैं उन्हीं में बैठे हुए हिन्दू कहलाने पर प्रसन्न होते रहें? प्यारे! विचारो और इस कलंक को जहां तक हो सके शीघ्र मेट आर्य्य शब्द और इस की सनातन परिपाटी का प्रचार करो—जिस से तुम्हारा यश हो और सभ्यमण्डलियों में तुम्हारी सभ्यता का परचय हो ॥

व्रत और तपस्या ॥

मान्यवरो ! जब से इस देश से वेदरूप सूर्य्य लुप गया और ऋषि मुनि आदि ने धर्म्म की ध्वनि से अज्ञान में पड़े हुए मनुष्यों को चिताना त्याग दिया अधर्मरूप अन्धकार ने संसार को आघेरा, पुराण रूप नाना सितारे अपने धुंधले प्रकाश से चमकने लगे, काम लोभ अज्ञान रूप चोरों ने वरसाती मेंड़कों की भांति समय पाकर अपनी कमर बांधी और अधर्म की घोर निद्रा में सोते हुए मनुष्यों के गृह में घुस कर उन की धर्मरूप माया को यहां तक लूटा कि उन के पास कुछ भी न रहा और जैसे धनादि के जाने से मनुष्य निर्बुद्धि हो जाता है जिस से वह अंटसंट बकता है मार्ग अमार्ग को नहीं पहचानता इसी प्रकार धर्मरूप माया के जाने से मनुष्यमात्र अपने पुरुषों के उत्तम नियमों को यहां तक भूल गये कि उन के मुख्य अभिप्राय को भी नहीं जानते। एक परम देव परमात्मा के स्थान पर तैंतीस करोड़ देवता मानने लगे जो कि भारतवासियों की मनुष्यगणना से भी अधिक हैं नाना मत मतान्तर रूप मार्गों को इस घोर अन्धकार में उत्तम समझ स्वर्गरूप फल पाने की आशा से चलने लगे। व्रत के अभिप्राय ही को भूल गये इतने व्रत बढ़ा दिये कि साल के दिनों से भी दो चन्द होगये देखिये आदित्य पुराण के अनुसार रविवार को, शिवपुरण के अनुसार सोमवार और तेरस, चन्द्रखण्ड के अनुसार मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, और शनैश्चर को व्रत रहना आवश्यक है और यही सप्तांह में सात दिन होते हैं अर्थात् सम्पूर्ण साल व्रती रहने की यही आज्ञा दे रहे हैं। और भी सुनिये कि विष्णु की एकादशी, वामन की द्वादशी, नृसिंह की अनन्त चौदस, चन्द्रमा की पूर्णमासी, दिक्पाल की दशमी, दुर्गा की नवमी, वसुओं की अष्टमी, मुनियों की सप्तमी, कार्तिक स्वामी की छट, नाग की पञ्चमी, गणेश की चौथ, गौरी की तीज, अश्विनीकुमार की दोज, आद्या देवी की पड़वा, भैरव की अमावस और २६ एकादशियों को भी व्रत रहे। इस के अतिरिक्त प्रत्येक माह में भी दो चार ऐसे त्योहार माने हैं जिन में स्त्री पुरुष दोनों वा केवल स्त्रियां ही वा केवल पुरुष ही व्रती रहते हैं जैसे—

चैत्र के कृष्णपक्ष में—शीतला की अष्टमी और वारुणी स्नान ॥

चैत्र के शुक्लपक्ष में—प्रड़िवा से नवमी तक नवरात्रि का, अष्टमी को देवी का, तीज को (गनगोर) ॥

वैशाख के कृष्णपक्ष में—सप्तमी और अष्टमी ॥
वैशाख के शुक्लपक्ष में—तीज (अक्षयतृतीया) ॥
ज्येष्ठ में बरसायत (वटसावित्री), शीतला की अष्टमी, सप्तमी ॥
आषाढ में—सप्तमी और दहबैठोनी अष्टमी ॥
सावन—सलूनो ॥
भादों कृष्णपक्ष—चौथ (बहुला चौथ) छठ (हरछठ) अष्टमी (कन्हैया अष्टमी)
भादों शुक्लपक्ष—तीज (गौरी) चौथ (सिद्धविनायक) पञ्चमी (ऋषिपञ्चमी) और बड़ा इतवार ॥
कुआर शुक्लपक्ष—पड़िवा से नवमी तक नवरात्रि व्रत, दशहरा, चौदस (ढिढिया)
कार्त्तिक कृष्णपक्ष—चौथ (करवा चौथ) अष्टमी अहोई अष्टमी, दिवाली द्वादशी (वछवारा)
कार्त्तिक शुक्लपक्ष—दोज (भाईदोज) चिरयागौर नवमी से एकादशी तक, दशमी से पूर्णमासी तक (भीष्मपञ्चक) ॥
अगहन शुक्लपक्ष—पञ्चमी, छठ और अष्टमी ॥
माघ कृष्णपक्ष—चौथ (गणेश चौथ) पञ्चमी, एकादशी ॥
फाल्गुन कृष्णपक्ष—अष्टमी, तेरस (शिवतेरस) ॥
फाल्गुन शुक्लपक्ष—होली आदि दिन भी व्रत के हैं।

इन के अतिरिक्त और भी बहुत से व्रतों की आज्ञा धर्मसिन्धु और निर्णयसिन्धु में पाई जाती है। इन सब दिवसों में सम्पूर्ण दिन या किसी भाग तक सम्पूर्ण स्त्री पुरुष बालक भूखे रहते हैं और तत्पश्चात् अन्न को छोड़ कर घुइयां, सकरकन्दी, फाफला, सिंघाड़े आदि वस्तुएं खाते हैं परन्तु इन सब में निर्जल रहना अर्थात् दिन और रात कुछ न खाना सब से उत्तम माना गया है क्योंकि अन्न में पाप एकादशी आदि को होता है। भूखे रहने से कहते हैं कि आत्मा को मारकर एकाग्र चित्त होकर परमेश्वर का भजन करते हैं। जब से इस देश में व्रतों का प्रचार हुआ, तभी से नाममात्र के पण्डितों ने बहुत सी कथाएं भी लिख मारीं जो इन ही व्रतों के दिन सुनाई जाती हैं जिन में बहुधा उत्तम भी हैं और बहुतों में केवल गपोड़पंथ ही भरा हुआ है और बतला दिया कि इन व्रतों के रहने से और इन कथाओं के सुनने से वही फल प्राप्त होता है जो सहस्र अश्वमेध, सहस्र वेददान, सौ कन्यादान

और सहस्र उपकारादि उत्तम कर्मों के करने से प्राप्त होता है और ऐसे पुरुषों को संसार में धन धान्य सन्तानादि से सर्व प्रकार के आनन्द मिलते हैं इन फलों को सुनकर वर्त्तमान समय में निर्धन धन के, बीमार आरोग्यता के, बे औलाद सन्तान के और स्त्रियां पतिव्रतधर्म पूर्ण करने के अर्थ, भेड़चाल की भांति विना सोचे समझे व्रत रहती चली जाती हैं। बहुधा निमक और आग छोड़ देती हैं अर्थात् आग से बना हुआ भोजन नहीं करतीं और केवल ऋतु आदि के फलों पर निर्वाह करती हैं ॥

परन्तु जब हम धर्मशास्त्र पर दृष्टि डाल कर इन उपरोक्त व्रतों की जांच करते हैं तो कहीं विना अजीर्ण के भूखे रहने की आज्ञा नहीं पाई जाती क्योंकि भूख के मारने से मन्दाग्नि होजाती है मनुष्य निर्बल होजाते हैं किसी की बात अच्छी नहीं लगती, अच्छी को बुरी समझती हैं सूरत भयावनी होजाती है बहुत लिखने की क्या आवश्यकता है आप नित्य प्रति देख सक्ते हैं कि जो स्त्रियां अन्नादि छोड़ देती हैं उन की क्या दशा हो जाती है जिस के कारण वह गृहस्थी के कार्य्यों को नहीं कर सक्तीं गर्भाशय में अन्तर पड़ जाता है जिस से आने वाली सन्तानों में नाना प्रकार के दोष हो जाते हैं पुत्र पुत्री आदि को पूर्णरूप से लालन पालन नहीं कर सक्तीं ॥

अब रहा चित्त की एकाग्रता और ईश्वर का भजन। यदि यह दोनों कार्य्य भूखे रहने से होते तो आज कल बहुधा जन विना अन्न के मारे फिरते हैं फिर उन का एकाग्र चित्त क्यों नहीं होता और वह ईश्वर के भजन में लिप्त क्यों नहीं रहते। आप जानते हैं कि एक दिन भोजन न मिलने से मनुष्य व्याकुल हो जाता है उस को दुनियां और दीन दोनों देख पड़ते हैं? बुद्धि में अन्तर आता है कुछ का कुछ सुनता और समझता है दिल झटकता रहता है फिर ईश्वर का भजन कैसा! यही कारण है कि बहुधा जन व्रती रह कर नाना कथाएँ वरसों तक सुनते रहते हैं परन्तु सौ में दो मनुष्य भी ऐसे न निकलेंगे जो उन कथाओं को आप को सुना सकें फिर उन कथाओं पर चलना कैसा!

यदि भूखे रहने से ही चित्त की एकाग्रता होती तो हमारे ऋषि मुनि क्यों इतना कष्ट उठाते, जङ्गलों में रहते, चौरासी आसन और नाना क्रियाओं को कर योग की शिक्षा करते। इन सब हानियों के अतिरिक्त एक बड़ी हानि इन व्रतों से यह हो रही है कि स्त्रियों ने इन को मुक्ति का द्वार समझ कर पतिसेवा का बिलकुल त्याग कर दिया, पति कुछ कहता है वह कुछ करती

है जिस ने गृहस्थाश्रम में प्रेम नहीं आता दिन और रात झिगड़े पड़े रहते हैं हे प्यारी बहनो! तुम कदापि इन व्रतों के रहने से स्वर्ग नहीं पा सक्ती वरन नाना प्रकार के कष्ट उठाती हो तुम्हारा तो परमदेव पति है वही तुम्हारा तीर्थ है उसी की सेवा टहल से तुम आनन्द उठा सक्ती हो। जो फल यज्ञादि उत्तम कर्मों के करने से प्राप्त होता है वह तुम को केवल पतिसेवा से ही मिल सकता है जैसा कि मनु० अ० ५ श्लो० १५५ और शङ्खस्मृति अ० ५ श्लो० ८ में लिखा है ॥

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषि-
तम् । पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ॥
न व्रतैर्नोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च । ना-
रीस्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति पतिपूजनात् ॥ शंख

मार्कण्डेय जी महाराज ने युधिष्ठिर से कहा है कि स्त्रियों को केवल पति सेवा ही से स्वर्ग मिलता है। परन्तु शोक है कि वर्त्तमान समय में इन उक्त वचनों पर कोई ध्यान नहीं और अधर्म में पड़कर अपने पति की आयु को हरती हैं और आप नरक को जाती हैं। जैसा कि विष्णुस्मृति अ० २५ श्लो० १६ और अत्रिस्मृति श्लो० १३४, १३५ में लिखा है—

पत्यौ जीवति या योषिदुपवासव्रतञ्चरेत् ।
आयुः सा हरते भर्त्तुर्नरकञ्चैव गच्छति ॥
जीवद्भर्त्तरि या नारी उपोष्य व्रतचारिणी ।
आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥

मान्यवरो! जब यह अन्धकार बहुत बढ़ा और सब को अत्यन्त दु[illegible] हुआ तो बहुत सज्जनों ने धर्मात्मा कोतवालों की भांति संसार के हितार्थ उद्योगरूपी घोड़े पर चढ़कर धर्मरूप तलवार अपने हाथ में लेकर जीवन के भय को छोड़कर काम लोभ और अज्ञानरूपी शत्रुओं के मारने को सारे संसार में फिरते डोले और भिन्न २ स्थानों पर ज्ञानरूप दियासलाई से बन्द शास्त्ररूप मसाले फिर जला गए उन्हीं के प्रकाश का आज यह प्रताप है कि हम जानते जाते हैं कि पूर्व समय में यह व्रत प्रचलित न थे वरन और ही थे और उन से

इन को नाना प्रकार के सुख मिलते थे जिन को मैं भी आप के हितार्थ वर्णन करता हूं देखिये व्रत के अर्थ नियम के हैं अर्थात् वेदादि सत्यविद्याओं का पालन करना जैसा कि य० अ० १९ मं० ३० में लिखा है—

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥

दक्षस्मृति अ० १ श्लो० ७, हारीतस्मृति अ० ३ श्लो० ५ में लिखा है कि जब वेद आरम्भ करे तो उस की सिद्धि के लिये गुरुकुल में वेदोक्त व्रतों को करे जैसा कि—

स्वीकरोति यदा वेदं चरेद्वेदव्रतानि च । (दक्ष०)
तस्मात् वेदव्रतानीह चरेत्स्वाध्यायसिद्धये ॥ हारीत

और ऐसा ही शङ्खस्मृति अ० ३ श्लो० १५ में लिखा है विष्णुस्मृति अ० १ श्लो० २९ में लिखा है कि यज्ञोपवीत संस्कार होने के पश्चात् गायत्री मन्त्र से लेकर वेद तक जिस २ ग्रन्थ को पढ़े उस २ का व्रत करे अर्थात् ब्रह्मचर्य्य रह कर वेद विद्या पढ़ने का नाम व्रत है । अनुशासन पर्व अ० १४३ में महेश्वर ने उमा से कहा है कि वेदव्रतों का धारण करना अति उत्तम है । सब से उत्तम और शारीरक व आत्मिक बल का देने वाला व्रत ब्रह्मचर्य्य ही है जिस की प्रशंसा प्रथम हो चुकी इसी को परमोत्तम व्रत वेदादि सत्शास्त्रों में माना है जैसा कि अथर्व० कां ११ प्रप० २४ व० १६ मन्त्र २६

तानिकल्पद्ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत्तप्यमानः । समुद्रसस्नातोवभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहुरोचते ॥

जो ब्रह्मचारी समुद्र के समान गम्भीर बड़े उत्तम व्रत ब्रह्मचर्य्य में निवास करता है वह महातप को करता हुआ वेद पठन वीर्य्य निग्रह आचार्य के प्रियाचरणादि कर्मों को पूरा कर स्नानादि करके विद्याओं को धरता सुन्दर वर्णयुक्त होकर पृथ्वी में अनेक शुभ गुण कर्म स्वभाव से प्रकाशमान होता है वही धन्यवाद के योग्य है और याज्ञवल्क्यस्मृति अ० ३ श्लो० ५१ में लिखा है—

गुरवे तु वरं दत्वा स्नायीत तदनुज्ञया ।
वेदं व्रतानि वा पारं नीत्वाह्युभयमेव वा ॥

गुरु को दक्षिणा देकर उस की आज्ञा से वा वेद समाप्त या व्रत को पूरा

कर या दोनों को पूर्ण कर समावर्त्तनसंस्कार करे। व्यासस्मृति अ० १ श्लो० ४९ में लिखा है कि जो ब्रह्मचर्य्यव्रत को पूरा करता है वह स्वर्ग को जाता है।

यस्तूपनयनादेतदामृत्योर्व्रतंचरेत् । स
नैष्ठिकोब्रह्मचारी ब्रह्म सायुज्यमाप्नुयात् ॥

शान्तिपर्व अ० १६० में भीष्मपितामह का वचन है कि चारों आश्रमों के लिये इन्द्रियनिग्रह ही उत्तम व्रत है। महाभारत उद्योगपर्व अ० ४४ में लिखा है कि जो मनुष्य ब्रह्मचर्य्यव्रत को पूर्णरूप से पालन करता है वह इस लोक में शास्त्रकार होता है और अन्त को मोक्ष पाता है। इन्हीं कारण से मनु जी ने अ० ११ श्लो० १२१ में लिखा है कि जो द्विज अपनी इच्छा से अपने ब्रह्मचर्य्य को गिरा देता है उस का व्रत नष्ट होजाता है जैसा कि-

मारुतं पुरुहूतं च गुरुं पावकमेव च । च-
तुरो व्रतिनोऽभ्येति ब्राह्मंतेजोऽवकीर्णिनः ॥

और श्रीमद्भागवतस्कन्ध ११ अध्याय १७ में लिखा है कि ब्रह्मचारी गुरुकुल में रह कर विषय भोग से बच कर जब तक विद्या पूर्ण हो तब तक अखण्डित व्रत धारण करे जैसा कि-

एवंवृत्तो गुरुकुले वसेद्भोगविवर्जितः । विद्या-
समाप्यते यावद्बिभ्रद्व्रतमखण्डितम् ॥३०॥

मार्कण्डेयपुराण अ० ४१ में लिखा है कि ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य्य में स्थित रह कर चोरी, लोभ और हिंसा आदि का त्याग करे यह ब्रह्मचारी के व्रत हैं जैसा कि-

अस्तेयं ब्रह्मचर्य्यंश्चत्यागोऽलोभस्तथैव च ।
व्रतानि पञ्च भिक्षूणामहिंसापरमाणि वै ॥

ऐसा ही लिङ्गपुराण अध्याय ८९ श्लोक २४ में लिखा है जैसा कि-

अस्तेयं ब्रह्मचर्य्यंश्च अलोभस्त्यागएव च ।
व्रतानि पञ्च भिक्षूणामहिंसापरमा त्विह ॥२४॥

महाभारत उद्योगपर्व में सनत्सुजात मुनि का वचन है कि (१) अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार कर्म करना (२) सत्य बोलना (३) इन्द्रियों को

वश में रखना (४) किसी की उन्नति देख कर न जलना (५) निन्दा न करना (६) यज्ञ (७) दान (८) अर्थसमेत वेद को पढ़ना (९) क्रोध को रोकना (१०) आपत्ति के समय में भी सत्य को न त्यागना यही व्रत है जो इन व्रतों को धारण करता है वह सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने आधीन कर सक्ता है । जो मनुष्य ब्रह्मचर्य्य रह कर विद्या को प्राप्त करता है और उपरोक्त गुणों को धारण करता है वह मनुष्य ऋषि देवता मुनि और महात्मा कहाता है और अकालमृत्यु को जीतता है यही मोक्ष का उपाय है ॥

इस के अतिरिक्त शान्तिपर्व अध्याय २२१ में युधिष्ठिर महाराज ने भीष्मपितामह से प्रश्न किया है कि साधारण लोग जो देहपीड़ा कर उपवास को तपस्या कहा करते हैं यही तपस्या है क्या ! तब भीष्म ने उत्तर दिया कि साधारण लोग जो ऐसा समझते हैं कि एक महीना वा एक पक्ष उपवास करने से तपस्या होती है सो यह आत्मविद्या की विघ्नस्वरूप तपस्या है । इस लिये यह व्रत अच्छे पुरुषों की सम्मति के विपरीत हैं । हां जो गृहस्थ होकर ऋतुगामी होते और संन्यासव्रत को धारण करते हैं, अतिथि की सेवा करते हैं, प्राणीमात्र पर दया करते हैं वह सच्चे व्रती हैं जो रात दिन में एक बार भोजन करते हैं सदा उपवासी होते हैं और ऐसा ही शान्तिपर्व अ० ७८ में कहा है और अत्रिस्मृति में भी यही उपदेश मिलता है कि आश्रमों के धर्मों को यथावत् करना परमव्रत है ॥

अनुशासनपर्व अ० १४३ में महेश्वर ने व्रत किया है । श्रीमद्भागवत स्कन्ध ६ अ० १८ में कश्यप जी ने दिति को पुंसवनव्रत बताया है उस में लिखा है— (१) अहिंसा । (२) दुर्जनों से वार्त्ता न करे (३) झूठ न बोले । (४) क्रोध न करे । (५) मांस न खाय । (६) सत्य और प्रिय भाषण करे । (७) दिन में न सोवे । (८) सदा पवित्र रहे । (९) पति का पूजन आदि नियम पालन की आज्ञा है । और १९ अ० में इस की विधि का विस्तार किया है वहां प्रतिदिन हवन करने की भी आज्ञा दी है और यह भी लिखा है कि जो इन व्रतों को धारण नहीं करते उन के व्रत नष्ट होजाते हैं और धारण करने वालों को सर्व प्रकार के सुख मिलते हैं ॥

प्रियवर्गो ! जैसी दुर्दशा वर्त्तमान समय में व्रतों की हो रही है उस से अधिक तपस्या की है कोई एक पैर से वा हाथ उठा कर खड़े रहने को तपस्या कहते हैं । कोई झूलना में पड़े रहने को उग्र तप कहते हैं और कोई अन्न

छोड़ने आदि को। परन्तु यह सब मिथ्या है देखिये श्रीकृष्ण महाराज ने गीता में कहा है कि तपस्या तीन प्रकार की हैं शारीरक वाचिक और मानस और जब यह तीनों प्रकार की तपस्या इकट्ठी हो जावें तब वह मनुष्य तपस्वी कहलाता है और इन तीनों की व्याख्या इस भांति की है—जो मनुष्य देव, ब्राह्मण, गुरु, तत्वज्ञानी इन की पूजा करे और बाहिर भीतर से पवित्र रहे और नम्रतापूर्वक रहे ब्रह्मचर्य्य का साधन करे और हिंसा न करे तो उस को शारीरक तप कहते हैं जैसा कि—

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तपउच्यते ॥

ऐसा वचन कहे जो किसी को किसी प्रकार का भय न हो सत्य प्रिय हो जो अन्त के विषय हितकारक हो ऐसे वचन वेद शास्त्र के अभ्यास से होते हैं यही वाचिक तप है जैसा कि—

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तपउच्यते ॥
मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपोमानसमुच्यते ॥

मन प्रसन्न और निर्मल रहे क्रूर न हो मन में ईश्वर के स्वरूप की भावना हो विषयन से निवृत्त होय और लोकव्यवहार कपट से रहित हो उस को मानस तप कहते हैं।

व्यास जी महाराज ने कहा है कि मन को एकाग्र कर के इन्द्रियों को वश में रखना यही तप कहाता है क्योंकि मन बड़ा चञ्चल है इस को आधीन कर लेना ही परमतप है और वनपर्व्व अ० २०० में मार्कण्डेय ने युधिष्ठिर से कहा है कि अन्न न खाना सहज है परन्तु अन्न खा कर इन छः चञ्चल इन्द्रियों का रोकना कठिन है इसलिये इन्द्रियों का वश में रखना उग्र तप है। और मनु० अ० ११ श्लोक २३५ में ब्राह्मण का तप धर्मशास्त्र का पढ़ना, क्षत्री का तप प्रजा की रक्षा करना, वैश्य का तप नित्य व्यापार और शूद्र का तप नित्य सेवा करना। अर्थात् वर्णाश्रमधर्मों को करना यथार्थ में तप है जैसा कि—

ब्राह्मणस्य तपोज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम् ।
वैश्यस्य तु तपो वार्त्ता तपः शूद्रस्य सेवनम् ॥

और इसी अ० के २४६ श्लोक में नित्य वेद पढ़ना और यथाशक्ति यज्ञ करना और धैर्य्य रखना और श्लोक २४७ में वारंवार वेद पढ़ने को ही परम तप कहा है और याज्ञवल्क्य जी महाराज ने अ० ३ श्लो० १०९ में स्पष्ट कह दिया है कि सम्पूर्ण बातों को छोड कर आत्मा में लिप्त रहने ही को तप कहते हैं । इसलिये मान्यवरो आप इन मिथ्या व्रत और तप को छोड़ वेदानुकूल उपरोक्त व्रतों को वेद द्वारा जान उन के पूर्ण करने के अर्थ सत्यप्रतिज्ञा कीजिये तब ही आनन्द मिलेगा अन्यथा नहीं ॥

तीर्थ और मोक्ष ॥

मान्यवरो ! प्रत्येक ऋषिग्रन्थों में उन के जीवनचरित्र और उन के नियत किये हुए नियम प्रत्यक्ष प्रकट कर रहे हैं कि इस संसार में उन का मुख्य कर्तव्य क्या था—न वह धन के अभिलाषी थे और न अन्य सांसारिक वस्तुओं में अपने चित्त को लगने देते थे, उन का सच्चा प्रेम परमात्मा को प्राप्त करना ही था । इस अभिलाषा के सिद्ध करने के अर्थ उन्हों ने कठिन २ नियमों को भी अतिसुगम समझा इसलिये उन्हों ने अपनी आयु का अधिक भाग इसी अभिप्राय के सिद्ध करने के अर्थ नियत किया था और यह आयु के प्रथम अमूल्य भाग में सब से प्रथम नियमपूर्वक विद्याध्ययन करते हुए ब्रह्मचर्य्य को पूर्ण करते थे इस का समय ४८ वर्ष तक था । विद्या से आत्मिक और ब्रह्मचर्य्य से शारीरिक बल प्राप्त होता था । जिन की अतिआवश्यकता है । आत्मिकबल से सत्य और असत्य का निर्णय कर शारीरिक बल से उस के पूर्ण करने को कटिबद्ध रहते थे तत्पश्चात् गृहस्थ होते थे । यदि यह समय गृहस्थी के भोग विलास के और सन्तान उत्पादनार्थ था परन्तु इन आनन्दों में पड़ कर भी वह अपने पवित्र आशय को न भूलते थे वरन नाना प्रकार के तप व्रत और तीर्थ यज्ञादि नित्य करते रहते थे । परन्तु शोक कि वर्तमान समय में इन के मुख्य आशय को बहुधा जन नहीं जानते और नानाप्र कार के प्रपञ्च रचते हैं कि जिन को अन्यदेशीय जन जान कर नाना दोष बतलाते हैं । मान्यवरो ! यह परिपाटियां अति विचार और बुद्धिमानी से नियत की गई थीं । क्या कोई जन ऐसा संसार में जान पड़ता है जो उन के मुख्य आशय को जान उन में शङ्का उत्पन्न कर सके ? व्रत और तपस्या का मुख्य अभिप्राय मैं आप को बतला चुका हूं अब आप को संक्षेप से ऋषितीर्थों का वृत्तान्त सुनाता हूं । देखिये तीर्थ शब्द "तॄ प्लवनसन्तरणयोः" इस धातु से औणादिक थक् प्रत्ययकरने पर

सिद्ध होता है "तरन्ति येन यस्मिन् वा तत्तीर्थम्" अर्थात् जिस से जन तरते हैं वा जिस में जन तरते हैं उस को तीर्थ कहते हैं ॥

यजुर्वेद अध्याय १६ मन्त्र ६१ में लिखा है मनुष्यों के दो प्रकार के तीर्थ हैं उन में पहले तो वह हैं जो ब्रह्मचर्य्य गुरु की सेवा वेदादि शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना सत्सङ्ग ईश्वर की उपासना सत्यसम्भाषण आदि दुःखसागर से मनुष्यों को पार करते हैं और दूसरे वह जिन से समुद्रादि जलाशयों के पार जाने जाने में समर्थ होते हैं जैसा कि—

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्तानिषङ्गिणः।
तषांꣳसहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥

किसी महात्मा का वचन है—

सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ।
सर्वभूतदया तीर्थं सर्वत्रार्जवमेव च ॥
दानं तीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थमुच्यते।
ब्रह्मचर्य्यं परं तीर्थं तीर्थञ्च प्रियवादिता ॥
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं पुण्यं तीर्थमुदाहृतम् ।
तीर्थानामपि सततं विशुद्धिर्मनसः परा ॥

सत्य—जो कुछ देखा सुना हो और जानता हो वही विना कुछ अपनी ओर से मिलाये वर्णन करना तीर्थ है ॥

क्षमा—समर्थ होने पर भी क्षमा करना तीर्थ है ॥

इन्द्रियनिग्रह—पांच कर्मइन्द्रिय और पांच ज्ञानइन्द्रिय को अपने २ विषयों से रोकना तीर्थ है ॥

दया—अपनी आत्मा के सदृश औरों की आत्मा को जानना तीर्थ है ॥

दान—पुस्तकालय, विद्यालयादि का खोलना और विद्यार्थियों और अनाथों आदि भूखों की यथायोग्य सहायता करना तीर्थ है ॥

दम—पञ्च कर्मेन्द्रियों को बाह्य विषयों से रोकना और दुःख सुख को समान जानना तीर्थ है ॥

सन्तोष—सत्य कार्यों के द्वारा जो कुछ प्राप्त हो उस में जीवनाधार करना तीर्थ है ॥

ब्रह्मचर्य्य–सब प्रकार से वीर्य्य की यथावत् रक्षा करना परमतीर्थ है ॥
ज्ञान–सत् असत् वस्तुओं का जानना तीर्थ है ॥
धृतिः–सत्य प्रतिज्ञाओं का पालन करना तीर्थ है ॥
पुण्य–जो ब्राह्मणादि देश की उन्नति में बाधक नहीं हैं और न देश की उन्नति कर सके हैं उन को अन्न जल से तृप्त करना तीर्थ है ॥
मनका शुद्ध करना–मन सत्य बोलने से शुद्ध होता है यह परमतीर्थ है ॥
और भी कहा है–

मनोविशुद्धं पुरतस्तु तीर्थं वाचा यमस्त्विन्द्रियनिग्रहस्तपः ।
एतानि तीर्थानि शरीरजानि स्वर्गस्य मार्गं प्रतिवेदयन्ति ॥

मन की पवित्रता, सत्य और विषयों को वश में रखना, मनुष्यों के तीर्थ हैं और यही सुख के दाता हैं । मनुस्मृति अ० १२ श्लोक १२३ में लिखा है–

एतमेके वदत्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ।
इन्द्रमेकेऽपरेप्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥

उस परमेश्वर को कोई अग्नि कोई मनु कोई इन्द्र और कोई प्राण और कोई तीर्थ कहते हैं ॥

और वृद्ध गौतमसंहिता में भी कहा है कि "क्षमावांस्तीर्थमुच्यते" कि क्षमावान् ही तीर्थस्वरूप है । शान्तिपर्व अ० २३३ में, देवता, ऋषि, पितर, अतिथि आदि की पूजा करने को तीर्थ रूप वर्णन किया है । इन के अतिरिक्त हमारे पूज्य विद्वान् होने पर भी इस विषय को अच्छे प्रकार जानते थे कि संसार में रहना अतिदुर्लभ है गृहस्थी अतिअगाध समुद्र है इस में कभी मनुष्य लोभ के कारण ऐसा हो जाता है कि जिस से वह सत्य असत्य को कुछ नहीं जानता प्रतिसमय धन ही की लालसा में लगा रहता है न धर्म को जानता है न अधर्म को, बहुतों को कष्ट देता है, कभी मोह अपना प्रचण्ड बल दिखलाता है जिस से वह स्त्री पुत्र आदि सम्बन्धियों के झूठे प्रेम में ऐसा फंस जाता है कि परमेश्वर को भी भूलने लगता है–अन्याय से बहुधा वस्तुएँ अपने कुटुम्ब के अर्थ सञ्चय करता रहता है, कभी काम में आकर अपना राज्य करता है कि जिस के कारण मनुष्य धन और धर्म को भूल कर नाना प्रकार के अत्याचार करता रहता है, कभी क्रोध में ऐसा लिप्त हो जाता है कि उस समय किसी का भी ध्यान नहीं करता, चाहे सर्वस्व नष्ट हो जावे। परन्तु

सब अच्छे प्रकार से जानते थे कि यह मनुष्य के महाशत्रु हैं और सदा धर्म से हटा कर अधर्म की ओर उन का ध्यान लगाया करते हैं इसलिये इन को सदा वश में करने का उद्योग करते रहते थे क्योंकि विना इन के वश किये आत्मज्ञान नहीं हो सक्ता—और यह वेदादि शास्त्रों के उपदेश से अपने आधीन हो जाता है। इस कारण कभी २ वह नियमपूर्वक उन ऋषि मुनियों के समीप जाया करते थे जो अतिविद्वान् थे, सांसारिक सुखों के त्यागी हो परमात्मा के भजन में लगे रहते थे और जो मनुष्यों को सत्योपदेश देने को उद्यत रहते थे, और जो उन की शङ्काओं को समाधान कर अनेक प्रकार के सुख का उपाय वतलाते थे।

इतिहासों से ज्ञात होता है कि यह ऋषि मुनि सदा ऐसे स्थानों पर कुटी बना कर रहा करते थे जहां का जल वायु आरोग्यदायक होता था, जहां बड़े २ वन उपवन होते थे और जहां उन के भोजनादि की सम्पूर्ण वस्तुएं सुगमता से मिलती थीं, ऐसे स्थानों को वह तीर्थ कहा करते थे क्योंकि उन का सत्योपदेश उन के चित्त को सांसारिक विकारों से हटा कर परमात्मा की ओर लगा देता था जिस से वह सर्व प्रकार के आनन्द भोगते हुए मोक्ष को प्राप्त करते थे। देखिये-मार्कण्डेय जी महाराज ने कहा है कि वेद के जानने वाले व्रत करने वाले ज्ञानी तपस्वी ऋषि मुनि ब्राह्मण जहां रहते हैं वह भी तीर्थ है चाहे गांव और जङ्गल क्यों न हो और श्रीमद्भागवतस्कन्ध ३ अ० १ श्लोक १६ में विदुर जी के चरणों और ऋषियों के निवासस्थान को तीर्थ कहा है जैसा कि—

स निर्गतः कौरवपुण्यलब्धो गजाह्वयात्तीर्थपदःपदानि ॥

और एक स्थान पर श्रीकृष्ण के चरणों को तीर्थ बतलाया है क्योंकि वह ज्ञानमय मूर्त्ति और योगिराज थे। इस के अतिरिक्त जब श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेव जी महाराज रानियों समेत कुरुक्षेत्र को गये तब वेदव्यास, नारद, देवल, विश्वामित्र, भरद्वाज, गौतम, वसिष्ठ, भृगु, कश्यप, अत्रि, बृहस्पति, याज्ञवल्क्य आदि अनेक ऋषि, मुनि वहां पधारे बहुत आदर सत्कार करने के पश्चात् श्रीकृष्ण महाराज जी बोले कि आज हम को इन ऋषियों के दर्शनों से अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ यही सच्चा तीर्थ और तप है॥

वनपर्व अ० ८५ में नारद मुनि ने बहुत से तीर्थों का वर्णन करके अन्त को कहा है कि तीर्थों के जाने का प्रधान फल यही है कि वहां पर वाल्मीकि देवल, गौतम, आदि अनेक ऋषियों मुनियों के दर्शन होते हैं। देखो श्रीरा-

मचन्द्र महाराज ने भी वनवास के समय उन्हीं स्थानों पर निवास किया था जहां ऋषि मुनि निवास करते थे। रामायण से प्रकट होता है कि श्रीराम ने सुगन्धित धुआं को देख प्रयाग तीर्थ की परीक्षा की थी जहां भारद्वाज मुनि रहते थे वहां उन की भेट की जिन्हों ने नाना प्रकार के उपदेश श्रीमान् को किये वहां से चलकर चित्रकूट पर जहां अनेक ऋषि रहते थे। तत्पश्चात् वाल्मीकि के आश्रम को सिधारे फिर वहां से अत्रि के आश्रम को गये जिन की स्त्री अनसूया जी ने महारानी सीता को अति उत्तम पतिव्रतधर्म का उपदेश किया था तत्पश्चात् शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण, अगस्त आदि महात्माओं से मिले और सत्योपदेश सुने जिस से उन को वन में बड़ा आनन्द प्राप्त होता था ॥

मान्यवरो! प्राचीन पुस्तकों से जाना जाता है कि विद्वान् से विद्वान् पुरुष भी इन तीर्थों में जाने से प्रथम बहुत प्रकार के नियमों का पालन करते तत्पश्चात् बहुत थोड़े मनुष्यों के साथ जाते थे क्योंकि उत्तम से उत्तम परीक्षित औषधियां कुछ भी लाभ नहीं देतीं यदि उन के नियमों पर न चला जावे इसी भांति ऋषियों का उपदेश मोक्षसुख का देने वाला होता था परन्तु यदि कोई मनुष्य सावधान चित्त होकर न सुने तो किस प्रकार स्मरण रह सक्ता है फिर उस के अनुसार कार्य्य करना कैसा और सुख कहां? इसी लिये महाभारत में शौनक मुनि ने युधिष्ठिर महाराज से कहा है कि तीर्थयात्रा का फल उन्हीं मनुष्यों को मिलता है जो अपने हाथ पांव और मन को आधीन करलेते हैं और निरभिमानी, युक्ताहार और शीलवान् होते हैं और लोमश मुनि ने महाभारत वनपर्व अ० ९२ में युधिष्ठिर जी से कहा है तीर्थों में बड़े २ ऋषि निवास करते हैं जो सब प्रकार के आनन्द देने वाले हैं परन्तु पापी अबुद्धि इन के फलों को नहीं पाते और तीर्थयात्रा सदा थोड़े मनुष्यों के साथ जाना चाहिये। जब युधिष्ठिर महाराज तीर्थयात्रा को जाने के लिये उपस्थित हुए तब व्यास जी ने उन को शिक्षा की कि हे पाण्डव मन को शुद्ध शान्तिसहित तीर्थों को जाइये मन के शुद्ध होने से बुद्धि पवित्र होती है जिस से आप शारीरिक नियमों और व्रतों को अच्छे प्रकार धारण कर सक्ते हैं और अगस्त मुनि ने कहा है कि जिन की सब इन्द्रियां वश में होती हैं जो सब प्राणियों को समान जान कर सत्य का आचरण करते हैं और किसी प्रकार का अभिमान नहीं करते स्वल्पाहारी होते हैं उन्हीं को तीर्थों का फल मिलता है। और व्यासस्मृति अ० ८ श्लो० ८४ में लिखा है कि पराई स्त्री और पराये धन का

पुराने वाला मनुष्य तीर्थों को भी जावे तो भी उस का किया हुआ पाप नष्ट नहीं होता। जैसा कि–

परदारान् परद्रव्यं हरते यो दिने दिने।
सर्वतीर्थाभिषेकेण पापं तस्य न मुच्यते॥

और शङ्खस्मृति अ० ८ श्लोक १५ में कहा है कि जिन के हाथ पैर मन विद्या तप कीर्ति अपने वश में हैं वही तीर्थ के फल को भोगते हैं। परन्तु शोक कि वर्तमान समय में हमारे अनपढ़ अज्ञानी भाइयों ने काशी, प्रयाग, मथुरा, बद्रीनाथ, केदारनाथ, जगन्नाथ, नैमिषारण्य और अनेक गङ्गातटों को तीर्थ मान रक्खा है कि जिन के माहात्म्य भी वर्तमान समय के नाममात्र के पण्डितों ने लोभवश हो कर किसी न किसी पुराण के अन्तर्गत कर दिये हैं, जिन को बहुधा जन अनेक अवसरों पर सुनते रहते हैं, प्रत्येक माहात्म्य बतला रहा है कि इसी एक तीर्थ विशेष वा गङ्गा स्नान से वह फल होगा जो संसार में किसी सत्क्रिया से नहीं हो सकता देखिये पद्मपुराण में यमुना माहात्म्य है उस में लिखा है कि यमुना जी सर्वसुखों की दाता है, श्रीयमुना जी के जल विना गति नहीं हो सकती, जो श्राद्धादि उत्तम कर्मफल देने वाले हैं वह यमुना के स्नान मात्र से ही प्राप्त होते हैं सतयुग में तप त्रेता में यज्ञ द्वापर में पूजा और कलियुग में यमुना स्नान सब सुखों का दाता है व्रत दान तप से हरि प्रसन्न नहीं होते श्रीयमुना जी के स्नान से प्रसन्न होते हैं। और गङ्गा के दर्शन करने से सौ जन्म के पीने से तीन सौ जन्म के और स्नान करने से हज़ारों जन्म के पाप कलियुग में नाश होते हैं जैसा कि–

दृष्ट्वा जन्मशतं पापं पीत्वा जन्मशतत्रयम्।
स्नात्वा जन्मसहस्राणि हरति गङ्गा कलौयुगे॥

और भी लिखा है कि गङ्गा का नाम सौ योजन से भी लेले तो पाप का नाश हो जाता है और विष्णुलोक को पाता है जैसा कि:–

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं सगच्छति॥

गया के माहात्म्य में कहते हैं कि जो गया न गया सो भया न भया और बद्रीनारायण के जाने वाले कहते हैं कि "जो जावे बद्री न आवे उद्री, जो

आये वद्री कभी न होय दरिद्री" सुदामापुर में ८४ कुटरियों में फिरने से ८४ योनियों से छुटकारा होता है । इसी प्रकार अनेक श्लोक और कथायें लिखी हुई हैं जिन से प्रकट होता है महापापी मनुष्य भी एक २ वार गङ्गा यमुना वद्रीनारायण आदि के दर्शन करने से मुक्त हो जाते हैं ॥

मान्यवरो ! जहां तक मैं जानता हूं इस के दर्शन या स्नान से कदापि मोक्ष नहीं हो सक्ती और यदि हो सक्ती है तो अब तक जिन २ मनुष्यों ने स्नान दर्शनादि निरन्तर किये हैं और करते हैं उन की मुक्ति हो जानी चाहिये थी सो क्यों न हुई यदि कहो कि शरीर त्याग के पश्चात् मुक्ति होगी तो उन में जीवन्मुक्त के लक्षण राग, द्वेष, लोभ, मोह, क्रोध का त्याग; वैराग्य, ध्यान, समाधि के लक्षण होने चाहियें जिस से निश्चय होजाय कि इन की मुक्ति शरीरान्त समय होजायगी यदि कहो कि पापों से मुक्ति होने का अभिप्राय है तो विचारना चाहिये कि पाप क्या वस्तु हैं, क्या शरीर के ऊपर मैल के समान हैं जो गङ्गा में धोये जाएंगे सञ्चित पापों का अन्तःकरण स्थान है जिस में दुष्टवासना रूप से पाप रहते हैं उन का पूरा २ शोधन तप करने ही से हो सकता है जलादि से नहीं मनु० अ० ५ श्लो० १०९ में लिखा है-

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ॥

जल से केवल शरीर शुद्ध होता है, मन सत्य से शुद्ध होता है, आत्मा विद्या और तप से शुद्ध होता है, बुद्धि ज्ञान से पवित्र होती है और भी लिखा है कि-

क्षान्त्या शुध्यन्ति विद्वांसो दानेनाकार्य्यकारिणः ।
प्रच्छन्नपापाजप्येन तपसा वेदवित्तमाः ॥

विद्वान् लोग शान्ति से शुद्ध होते, न करने योग्य कामों के करने वाले दान अर्थात् विद्यादि के देने वा अनाथ दीन वा सुपात्र विद्वानों को अन्नादि उत्तम पदार्थ देने से शुद्ध होते हैं, जिन के पाप छिपे हुए हैं वे गायत्री आदि वेदमन्त्रों को निरन्तर विधिपूर्वक जप करने से और वेद के ज्ञाता निरन्तर विधिपूर्वक तप करने से शुद्ध होते हैं ॥

हे पाठकगणो ! तनिक ध्यान दीजिये यदि जल में स्नान करने वा दर्शन या रेणुका के मुंह में डालने से ही मुक्ति और पापों की निवृत्ति होती तो

फिर वेदों के वह उपदेश कि वेदादि विद्या पढ़ो, ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण करो, धर्मानुसार धन को उपार्जन करो, सत्पुरुषों का सङ्ग करो, सत्पुरुषों को दान दो, यम नियम का पालन करो, योग में चित्त लगाओ इत्यादि सब मिथ्या ही हो जायंगे ॥

इस के उपरान्त जब स्नान करने ही से मोक्ष मिलती है तो फिर यह कहना भी मिथ्या हुआ जाता है कि "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" यदि स्नान ही मुक्ति का कारण है तो प्रयाग में भारद्वाज, हरिद्वार में मैत्रेय जी आदि ऋषि मुनि दानादि, यम नियम, योगाभ्यास में नाना प्रकार के कष्ट निष्फल ही किया करते थे ?। वर्तमान समय में भी देखा जाता है कि जब दर्शन से ही मुक्ति होती है फिर स्नान करने की क्या आवश्यकता, यदि स्नान भी किये फिर नाना प्रकार दान करने की क्या आवश्यकता। इस से भी विदित हुआ कि स्नान होने के पीछे भी दानादि उत्तम कर्म करने की आवश्यकता है। हम देखते भी हैं कि कोई २ गङ्गा पर बैठ कर जपादि भी करते हैं यदि यही मुक्ति का कारण होता तो जपादि की ... है ॥

इस के उपरान्त श्रीरामचन्द्र महाराज ने रामायण में निज मुख से वर्णन किया है कि वेदोक्त कर्मों के करने से मनुष्यों को मोक्ष प्राप्त होती है इस की क्या आवश्यकता थी। राजा दशरथ जी महाराज ने राजसूय यज्ञ किये थे, श्रीकृष्ण महाराज ने भी अर्जुन को गीता में वेदोक्त कर्मों के करने का माहात्म्य वर्णन किया है ॥

श्रीकृष्ण महाराज ने कुरुक्षेत्र में महर्षियों के बीच वर्णन किया है कि महात्माओं के दर्शन करने से मनुष्यों को नाना प्रकार के लाभ होते हैं। इस के उपरान्त जब गङ्गा स्नान ही से मुक्ति होती है तो फिर श्रीमद्भागवत में नाना कर्मों की व्याख्या व्यास जी महाराज ने संसार को भ्रम में डालने के लिये क्यों की। इन के अतिरिक्त देखिये पुराण भी पुकार २ कर कह रहे हैं कि चाहे पर्वत के बराबर मिट्टी मले और गङ्गा के सारे जल से मृत्यु पर्यन्त स्नान करता रहे तो भी दुष्ट स्वभाव और दुष्ट विचार वाला मनुष्य शुद्ध नहीं हो सकता जैसा कि—

> गङ्गातोयेन कृत्स्नेन मृद्गारैश्च नगोपमैः ।
> आमृत्योः स्नातकश्चैव भावदुष्टो न शुद्ध्यति ॥

और भागवतस्कन्ध १० अ० ५४ श्लो० ७ में लिखा है कि जलमय स्थान को तीर्थ नहीं कहते और न मृत्पाषाणमयी मूर्ति को देवता कहते हैं जैसा कि

नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवामृच्छिलामयाः ॥

और लिङ्गपुराण अध्याय २५ में लिखा है कि जिस का अतःकरण शुद्ध न हो वह चाहे जितने जल से स्नान करे परन्तु शुद्ध नहीं होता अर्थात् दुष्ट-भाव पुरुष का किसी नदी वा सरोवर में स्नान करने से शुद्ध होना कठिन है। मनुष्यों का चित्त कमल अज्ञानरूपी रात्रि से सङ्कुचित हो रहा है इस को ज्ञानरूपी सूर्य्य के किरणों से विकसित करना उचित है जैसा—

भावदुष्टोऽम्भसि स्नात्वा भस्मना च न शुद्ध्यति ।
भावशुद्धश्चरेच्छौचमन्यथा न समाचरेत् ॥ १० ॥
सरित्सरस्तडागेषु सर्व्वेष्वाप्रलयं नरः ।
स्नात्वापि भावदुष्टश्चेन्न शुध्यति न संशयः ॥११॥
नृणां हि चित्तकमलम्प्रबुद्धमभवद्यदा ।
प्रसुप्तं तमसाज्ञानं भानोर्भासा तदा शुचिः ॥१२॥

यथार्थ वार्त्ता यह है जल के स्नान करने से मुक्ति नहीं होती वरन आत्मिकज्ञान ही मुक्ति का कारण है जैसा य० अ० ३१ मं० १८ में लिखा है—

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

उसी एक सर्वसाक्षी परमात्मा को जान कर जन्म मरण से छूट सकता है अन्य कोई भी मुक्ति का मार्ग नहीं है। और मनु० अ० १२ श्लोक ८३ में लिखा है कि वेद का पढ़ना और उस के लेखानुसार तप करना, आत्मज्ञान, इन्द्रियों को वश करना, किसी को दुःख न देना और गुरु की सेवा करना इन छः कर्मों से मोक्ष होती है—

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः ।
अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयसकरं परम् ॥

परन्तु इन में भी आत्मज्ञान को ही मुख्य माना है जैसा कि इसी अ० के ८५ श्लोक में लिखा है—

सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम् ।
तद्ध्यग्र्यं सर्वविद्यानां प्राप्यतेह्यमृतं ततः॥

और वशिष्ठस्मृति अ० ३० श्लो० ८ में लिखा है कि मानस यज्ञ करने से मोक्ष होती है जिस में ध्यान को यज्ञ की अग्नि और सत्य को यज्ञ का इन्धन, धैर्य्य को यज्ञ, अभिमान के त्याग को यज्ञ का स्रुव, अहिंसा को यज्ञ की सामग्री, सन्तोष को यज्ञस्थान और सम्पूर्ण जीव की रक्षा करने की प्रतिज्ञा को जो बहुत कठिन है यज्ञ कराने वाले की दक्षिणा समझना माना है जैसा कि—

मानसिकयज्ञकरणान्मोक्षो भवति ।
मानसिकयज्ञे ध्यानं यज्ञोग्निः सत्यमिन्धनम् ॥
धैर्य्यं यज्ञः । अभिमानत्यागो यज्ञस्रुवः ॥
अहिंसायज्ञसामग्री । सन्तोषोयज्ञस्थानम् ।
सम्पूर्णजीवरक्षाकरप्रतिज्ञादक्षिणा च उच्यते ॥

और ज्ञानसङ्कलिनी तन्त्र श्लोक ४८ और ४९ में भगवान् शङ्कर ने कहा है—

इदं तीर्थमिदं तीर्थं भ्रमन्ति तामसाजनाः ।
आत्मतीर्थं न जानन्ति कथंमोक्षो वरानने ॥

हे पार्वति ! तमोगुणयुक्त लोग मन को कहीं शिव को कहीं अन्यस्थान और शक्ति को कहीं अन्यत्र जानकर "यही तीर्थ है, यही तीर्थ है" ऐसे भ्रम में पड़कर सर्वत्र घूम रहे हैं। हे वरानने ! आत्मतीर्थ के ज्ञान विना जीव को किसी प्रकार मोक्ष प्राप्त नहीं हो सक्ती ॥

प्रियवर्गों हां यह सम्भव हो सक्ता है कि जिन तीर्थस्थानों को आप नाना प्रकार के कष्ट और धन व्यय कर के जाते हैं वही स्थान हों जहां पर आप के ऋषि मुनि पूर्व समय में रहते हों और जहां पर हमारे आप के पुरुषाओं ने जाकर सत्य उपदेश सुन के आनन्द उठाये हों परन्तु अब आप उन स्थानों को बुद्धि की दृष्टि से देखिये कि वहां की क्या व्यवस्थाएं हैं, क्या प्रयागराज में कोई ऋषि इस समय भरद्वाज के समान उपस्थित है कि जिन के आश्रम को श्रीरामचन्द्र जी महाराज ने वेदोक्त चिह्न पाकर दूर से जान लिया था और जिन्हों ने उक्त महाराज को नाना प्रकार की शिक्षायें कीं। क्या

हरिद्वार पर मैत्रेय के सम तुल्य ऋषि है जिन से हमारे परमनीतिज्ञ विदुर जी ने अपनी शङ्काओं का निवारण किया था, क्या सोम तीर्थ पर कोई ऋषि उपस्थित है जहां पर हमारे ज्ञानपरिपूर्ण कण्वजी महाराज आनंद उठाने के लिये गये थे, क्या अनुसूया के समान कहीं स्त्रियां हैं जिन्हों ने सीता जी को पतिव्रत धर्म पूर्ण करने के अर्थ शिक्षा दी, क्या हम को उन स्थानों में अत्रि, वशिष्ट, वाल्मीकि, शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण, अगस्त के समान ऋषि मिल सकते हैं ? कदापि नहीं, कदापि नहीं कदापि नहीं। सच तो यह है कि इस समय ही ने हम को बड़ा धक्का दिया इसने हमारे बने बनाये कार्य्य को बिगाड़ दिया उन ऋषि मुनियों को कि जिन्हों ने सारे संसार को अपने ज्ञान से प्रकाश कर रक्खा था ऐसा खा गया कि कहीं पता नहीं चला, इस भारत को जो कि एक समय में उन्नति की ऊंची सीढ़ी पर चढ़ा हुआ था ऐसा गिराया कि कुछ भी ठीक न रहा हमारे पवित्र नियमों को ऐसा बिगाड़ा कि हम पर अन्य देशी जन हंसते हैं, तीर्थों की वह दुर्दशा की है कि जहां ऋषिगण यज्ञ करते थे वहां भंग [illegible] सत्योपदेश से आत्मिक उन्नति होती थी वहां संड मुसण्डे नाना रूप धारण कर अनेक प्रकार से ठगते हैं। लड़कों के नाच देखलाये जाते हैं पण्डों की स्त्रियां भी यात्रियों की ख़बर लेती रहती हैं रंडियों के समूह के समूह वहां जाते हैं और तबला खड़कता है अर्थात् इसी प्रकार के अनेक उपाय मुक्ति के दर्शाये जाते हैं जिन का विस्तार भय से वर्णन नहीं करता आप प्रत्यक्ष विलोकन कर रहे हैं ॥

मान्यवरो ! संस्कृत विद्या के न जानने से या यों कहिये कि निज प्रयोजन के साधन के लिये लोभी गुरुओं ने वेदादि सत् शास्त्रों के शब्दों के मुख्य अर्थ को छोड़ उन शब्दों से मनगढ़ित अर्थ निकाल कर संसार को भ्रमजाल में डाल दिया जो अब तक भेड़ियाधसान की भांति एक दूसरे के पीछे बिना देख भाल किये चले जाते हैं। जैसा कि वेदों में तीर्थ, व्रत, श्राद्ध, तर्पण इत्यादि शब्दों के मुख्य अभिप्राय को हम ने वेदादि सत्शास्त्रों के प्रमाणों से सिद्ध किया है, उड़ा कर निज प्रयोजन निकाला इस के अतिरिक्त और भी देखिये—"शन्नो देवी०, गणानां त्वा०" इत्यादि में देवी शब्द से कालिका की मृत्तिका की पूजा करवाते हैं द्वितीय में गण शब्द से मिट्टी के गणेश जी बना कर पुजवाते हैं ऐसा ही वृहत्सामब्राह्मण के गङ्गा और यमुनादि शब्दों के मुख्य अभिप्राय को न समझ कर पृथ्वी पर की बहती हुई गङ्गा और यमुनादि नदियों में नहाने से मुक्ति मानने लगे देखिये वृहत्सामब्राह्मण में लिखा है—

इडा भगवती गङ्गा पिङ्गला यमुना नदी ।
तयोर्मध्ये प्रयागस्तु यस्तं वेद स वेदवित् ॥

इडा नाड़ी गङ्गा के नाम से और पिंगला नाड़ी यमुना के नाम से प्रसिद्ध है इन दोनों के बीच में जो हृदय आकाश है उस को प्रयाग कहते हैं जो मनुष्य इन को जानता है वह वेद का जानने वाला है और 'याज्ञवल्क्य शिक्षा' में लिखा है:—

कालिन्दी संहिता ज्ञेया पदयुक्ता सरस्वती ।
क्रमेण कीर्त्तिता गङ्गा शम्भोर्वाणी तु नान्यथा ॥

अर्थात् कालिन्दी वेदसंहिता का नाम है और यदि वेदमन्त्रों के पदों को पृथक् २ पढ़ा जावे उस का नाम सरस्वती है और जो वेदमन्त्रों को क्रम से पढ़ा जाय उस को विद्वान् गङ्गा के नाम से निरूपण करते हैं, और यही शंभ अर्थात् महादेव जी की वाणी है और महाभारत में लिखा है

आत्मानदी संयमपुण्यतीर्था सत्योदका शीलतटा दयोर्मिः ।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र न वारिणा सिध्यति आत्मशुद्धिः ॥

यह रूपकालङ्कार है जो परमेश्वर सर्वव्यापक है वही एक नदी है उस नदी में अपने मन इन्द्रियों का लगाना वही पुण्य तीर्थ है अर्थात् तरना है उस नदी में जो सत्य है वही जल है उस नदी का किनारा शील और दया उस की लहरें हैं सो हे युधिष्ठिर ! तुम "आत्मरूप" ऐसी नदी में स्नान करो क्योंकि वारि अर्थात् धरती पर की नदियों के पानी में स्नान करने से आत्मा शुद्ध नहीं होता । इसलिये आओ सज्जन पुरुषो ! इन उपरोक्त प्रकार गङ्गा, यमुना, सरस्वती में योगाभ्यास द्वारा स्नान करने का उद्योग करें कि जिस के प्रताप से मोक्षरूपी अमृतफल मिलता है क्योंकि बाईं ओर पिङ्गला और दाहिनी ओर इड़ा और बीच में प्रयाग है और प्रयाग के अर्थ योग के हैं अर्थात् जिस स्थान पर जीव को सर्वव्यापक परमेश्वर के दर्शन होते हैं उसी को प्रयाग कहते हैं ॥

योग का वर्णन ॥

प्यारे सुजनो ! चित्त की वृत्तियों के निरोध का नाम योग है जिस के विना जीवात्मा नाना क्लेशों को भोगता है और धर्म अर्थ मोक्ष पदार्थों को

खोता है इसलिये श्रेष्ठ पुरुषों को चित्त के निरोध करने के निमित्त योगरूपी मार्ग में पूर्ण सामर्थ्य से पग रखना योग्य है परन्तु वर्त्तमान समय में योग शब्द के अर्थ ऐसे समझ रक्खें हैं कि जो भिक्षुक गेरुये कपड़े पहनकर किसी विद्या के न जानने के कारण विना परिश्रम किये आलस्य में चूर होकर उदर पोषण के अर्थ घर २ भीख मांगते हैं उन को ही योगीजी कहते हैं कोई २ ऐसा भी सुनाते हैं कि जो परिवार छोड़ जङ्गल में चला जाय वही योगी है। हे भाइयो! यह सब मिथ्या बातें हैं योग के अर्थ जङ्गल जाना, कपड़े रंगना, कनफटे बनना कुछ आवश्यक नहीं क्योंकि योग का सम्बन्ध चित्त से है न कि जङ्गल वा कपड़ों से। हे बान्धवो! यदि कोई जङ्गल में जावे और उस की इन्द्रियां उस के आधीन न हों तो वह वन में जाकर क्या ख़ाक न छानेगा? इस लिये यह सब मिथ्या बातें हैं क्योंकि चित्त की स्थिर वृत्तियों का नाम योग है इस कारण योगसाधन के अर्थ जङ्गल ही में रहना वा कपड़े रंगना [illegible] आवश्यकता नहीं सच तो यह है कि यह एक प्रकार की दिखावट और दूकानदारी है इस के उपरान्त जब हम प्रतिदिन देखते हैं कि बहुधा औरतें शिर पर घड़े पर घड़ा लेजाती हैं, नट रस्से पर डोल आता है; निशानची निशान मार देता है तो फिर संसार में योग न होने का क्या कारण है, प्यारे बन्धुवर्गो! यह भी तो योग ही के लक्षण हैं अर्थात् विना चित्त को स्थिर किये कभी ऐसा नहीं कर सकते तो फिर योग से डरने और जंगल ही में जाने की कौन आवश्यकता है?।

प्यारे सुजनो! प्राचीन काल में इसी भारतवर्ष में अनेक जन इस विद्या में पूरी योग्यता रखते थे; क्या राजा जनक का नाम जो मिथिलापुरी में राज्य करते थे नहीं जानते जिन्होंने योग विद्या में ऐसी योग्यता प्राप्त की थी कि उस समय के ऋषि लोग उन की प्रतिष्ठा करते थे। और श्रीकृष्ण महाराज योगविद्या में पूर्ण निपुणता रखते थे। इन के उपरान्त अनेक सुजनों ने इस विद्या में अच्छी योग्यता प्राप्त की थी और उन्हों ने उसी योग बल से नाना भांति की युक्ति और गुण निकाले थे जिन को इस समय में नाम मात्र भी नहीं जानते, प्यारे सुजन पुरुषो इस समय में रेलतारादि को देख कर आश्चर्य करते हैं परन्तु प्राचीन समय में योगविद्या के जानने वाले ज्ञाता जन हजारों कोस बैठ कर आपस में बातें करते थे, इस की आठ सीढ़ी हैं जिन का वर्णन पतञ्जलि महर्षि ने अपने बनाये हुए योगशास्त्र में अच्छे प्रकार किया है।

यथार्थ में प्राणायाम करने से प्रतिदिन अज्ञान का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता है इसलिये जब तक मुक्ति न हो तब तक इस क्रिया को सदा करता रहे जैसा कि योगशास्त्र में लिखा है-

प्राणायामादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ।

इस विषय में मनु जी ने भी लिखा है-

दह्यन्ते ध्यायमानानां धातूनां च यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाःप्राणस्यनिग्रहात् ॥

अर्थात् जैसे अग्नि में तपाने से सुवर्णादि धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं वैसा ही प्राणायाम करने से मन आदि इन्द्रियों के दोष क्षीण हो कर निर्मल हो जाते हैं अर्थात् मन एकाग्र हो जाता है जो उपासना के समय किसी संसारी कार्य में नहीं जाता जो उपासना का मुख्य काम है, इसलिये प्राणायाम प्रतिदिन करना चाहिये, [illegible]

अपानेजुह्वतिप्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगतीरुध्वा प्राणायामपरायणाः ॥

अर्थात् अपान में प्राण को और प्राण में अपान को हवन करते वा लय करते वा मिलाते हैं, उन के प्राण की गति रुकने से मन उस के साथ रुक जाता है इसलिये प्राणायाम करना उचित है।

मुख्य प्रयोजन इस कथन का यह है कि जब प्राणायाम के करने से प्राण अपने वश में हो जाता है, तो मन और इन्द्रियां भी स्वाधीन हो जाती हैं, तब पुरुषार्थ बढ़ कर बुद्धि तीव्र हो जाती है जो कठिन से कठिन और सूक्ष्म विषय को शीघ्र ग्रहण करलेती है, इसी से वीर्य्यवृद्धि हो कर शरीर बलपराक्रमयुक्त हो जाता है और भय का उस के चित्त में अंश भी नहीं रहता वही निर्भय हो कर संसार का सर्व प्रकार उपकार करता है, और उपासना के समय उस का मन इधर उधर कों नहीं जाता, वरन परमेश्वर के ध्यान में मग्न होकर आनन्द को प्राप्त हो मोक्ष सुख को पाता है इसलिये अवश्यमेव थोड़ा२ अभ्यास करना परम आवश्यक है। परन्तु योग उन्हीं सज्जनों को सिद्ध होता है जो संयम नियम को यथावत् सेवन करते हैं। इस के उपरान्त इस वृत्त में शीघ्रता करने की आवश्यकता नहीं और प्रथम इस में कठिनता भी जान पड़ती है परन्तु जब अन्तःकरण की रजोगुणी और तमो-

गुणी वृत्ति कम होजाती है और मुक्ति की इच्छा विवेक वैराग्यादि वृत्ति जब प्रधान होती है तब यह सुगम जान पड़ती है और यथार्थ अन्तःकरण का रज तम दूर होजाता है तब वह सुख प्रकट होता है कि जिस सुख का पारावार नहीं और उस को कोई वर्णन नहीं कर सकता ॥

यजुर्वेद अध्याय १२ मन्त्र ६७ में लिखा है—

सीरायुञ्जन्ति कवयोयुगावितन्वते पृथक्। धीरा देवेषु सुम्नया॥

अर्थात् योगी पुरुष अपने ज्ञान के बढ़ाने में तन मन लगा कर लगातार पुरुषार्थ से ऐसे ज्ञान को प्राप्त होते हैं जहां किसी प्रकार का संशय और भ्रम नहीं रहता, उन के लिये सीधा और स्वच्छ मार्ग है, ऐसी दशा में पहुंचे हुए महात्माओं की वे ही मनुष्य प्रतिष्ठा करते हैं जो विद्वान् होते हैं, और अविद्वान् मनुष्य योगियों की बात और उन के मर्म समझ ही नहीं सकते उन के विचार ही में नहीं आते, क्योंकि उन के धर्मचक्षु नहीं, इसलिये वह योगियों के गुणों का देख नहीं सकते, हां विद्वान् मनुष्य जानते हैं कि योगी ने जिस ज्ञान की प्राप्ति की है वह अतिकठिन है, संसार भर की विद्या उस की समानता नहीं कर सकती, जो जड़ पदार्थों से सम्बन्ध नहीं रखती वरन उस का सम्बन्ध सूक्ष्म पदार्थ से है इसलिये विद्वान् मनुष्य योगियों का आदर सत्कार करते हैं और उन के चरणों के सेवक होते हैं ॥

धन्य हैं वह सुजन जिन का विद्वान् आदर सत्कार करते हैं, परन्तु यह ब्रह्मज्ञान योगियों को सहज ही में नहीं मिलता वरन विद्वान् योगी महात्मा और धीर पुरुष योग विभाग से नाड़ियों द्वारा अपनी आत्मा में धारण करते हैं अर्थात् बड़े २ साधनों से यह अमूल्य रत्न मिलता है, जिन की व्याख्या पतञ्जलि महर्षि ने की है जिस का हम आगे संक्षेप से वर्णन करेंगे ।

इसलिये सज्जन पुरुषों को आलस्य त्याग प्रतिदिन आठों अङ्गों का सेवन युक्तिपूर्वक करना चाहिये, क्योंकि यह यज्ञ सब यज्ञों से श्रेष्ठ है, इस बात को श्रीकृष्णचन्द्र जी महाराज ने गीता में बारह प्रकार के यज्ञों में प्राणायाम अर्थात् प्राणनिरोध करना सब से श्रेष्ठ कहा है ॥

[अष्टाङ्ग योग के आठों अङ्गों का वर्णन]

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहार-
ध्यानधारणासमाधयोष्टावङ्गानि ॥

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि यह योग के आठ अङ्ग हैं।

[यम का वर्णन]

तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्य्यापरिग्रहा यमाः । योगसूत्र ॥

अर्थात्(१) अहिंसा,(२) सत्य, (३) अस्तेय,(४) ब्रह्मचर्य, (५) अपरिग्रह

१—अहिंसा=किसी से वैरभाव मन से न करना, अर्थात् सुख सम्भोगयुक्त प्राणियों में मैत्री और दुःखियों पर दया पुण्यात्माओं में मुदितता और पापियों में उपेक्षा करना चाहिये।

२—सत्य=जैसा अपनी आत्मा में हो वैसा कहे और माने, जो मनुष्य ऐसा करते हैं उन की वाणी से जो निकलता है वैसा ही होता है।

३—अस्तेय=किसी प्रकार की चोरी न करना, जो इस को यथावत् सेवन करता है उसको सब पदार्थ मिल जाते हैं।

४—ब्रह्मचर्य =२५,३०,४०,४८ वर्ष वा इस से आगे वीर्य को स्खलित न होने देना, अर्थात् जो वीर्य की पूर्ण रक्षा करता है वह पूर्णज्ञानी और महात्मा होने के योग्य होता है।

५—अपरिग्रह=जब मनुष्य यथावत् इन्द्रियों को अपने वश में करलेता है तब उसके मन में यह विचार आता है कि मैं कौन हूं और कहां से आया हूं और क्या करता हूं, मुझको क्या करना चाहिये और मेरी किस बात में भलाई है इत्यादि ऐसी बातों के विचार का नाम अपरिग्रह है।

[नियम]

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ।

(१) शौच, (२) संतोष, (३) तप, (४) स्वाध्याय, (५) ईश्वरप्रणिधान—यह पांच प्रकार के नियम हैं।

१—शौच=यह दो प्रकार का है, एक शारीरक दूसरा आत्मिक। शारीरकशुद्धि जल और खान पान आदि से होती है, और आत्मिक—वेदादि विद्या पढ़ने और धर्म पर चलने और सत्संग से होती है।

२—सन्तोष=उस को कहते हैं जो सदा धर्मानुकूल कार्यों को करता हुआ नाना प्रकार के क्लेश होने पर भी धैर्य को नहीं छोडना, आलस्य का नाम सन्तोष नहीं है।

३– तप=जैसे सोना चांदी आदि को अग्नि में तपाने से स्वच्छ हो जाते हैं वैसे ही आत्मा और मन को धर्माचरणरूपी शुभगुणों में तपाकर निर्मल करने का नाम तप है। तप के मुख्य तीन भेद हैं–मनसा, वाचा, कर्मणा, इन तीनों को धर्माचरण में लगाना ही तप कहाता है, अग्नि जलाकर बीच में बैठने का नाम तप नहीं है।

५–ईश्वरप्रणिधान=सब सामर्थ्य, सर्व गुण, प्राण, आत्मा और मन के प्रेम-भाव से आत्मादि सत्य द्रव्यों का ईश्वर के लिये समर्पण करने को कहते हैं।

[आसन]

आसन उस को कहते हैं कि जिसमें शरीर और आत्मा सुखपूर्वक स्थिर हों इस लिये जैसी रुचि हो वैसा आसन करे, जब आसन दृढ़ हो जाता है तब उपासना करने में परिश्रम जान नहीं पड़ता और सरदी गरमी आदि नहीं व्यापती, यह उपासना का तीसरा अङ्ग अर्थात् सीढ़ी है।

प्रकट हो कि आसनों के भेद अनन्त हैं और वे आसन सम्पूर्ण योग विषय मनुष्य को उपकारी होते हैं इसलिये कुछ आसनों का संक्षेप से वर्णन करते हैं–

योग शास्त्र में ८४ आसन लिखे हैं उनमें से—स्वस्तिक, गोमुख, वीर, पद्म, कुक्कुट, उत्तान, कूर्मक, धनुष, मत्स्य, मयूर, सर्प, सिंह, भद्र, सिद्ध, दण्डासन–पंद्रह के नाम यह हैं, इन में से बहुधा आसनों से शरीर का रोग निवृत्त होता है और कई एक ब्रह्मानन्द समाधि में उपयोगी हैं, इन उपरोक्त लिखे आसनों में सिंह, भद्र, पद्म, सिद्ध, यह चार ही मुख्य ठहराये गये हैं और इन में से भी पद्म और सिद्ध विशेष हैं और सिद्ध आसन को वृत्तासन, मुक्तासन, और गुप्त आसन भी कहते हैं। इस विषय में गीता में भी लिखा है–

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥

अर्थात् आसन पवित्र भूमि में अचल लगाकर अभ्यास करे, आसन न बहुत ऊंचा हो न बहुत नीचा, छत और मुंडेरी पर आसन न लगाना चाहिये जो मनुष्य आसन सिद्ध नहीं करता उसको द्वन्द्व दुःख देते हैं और आसन सिद्ध होने से यह उस को दुःख नहीं देते, इसलिये आसन का अभ्यास अवश्य करना चाहिये॥

[पद्मासन]

चौपाई

पहिले बामा पैर उठावे । दहनी जंघा ऊपर लावे ॥
विधि इमि दक्षिण पैर उठाना । बामी जंघा परि धरि आना ॥
दाना कर पीछे पुनि लावे । बाम अंगूठा गहि तनु तावे ॥
यों ही दक्षिण कर को लावे । दहना दृढ़ अङ्गुष्ठ करावे ॥
ग्रीवा लटकि चिबुक हिय करिये । नासा आगे दृष्टि सुधरिये ॥

[सिंहासन]

दोहा

गुदामध्य धरि वाम पद, दक्षिण लिंग दवाय ।
दृष्टि धर भृकुटी विषे, चिदानन्द चित्तलाय ॥

इन आसनों के अभ्यास से संपूर्ण नाड़ियों के मल नष्ट होजाते हैं, यह चौरासी आसनों में श्रेष्ठ है ।

[प्राणायाम]

आसन स्थिर होने से जो प्राण की गति का अवरोध होता है उसे प्राणायाम कहते हैं, यही चौथो अंग अर्थात् सीढ़ी है ।

आसन सिद्ध होने पर जो बाहर से वायु भीतर को जाता है उस को श्वास कहते हैं, और जो भीतर से बाहर जाता उसे प्रश्वास कहते हैं, और इन दोनों की गति के अवरोध को प्राणायाम कहते हैं, वह चार प्रकार का है-
(१) बाह्य, (२) आभ्यन्तर, (३) स्तम्भवृत्ति, (४) बाह्याभ्यन्तराक्षेपी ।

(१) बाह्य वह है कि जब भीतर से वायु बाहर को निकले उस को बाहर ही रोक दे ।

(२) आभ्यन्तर उसे कहते हैं कि जब बाहर की वायु भीतर जावे तब जितना हो सके भीतर ही रोके ।

(३) स्तम्भवृत्ति उसको कहते हैं न प्राण को बाहर निकाले न बाहर से भीतर ले, बरन जितनी देर हो सके सुखपूर्वक जहां का तहां ज्यों का त्यों रोकदे ॥

(४) बाह्याभ्यन्तराक्षेपी—जब श्वास भीतर से बाहर को आवे तब बाहर ही थोड़ा २ रोकता रहे और जब बाहर से भीतर को जावे तब उसको भीतर ही थोड़ा २ रोके ।

[प्राणायाम करने की विधि]

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य

जिस प्रकार कै होती है जिस को लौटा वा वमन कहते हैं जिस के होने से भीतर पेट के अन्न और जल बाहर निकल आते हैं। उसी प्रकार प्राण को बल से बाहर फेंक के बाहर ही यथाशक्ति रोक देवे, और जब बाहर निकालना चाहे तो मूलेन्द्रिय को ऊपर खींच रक्खे जब तक प्राण बाहर निकले, और जब घबराहट हो तब धीरे २ भीतर लेजाय और जितना होसके रोके, इसी प्रकार जितनी सामर्थ्य हो धीरे २ बढ़ावे ॥

प्रकट हो कि उदरस्थ प्राण वायु को नासिका के नथुनों से प्रयत्नपूर्वक निकालने को 'प्रच्छर्दन' और खींचने को 'विधारण' कहते हैं।

[प्रत्याहार]

'प्रत्याहार' उस को कहते हैं जब मनुष्य अपने मन को जीत लेता है तब सब इन्द्रियां अपने आधीन कर लेता है क्योंकि मन ही इन्द्रियों का चलाने वाला है जैसा कि य० अ० ३४ मन्त्र १ में लिखा है--

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमंज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

अर्थात् जो जागता हुवा दूर २ जाता है और सुषुप्ति में भी उस के दूर जाने का स्वभाव है जो प्रकाशित पदार्थों का भी प्रकाश करने वाला है वह मेरा मन, हे परमात्मन्! बड़ा शीघ्रगामी है आप की कृपा से मुझे कल्याणकारी हो।

सचमुच मन ही इन्द्रियों का चलाने वाला है, इन्द्रियां कभी काम नहीं करतीं जब तक कि मन इन्हें प्रेरणा नहीं करता, निश्चय जानों कि जितने विकार और दुष्टभाव इन्द्रियों के द्वारा प्रकट होते हैं सब मन के ही उत्पन्न किये हुवे होते हैं, महात्माओं ने मनुष्य के शरीर की बनावट को एक रथ के समान माना है, बुद्धि रूपी रथवान् मन की राशियों से इन्द्रियों के घोड़ों को अपने आधीन रख सक्ता है पस जिस प्रकार रासों के घुमाने से जिधर को चाहो घोड़ों को फेर सक्ते हो उसी प्रकार मन जिधर चाहता है उधर इन्द्रियों को घुमाता है. इस कारण कर्म ठीक करने के अर्थ मन को निर्दोष किया जावे, यह मन बड़ी २ दूर जाता है, जो देश और काल की रुकावट में

भी नहीं आता, इस से अधिक प्रबल चाल वाला कोई नहीं, सो यह मन जीवात्मा के आधीन है परन्तु जीवात्मा उस को अपने आधीन न रख कर किन्तु उसके आधीन होकर नाना प्रकारके दुःखों को झेलता है, इसलिये ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि इस मन को हमारे आधीन सदा बनाये रहैं नकि हमको उसके, सो मन की चंचलता प्राणायाम साधन से जाती रहती है, इस लिये शांति ढूंढने वालो ! इस क्रिया को कर मन को आधीन कर आनन्द को भोगो ।

[धारणा]

धारणा उस को कहते हैं कि मन को चंचलता से छुड़ा कर जिस स्थान पर जिस विषय में चित्त को लगावें वहीं चित्त ठहर जावे अर्थात् जिस विषय में चित्त लगाना हो उसको छोड़ कर कहीं न जावे।

प्रकट हो कि इस समय मन में 'ओं' का जप करता जाय क्योंकि 'ओं' परमेश्वर के सब नामों में उत्तम है कि जिस में परमेश्वर के सब नामों के अर्थ आजाते हैं जैसा हमने गायत्री के अर्थों में लिखा है, और ऐसा ही गीताके अ० ८ श्लोक १३ में लिखा है—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं सयाति परमां गतिम् ॥

अर्थात् ध्यान समय ओं के अर्थों को विचार कर उस के अनुकूल आचरण होने से परम गति मिलती है, क्योंकि—

ओंकारः सर्ववेदानां सारस्तत्वप्रकाशकः ।
तेन चित्तसमाधानं मुमुक्षूणां प्रकाश्यते ॥

[ध्यान]

ध्यान—धारणा के पीछे उसी देश में ध्यान करे, आश्रय देने के योग्य जो अंतर्यामी व्यापक परमेश्वर है, उसी के प्रकाश आनन्द में अत्यन्त विचार और प्रेम भक्ति के साथ इस प्रकार प्रवेश करना जैसे समुद्र के बीच में नदी प्रवेश करती है, उस समय में ईश्वर को छोड़ किसी अन्य पदार्थ का स्मरण नहीं करना उसी परमेश्वर के ज्ञान में मग्न होने को 'ध्यान' कहते हैं ।

[समाधि]

समाधि—जैसे अग्नि के बीच में लोहा भी अग्नि होजाता है उसी प्रकार

परमेश्वर के साथ में प्रकाशमय हो के अपने शरीर को भूले हुए के समान जान के आत्मा को परमेश्वर के प्रकाश स्वरूप आनन्द और ज्ञान से परि पूर्ण करने को 'समाधि' कहते हैं।

ध्यान और समाधि में इतना अन्तर है कि ध्यान में तो ध्यान करने वाला और मन और जिसका ध्यान करता है ये तीनों विद्यमान रहते हैं, परन्तु समाधि में केवल परमेश्वर ही के आनन्द स्वरूप ज्ञान में मग्न हो जाता है वहां तीनों का भेद भाव नहीं रहता, जैसे मनुष्य जल में डुबकी मार के थोड़ा समय भीतर ही रुका रहता है वैसे ही जीवात्मा परमेश्वर के बीच में मग्न होकर फिर बाहर को आजाता है, और जिस देश में धारणा की जाय उसी में ध्यान और उसी में समाधि अर्थात् ध्यान करने के योग्य परमेश्वर में मगन होजाने को 'संयम' कहते हैं, जो एक ही काल में तीनों का मेल होता है अर्थात् धारणा से संयुक्त ध्यान और ध्यान से संयुक्त समाधि होती है, उन में बहुत सूक्ष्म काल का भेद रहता है परन्तु जब समाधि होती है तब आनन्द के बीच में तीनों का फल एक ही हो जाता है, उस काल के आनन्द की महिमा अकथनीय है। ऐसा ही अन्य शास्त्रकारों ने भी लिखा है—

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो, निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं तदा गिरा, स्वयं तदन्तः करणेन गृह्यते ॥

अर्थात् समाधि रूप नदी में गोता लगाने से जिस का मैल धोया गया ऐसा चित्त जब आत्मा में लगाया जाता है तब जो सुख होता है उसका वर्णन वाणी से नहीं हो सक्ता किन्तु उसका स्वयमेव अन्तःकरण से ग्रहण होता है और भगवद्गीता में श्री कृष्णचन्द्र जी ने भी कहा है—

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥

अर्थात् समाधि अवस्था का जो अनन्त सुख है उस का इन्द्रियों से ग्रहण नहीं होता किन्तु उसी उपासक को इन्द्रिय द्वारा पहुंचने वाले विषयों की चञ्चलता से रहित अर्थात् वायु विषयों से उठने वाली वृत्ति रूपी जलतरङ्गों से रहित अविकारिणी सूक्ष्म बुद्धि से ही ग्राह्य है, उस समाधिअवस्था में न कुछ बाह्य विषय जानता और न विषयादि के साथ अपने स्वरूप को छिपाता है, जितने देखे हुए और सुने हुए विषयों में से जो आनन्द के देने वाले हैं

किसी की चाहना न करना वैराग्य कहाता है ॥

प्यारे सुजनो! जो मनुष्य धर्माचरण परमेश्वर और उस की आज्ञा में अत्यन्त प्रेम करके आचरण अर्थात् शुद्ध हृदय रूपी वन में स्थिरता के साथ निवास करते हैं वे परमेश्वर के समीप वास करते हैं, और जो लोग अधर्म के छोड़ने और धर्म के करने में दृढ़ तथा वेदादि सत्य विद्याओं में विद्वान् हैं जो भिक्षाचर्य आदि कर्म कर के संन्यास वा किसी अन्य आश्रम में हैं, इस प्रकार के गुण वाले मनुष्य प्राण द्वार से परमेश्वर के सत्य राज्य में प्रवेश कर के सब दोषों से छूट के परमानन्द मोक्ष को प्राप्त होते हैं। जहां कि पूर्ण पुरुष सब में भरपूर सब से सूक्ष्म अविनाशी जिस में हानि लाभ कभी नहीं होता ऐसे परमेश्वर को प्राप्त हो के सदा आनन्द में रहता हैं, जिस समय इन उपरोक्त साधनों से परमेश्वर की उपासना कर के उस में प्रवेश किया चाहे उस समय इस रीति से करे–

कण्ठ के नीचे दोनों स्तनों के बीच में और हृदय के ऊपर जो हृदय देश है कि जिस को ब्रह्मपुर अर्थात् परमेश्वर का नगर कहते हैं उस के बीच में जो गर्त्त है उस में जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा बाहर भीतर एकरस हो कर भर रहा है वह आनन्दस्वरूप परमेश्वर उसी प्रकाशित स्थान के बीच में खोज करने से मिल जाता है, दूसरा उस के मिलने का और कोई उत्तम स्थान वा मार्ग नहीं, क्योंकि इस हृदय आकाश में सूर्य आदि प्रकाशक तथा पृथ्वीलोक अग्नि वायु सूर्य चन्द्र बिजुली और सब नक्षत्र लोक भी ठहरे हैं, जितने देखने वाले और न देखने वाले पदार्थ हैं वे सब उसी की सत्ता के बीच में स्थिर हो रहे हैं और एस ब्रह्मपुर में जो परिपूर्ण परमेश्वर है उस को न तो कभी वृद्धावस्था होती है और न कभी नाश होता है। उसी का नाम सत्य ब्रह्मपुर है कि जिस में सब काम परिपूर्ण हो जाते हैं, वह सब पापों से रहित शुद्धस्वभाव जराअवस्थारहित शोकरहित जो खाने पीने की कभी इच्छा नहीं करता जिस के सब काम सत्य हैं जिस के सब सङ्कल्प भी सत्य हैं उसी प्रकाश में प्रलय होने के समय सब प्रजा समा जाती है और उसी के रचने से उत्पत्ति के समय फिर प्रकाश होती है।

इस उपरोक्त उपासना से उपासक लोग जिस२ काम जिस २ देश जिस २ क्षेत्र भाग अर्थात् सावकाश की इच्छा करते हैं उन सब को वे सब यथार्थ प्राप्त होते हैं ॥

इसलिये उपासको ! मोक्ष की इच्छा रखने वालो ! शुद्धाचरण से योग द्वारा परमात्मा के जानने की इच्छा करो तब ही मुक्ति मिल सक्ती है अन्यथा कदापि नहीं—हे परमात्मन् ! आप त्रिकाल दर्शी, सब सामर्थ्यवान् हैं आप से हमारी दुर्दशा छिपी नहीं है। अपने सामर्थ्य के कोष से कुछ हम भारतवासियों को प्रदान कीजिये, हम को आप उद्योगी बनायें, अब हम सब आप की शरण हैं इस विपदा के समय में शुद्ध बुद्धि का हम को दान कीजिये इस अपार दुःख के बीच साहस प्रदान कर हमारी रक्षा कीजिये। हे तेजः स्वरूप परमात्मन् ! हम को शान्ति अर्पण कीजिये आप हमारे पिता बन्धु सहोदर स्वामी आप ही हैं, बल वीर्य्य तेज का प्रसाद देकर हमारे सब संकट निवारण कर दीजिये। ओं शान्तिः ओं शान्तिः ओं शान्तिः ॥

——*०*——

॥ विज्ञापन ॥

सत्यनारायण की प्राचीन कथा—जिसको श्रीमान् पं० वर घनश्यामाचारी [illegible] मिश्रजी ने खोजकर निकाला है उस को संसार के उपकार के लिये [illegible] मूल भाषा टीका सहित मैंने छपवाया हैं अवश्य देखिये पढ़िये अपने [illegible] मित्रों को भी सुनाइये मूल्य -)॥

शिष्टाचार—वृद्ध अर्थात् बड़ों की आज्ञा सनातन धर्मानुसार किस प्रकार माननी चाहिये—जिस के न जानने के कारण आजकल भारतवर्ष में अतिदुःख [illegible] हुआ है मूल्य)॥

भरतोपदेश—इसमें वह भरतोपदेश है जो श्रीमान् परमतेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी महाराज ने अपने भ्राता भरतजी महाराज को चित्रकूट पर किया था जिस के पाठ से मन को आनन्द प्राप्त होता है मूल्य)॥

रत्नजोड़ी—इसमें हकीम लुकमान और मिस्टर इस्टेफन एलन की उत्तम शिक्षायें हैं कि जिन पर चलने से मनुष्य को इस संसार में सुख और अन्त को स्वर्ग प्राप्त होता है मूल्य)॥

रत्नप्रकाश—इस में बड़े २ ऋषियों के सत्योपदेश हैं मूल्य)॥

ऋषिप्रसाद—यह वह महोपदेश है जो महात्मा शौनक जी ने धर्मराज श्रीमान् युधिष्ठिर महाराज को वन में किया था जिसमें पूर्णरूप से बतला दिया है कि मनुष्य को सच्चा सुख किस प्रकार मिल सकता है मूल्य)॥

बुद्धि और अज्ञान के प्रश्नोत्तर—उन मनुष्यों को जो अपने अनेक कष्टों से प्राप्त किये हुवे धन को व्याह आदि अवसरों पर वृथा व्यय कर देते हैं एक सच्चा उपदेशक है—इस के पाठ से अति आनन्द आता है मूल्य)॥

अनमोलरत्न—इस में समय की महिमा दिखलाई है कि हम यथोचित समय से क्या २ फल प्राप्त करसकते हैं मूल्य)॥

प्रेमपुष्पावली—इस के देखने से अमूल्यफल हाथ आते हैं—क्योंकि—जहां सुमति तहं संपति नाना । जहां कुमति तहां विपत निधाना—यह वह लेक्चर है जो श्रीमान् बाबू शिवलाल उपदेशक वैश्य सभा में तिलहर जिला शाहजहांपुर (कोठी भाईरामचरण मन्नीलाल साहब साहूकार) में दिया था मूल्य)॥

ब्रह्मविचार—दोहे चौपाइयों में ब्रह्मा की महिमा है मूल्य)॥

ईसाईशिक्षा—जिसमें बतलाया गया है कि हम ईसाइयों के धोखे से किस प्रकार बच सके हैं मूल्य)।